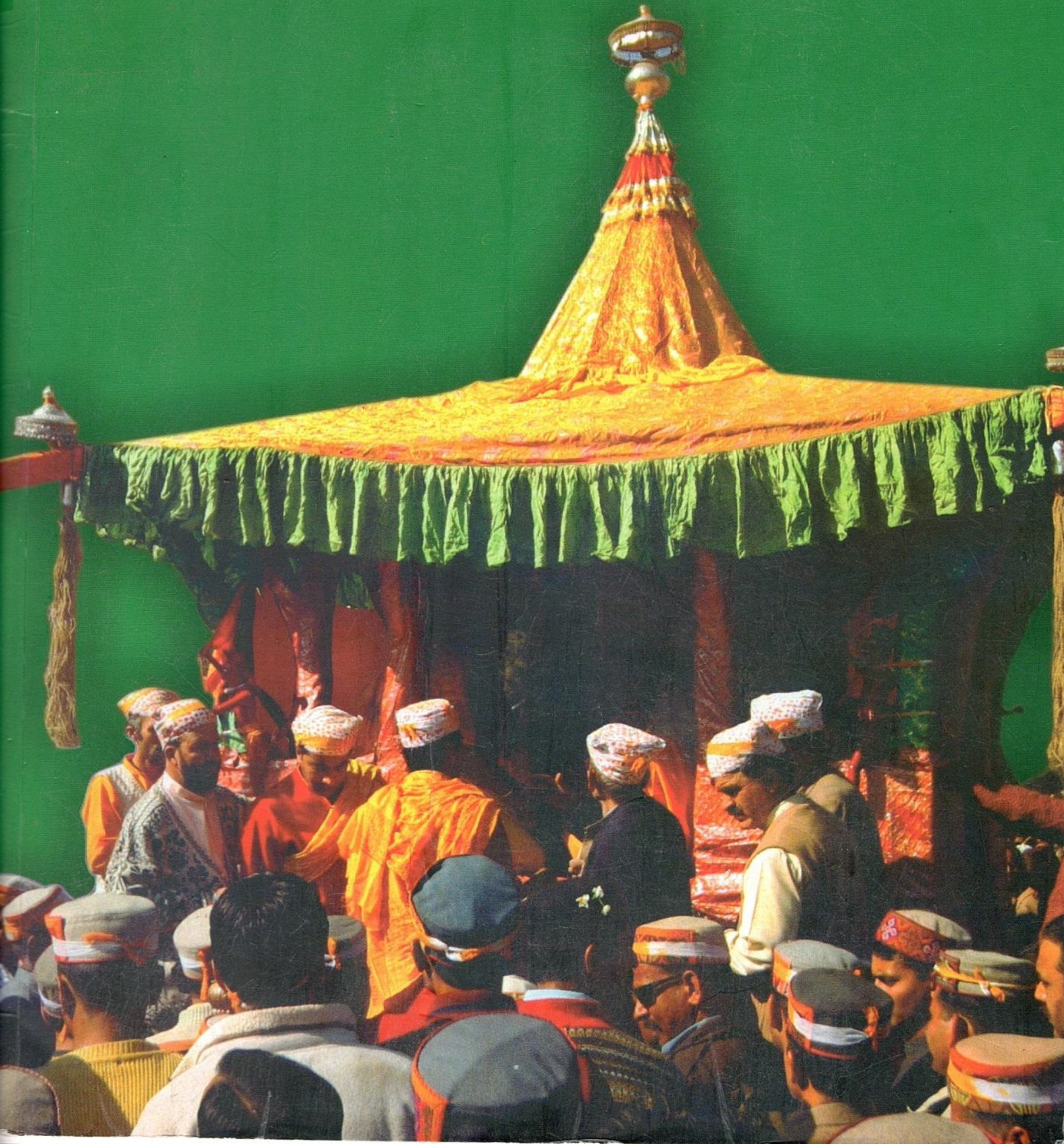
कुल्लू देव परम्परा

कुल्लू-मनाली



कुल्लू देव परम्परा

कुल्लू-मनाली





हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ ऐण्ड एस्टेट, शिमला-171001

कुल्लू देव परम्परा

परामर्श

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति एवं पर्यटन

बी. एम. नाण्टा

उपायुक्त, ज़िला कुल्लू

संपादक

डॉ. तुलसी रमण

सह संपादक

रमेश जसरोटिया

डॉ. श्यामा वर्मा

सूनृता गौतम

पर्यटन विकास परिषद्, ज़िला कुल्लू से प्राप्त
वित्तीय अनुदान के अंतर्गत प्रकाशित

ISBN : 978-81-86755-68-3

प्रकाशक : सचिव, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी,
क्लिफ-ऐण्ड-एस्टेट, शिमला-171001

प्रथम संस्करण : 2012

मूल्य : रु. 180.00

कम्पोज़िंग : अरशद अली

मुद्रक : क्रियेटिव एडवर्टाइज़र्ज़ एण्ड प्रिंटर्ज़
बी. 2, तीसरी मंज़िल, पुष्पा कॉम्पलेक्स, देशबंधु गुप्ता मार्ग
पहाड़गंज, नई दिल्ली - 110 055

आवरण

मुख्य पृष्ठ : कुल्लू दशहरा के अवसर पर रघुनाथ जी की पारम्परिक रथ यात्रा का दृश्य

अन्तिम पृष्ठ : 1. त्रिपुरा सुंदरी मंदिर नगर।
2. कुल्लू का लोक वाद्य वृंद।

पुस्तक डिज़ाइन : देवर्षि लेज़र ग्राफिक्स, शिमला
: क्रियेटिव आर्ट एण्ड प्रिंट प्रोवाइडर, हमीरपुर

Kullu Dev Parampara : Kullu-Manali

Published by : Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Shimla-171001, Himachal Pradesh

Edition : 2012

Price : **Rs. 180/-**

आमुख

देव परम्परा का वैभव

प्रेम कुमार धूमल

मुख्यमंत्री हिमाचल प्रदेश एवं अध्यक्ष, हिमाचल अकादमी

हमारे देश में प्रमुख देव स्थलों में जनता के धार्मिक-सांस्कृतिक मेले व्यापक रूप से आयोजित होते हैं। अपने आराध्य देव के प्रांगण या प्राचीन देव स्थान में त्योहार-उत्सव के अवसरों पर असंख्य लोग आस्था और उत्साह के साथ एकत्र होते हैं और इसी से मेले का रूप बनता है। स्थानिक परम्परा का निर्वाह करते हुए ये मेले समग्र भारतीय संस्कृति के अंग बनते हैं। इन मेलों में उस क्षेत्र के मनुष्य जीवन की बहुरंगी झांकियाँ देखने को मिलती हैं। गीत-संगीत-नृत्य की प्रस्तुतियाँ होती हैं और विभिन्न कलात्मक वस्तुएँ तथा उपयोग की चीज़ें इन मेलों में उपलब्ध होती हैं।

कुल्लू देव परम्परा का अपना वैभव है। यहाँ की हर घाटी के प्रत्येक गाँव या ग्राम-समूह का अपना लोक देवता है। इन देवी-देवताओं के पुराने मंदिर हैं और हर देवी-देवता की अपनी परम्परा है। हर घाटी के प्रमुख लोक देवता रघुनाथ जी की अध्यक्षता में दशहरा उत्सव में भाग लेने के लिए कुल्लू आते हैं। कहा जाता है कि स्वतंत्रता पूर्व इस मेले में विभिन्न क्षेत्रों के 365 देवी-देवता अपने प्रजाजनों के साथ भाग लेते थे।

कुल्लू का दशहरा भारतीय मेलों में प्रख्यात हो चुका है। यह लोक-देवताओं का मेला है। यही इसका अनूठापन है। देश-विदेश से आए लोग जब सैकड़ों की संख्या में देवताओं के रथों का अलंकरण और उनके पारम्परिक वाद्यों तथा अन्य उपकरणों की सज-धज देखते हैं तो आश्चर्य चकित रह जाते हैं। स्वतंत्रता के बाद एक ऐसा दौर भी आया कि देवता इस मेले में भाग लेने नहीं आए। परम्परागत नियम-व्यवहार में बाधा के कारण यह घटित हुआ था। उसके बाद अन्य लोकानुरंजनों से इस मेले का आकर्षण बढ़ाया गया और परम्परा को बनाए रखने के लिए जो प्रयत्न होते रहे, उसके फलस्वरूप कुल्लू का दशहरा आज भी देवताओं के वार्षिक उत्सव के रूप में उत्साह से मनाया जाता है।

गत वर्ष भी कुल्लू ज़िला के देवता इस धार्मिक-सांस्कृतिक उत्सव में अपनी गरिमा के साथ सम्मिलित हुए थे और वह देवताओं का भव्य समागम था। इस शुभ अवसर पर *'देव सदन'* के साथ की भूमि पर हमने *'अटल दशहरा सदन'* का शिलान्यास किया है, जिसके निर्माण पर दस करोड़ की राशि का व्यय अनुमान है। चार मंज़िल के इस विशाल भवन में एक हज़ार लोगों के बैठने की व्यवस्था वाला ऑडिटोरियम निर्मित होगा, ताकि मौसम खराब होने पर दशहरा के मंचीय कार्यक्रम अन्दर भी करवाए जा सकें। इस भवन में विश्राम गृह, दशहरा उत्सव समिति का कार्यालय तथा धरातल मंज़िल में वाहनों की पार्किंग की व्यवस्था भी होगी।

कुल्लू की समृद्ध देव परम्परा से सम्बंधित एक दस्तावेज़ तैयार करने का हमने निर्णय लिया था, ताकि कला, संस्कृति एवं इतिहास सम्बंधी सभी पक्षों की जानकारी प्रकाशित रूप में सामने आ सके। यह कार्य हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी को सौंपा गया था, जिसके फलस्वरूप *'कुल्लू देव परम्परा : बाहरी सराज'* शीर्षक पुस्तक का पिछले वर्ष दशहरा उत्सव के अवसर पर लोकार्पण किया गया था। उसी क्रम में यह दूसरी पुस्तक *कुल्लू-मनाली* क्षेत्र के देवी-देवताओं को लेकर शोध-सर्वेक्षण पर आधारित है। इस शृंखला की तीसरी पुस्तक *बंजार-सैंज* क्षेत्र के लोक देवताओं से सम्बंधित प्रकाशित की जा रही है। आशा है तीन खंडों में यह दस्तावेज़ सामान्य पाठकों, सांस्कृतिक अभिरुचि के पर्यटकों तथा शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

प्राक्कथन

देव उत्सव का आख्यान दृश्य

मनीषा नंदा

प्रधान सचिव, भाषा-संस्कृति एवं उपसभापति, हिमाचल अकादमी

कुल्लू वास्तव में देवभूमि है। दशहरा उत्सव कुल्लू की देव-परम्परा का आख्यान दृश्य प्रस्तुत करता है। इसलिए यह सबसे पहले देवोत्सव है। इस उत्सव के कारण कुल्लू घाटी और हिमाचल प्रदेश को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। भारत देश के विभिन्न प्रांतों में जिस दिन दशहरा उत्सव का समापन होता है, कुल्लू का दशहरा उस दिन से आरंभ होकर पूरे सात दिनों तक चलता है। स्वतंत्रता के बाद जब देवताओं की विरासती जागीरें समाप्त हो गईं तो दशहरा में देवताओं का भाग लेना कम हो गया था। इसलिए कुल्लू घाटी की इस अनूठी परम्परा को बनाये रखने के उद्देश्य से इसे लोक नृत्य उत्सव के रूप में भी मनाया जाने लगा; जिसका विस्तार अंतर्राष्ट्रीय लोक नृत्य उत्सव के रूप में हुआ। लेकिन कुल्लू का दशहरा वास्तव में देव परम्परा से जुड़ा ऐतिहासिक महोत्सव है। इसका इतिहास सत्तरहवीं शताब्दी के मध्य से शुरू होता है, जब कुल्लू के तत्कालीन राजा ने इस देवोत्सव का आयोजन रघुनाथजी की अध्यक्षता में शुरू किया था। कुल्लू का दशहरा न केवल साथ के क्षेत्रों लाहुल तथा मंडी के लोगों के लिए सदियों से आकर्षण का केन्द्र रहा है, बल्कि स्वतंत्रता पूर्व से ही हिमाचल भूमि के अन्य क्षेत्रों से भी लोग इस मेले में भाग लेते रहे हैं। अब दशहरा में भाग लेने के लिए विभिन्न घाटियों के लोक देवता फिर से आने लगे हैं। गत वर्ष इसमें लगभग 225 देवी-देवताओं ने भाग लिया था।

दूसरी ओर लोक नृत्य उत्सव का रूप भी बरकरार है। यह इसलिए भी सार्थक है कि कुल्लू की लोक परम्परा में देवता और उसकी अनुयायी प्रजा का नृत्य एक साथ होता है। किसी भी क्षेत्र या घाटी के प्रजा-जन जब रथ में सुसज्जित अपने देवता को दशहरा उत्सव में भाग लेने या किसी अन्य यात्रा के लिए कंधों पर उठाकर चलते हैं तो देव संगीत, नृत्य और पूजा का जो समेकित दृश्य बनता है, यही कुल्लू की देव परम्परा और यहाँ की सांस्कृतिक विरासत की वास्तविक झाँकी है।

वास्तव में कुल्लू की देव परम्परा का इतिहास यहाँ के दशहरा जितना ही पुराना नहीं है। यह परम्परा उतनी ही पुरानी है जितना यहाँ का मानव जीवन और समाज। अपने आदि काल से यह परम्परा कितनी समृद्ध रही होगी, इस बात की पुष्टि सन् 1660 की उस ऐतिहासिक घटना से भी होती है, जब कुल्लू के राजा ने दशहरा उत्सव के लिए पहले-पहल अपने राज्य के लोक देवताओं को आमंत्रित किया और उस दौर में ढालपुर में प्रति वर्ष 365 देवी-देवताओं का मेला जुटने के तथ्य बराबर दोहराये जाते हैं। इसके साथ ही यह बात भी ध्यानाकर्षक है कि कुल्लू का समाज प्रारंभ से ही देव आस्था से गहरे स्तर पर जुड़ा रहा है। यहाँ के मनुष्य जीवन की हर गतिविधि में देव आस्था का विशेष स्थान रहा है और आज भी लोक देवता की सांस्थानिक व्यवस्था यहाँ के समाज में बरकरार है।

इन स्थितियों को देखते हुए कुल्लू की देव परम्परा का शोध-सर्वेक्षण सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। माननीय मुख्यमंत्री के निर्देशानुसार हिमाचल अकादमी द्वारा यह कार्य किया गया है; जिसके परिणाम स्वरूप 'कुल्लू देव-परम्परा' पर आधारित यह दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस योजना की कड़ी में *बाहरी सराज* की पुस्तक गत वर्ष प्रकाशित की गई थी और *बंजार-सैंज* की तीसरी पुस्तक भी साथ ही प्रकाशित हो रही है।

प्रस्तावना

लोक संस्कृति की विरासत

डॉ. तुलसी रमण

सचिव, हिमाचल अकादमी

हिमाचल प्रदेश में लोक देवता की संस्था आज भी व्यापक रूप से अस्तित्व में है। विशेष रूप से कुल्लू, मंडी, शिमला, सोलन, सिरमौर और किन्नौर ज़िलों में लोक देवता जन-जीवन के केन्द्र में हैं। इनमें शैव-शाक्त या वैष्णव परम्परा के देवताओं के साथ आदिम समाज से चले आ रहे प्रकृति प्रधान देवी-देवता भी हैं और कुछ ऐसे जन-नायक भी देवता के रूप में पूज्य हैं, जिन्होंने अपने समय में मानव-समाज के कल्याण के लिए अभूतपूर्व कार्य किए। जब हम इन लोक देवताओं का इतिहास दोहराने वाली भार्थाओं (वार्ताओं) पर गौर करते हैं तो पाते हैं कि ज़्यादातर देवता इसलिए पूज्य हैं कि उन्होंने आम जनता को सतानेवाले राक्षसों यानी दुष्टों को मार डाला था। ये पूज्य देवता उस समय लोक कल्याणकारी जन-नायक ही थे, जिनके प्रताप और कल्याणकारी विचार के कारण समाज ने उन्हें देवत्व प्रदान किया और वे आज तक देव परम्परा के अभिन्न अंग हैं। लोक देवता की संस्था द्वारा आज भी अपने क्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों का संचालन किया जाता है। इस संस्था के गठन में वंशानुगत कारदार होते हैं। देवताओं के अपने 'गूर' यानी प्रवक्ता हैं, जिनमें प्रवेश करके देवता अपनी वाणी बोलते हैं और प्रजा-जनों की समस्याओं का समाधान देते हैं। इसी गूर की वाणी के माध्यम से लोक देवता प्रजा पर नियंत्रण रखता है और आज भी इस वाणी पर विश्वास करनेवालों का समाज में बहुमत है, इसीलिए यह देव परम्परा कायम है। कुल्लू में इस तरह की देव व्यवस्था सबसे व्यापक और सक्रिय दिखाई देती है।

लोक देवता की यह संस्था आदिम समाज से चली आ रही है। जब पहाड़ की घाटियों में विभिन्न राज्य स्थापित हुए तो लोक आस्था को देखते हुए तत्कालीन राजाओं और सामंतों ने विभिन्न देवी-देवताओं को अपना इष्ट मान लिया और राजा व देवता की साँझी व्यवस्था प्रचलन में आ गई। इसी के फलस्वरूप *'देओ-राज'* यानी देवता और राजा की कहावत इन पहाड़ों में आम हो गई। इसका सबसे बड़ा उदाहरण कुल्लू के राजा जगत सिंह (1637-1662) के राज्य काल का है। प्रचलित जनश्रुति के अनुसार किसी स्वार्थी और शरारती आदमी ने राजा के कान में बात डाल दी कि मणिकर्ण घाटी के एक गाँव में दुर्गादत्त नामक ब्राह्मण के पास एक पत्था (पात्र) मोती हैं। राजा ने अपने अधिकार के रहते वे मोती राज-भंडार के लिए माँगे। मगर ब्राह्मण के पास मोती न थे। वह एक गरीब ब्राह्मण था, जैसा कि लोक कथा में अक्सर होता है। राजा आखिर उस क्षेत्र की यात्रा पर निकल रहा था तो उसने अपने लौटने तक मोती का पत्था देने का आदेश ब्राह्मण को पहुँचा दिया। अंततः ब्राह्मण ने राजा के भय से अपने घर में आग लगा दी और सपरिवार उसमें भस्म हो गया। राजा के लिए यह घटना घोर पश्चात्ताप का कारण बनी। जनश्रुति है कि ब्राह्मण परिवार के शाप के कारण राजा के लिए कई उपद्रव हुए। पश्चात्ताप का मनोविज्ञान भी इस दिशा में ले जाता है। राजा की समस्या को हल करने के लिए राज-पुरोहित ने समाधान दिया कि अयोध्या से रघुनाथ की मूर्ति लाकर कुल्लू में स्थापित की जाए। महंत दमोदर दास आखिर मूर्ति ले आए। सन् 1660 में कुल्लू में इस मूर्ति की स्थापना करके राजा ने प्राचीन कुल्लू राज्य का राजपाट रघुनाथजी को सौंपकर खुद उनका छड़ीबरदार बनना स्वीकार किया।

आज से लगभग 352 साल पहले की यह घटना एक ऐतिहासिक घटना है। इस घटना ने अतीत से चली आ रही परम्परा को इस दृष्टि से भी सुदृढ़ कर दिया कि जब सर्वसत्ता सम्पन्न राजा ने ही देव रूप रघुनाथजी के समक्ष

अपनी सत्ता का समर्पण कर दिया तो जनता पर देव शासन स्वतः लागू हो गया। उसके बाद रघुनाथजी की अध्यक्षता में राजा द्वारा एक सप्ताह के दशहरा उत्सव का आयोजन और उसमें कुल्लू राज्य के समस्त देवी-देवताओं को आमंत्रित करके, पूरे राज्य के देव संगठन की संरचना बुनने जैसा काम हुआ था। *'देओ-राज'* की कहावत का यह तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण है और इन पहाड़ों में इस परम्परा का प्रसार छोटे-बड़ी अधिकांश रियासतों में हो गया था।

हिमाचल प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में जो सांस्कृतिक विरासत आज देखने में आती है, उसमें देव परम्परा की प्रधानता है। इस परम्परा में स्वतंत्रता से पूर्व देवता और राजा की जुगलबंदी व्यापक रूप से रही है और आज भी रस्मी तौर से इसका निर्वाह होता है। नृ-विज्ञान के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस वर्ताव का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ में संस्कृति को 'सामाजिक प्रथा' का पर्याय भी कहा जा सकता है। इस दृष्टि से देवता और राजा के साँझे नियंत्रण में जो सामाजिक प्रथाएँ अतीत से चली आ रही हैं, उन्हीं से यहाँ की सांस्कृतिक विरासत का निर्माण हुआ है। इस विरासत में क्षेत्रीय उत्सव, मेले और त्योहार प्रमुख रूप से हैं। यहाँ ऐसा कोई देवता नहीं जिसके प्रांगण में वर्ष में कोई उत्सव या मेला न मनाया जाता हो। वर्ष के मेले-त्योहारों का एक पूरा क्रम चलता है और इन्हें मनाने की विधियाँ भी अनूठी हैं। ये मेले-त्योहार कहीं धार्मिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि लिये होते हैं, तो कहीं सामाजिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित पूरा क्षेत्रीय समाज इनसे जुड़ा रहता है और इस तरह ये मेले-त्योहार जीवन की धड़कन वनते हैं।

लोक देवताओं की यात्राएँ और कुछ ऐसे प्राचीन अनुष्ठान भी इस देव परम्परा के प्रमुख अंग हैं, जो अतीत से चले आ रहे हैं। कुल्लू में तो अधिकांश देवताओं की अपनी भार्ता (वार्ता) है, जिसमें देवता अपने देवत्व के इतिहास का बखान गूर के माध्यम से करता है। मगर उन भार्ताओं की भाषा इतनी पुरानी और जटिल है कि उसके अर्थ निकालने की क्षमता रखनेवाले बहुत कम बुजुर्ग रह गए हैं।

इन लोक देवताओं की अपनी न्याय प्रणालियाँ हैं, जिन्हें समझने के लिए व्यावहारिक तौर पर देखना ज़रूरी है। यह बात गौर करने लायक है कि स्वतंत्रता के बाद जहाँ लोकतंत्रीय प्रणाली के तहत पंचायत स्तर तक की शासन व्यवस्था और विभिन्न स्तरों की न्याय पालिकाएँ स्थापित हुई हैं, वहाँ ग्रामीण स्तर पर देवता की संस्था का नियंत्रण अभी तक बना हुआ है और लोग न्याय के लिए देवता के दरवार में जाते हैं। ग्रामीण जनता को देव संस्था की व्यवस्था आज भी विश्वसनीय प्रतीत होती है और वे अभी तक इसे छोड़ने की स्थिति में नहीं पहुँचे।

कुल्लू देव परम्परा के इस शोध-सर्वेक्षण में अनेक ऐसे स्थानिक शब्द आये हैं, जिनकी व्याख्या के बिना इस सांस्कृतिक विरासत को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। ऐसे शब्दों के अर्थ ' शिष्ट में दिए गए हैं मगर कई शब्द विस्तृत व्याख्या की अपेक्षा रखते हैं, जो आगामी शोध का विषय है। हर देव. ्वता के साथ कई जनश्रुतियाँ जुड़ी हैं, जिनमें निहितार्थ भी शोध के लिए कई गवाक्ष खोलते हैं। ऐसी जनश्रुतियों को भी इस पुस्तक में सम्मिलित किया गया है, इनके माध्यम से भी अँधेरे अतीत पर रोशनी पड़ सकती है।

यह शोध-सर्वेक्षण कार्य ऐसे क्षेत्रीय सर्वेक्षकों के माध्यम से सम्पन्न हुआ है जो अपने देवी-देवताओं और सांस्कृतिक विरासत से निकट परिचय रखते हैं। लेकिन बहुत जगह उन्हें भी तथ्यात्मक सूचनाएँ जुटाने में कठिनाई आती रही है। इसलिए इसके अंतिम रूप से तथ्यात्मक होने का दावा नहीं किया जा सकता। इसमें सुधार और संशोधन की संभावना वनी रहती है, जो यथा आवश्यकता आगामी संस्करणों या पूरक प्रकाशन में किये जा सकते हैं। कुल्लू देव परम्परा की यह दूसरी पुस्तक *कुल्लू-मनाली* क्षेत्र पर केंद्रित है। इसमें जिन सर्वेक्षकों, सांस्कृतिक विद्वानों, छायाकारों और देव-कारदारों का योगदान रहा है, उन सबके प्रति आभार व्यक्त करते हुए, यह लोक संस्कृति के अध्येताओं, शोधार्थियों और जिज्ञासु पाठकों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत है।

सर्वेक्षण परामर्श

श्री एम.आर. ठाकुर, वरिष्ठ सांस्कृतिक लेखक, कुल्लू।
प्रो. वरयाम सिंह, सदस्य अकादमी, बंजार।
डॉ. सीता राम ठाकुर, ज़िला भाषा अधिकारी, ज़िला कुल्लू।
श्री नरोत्तम नेगी, प्रधान, देवी-देवता कारदार संघ, ज़िला कुल्लू।
डॉ. विद्या चंद ठाकुर, सांस्कृतिक लेखक, कुल्लू।

सर्वेक्षक : कुल्लू खंड

1. **श्री अमर पालशर,** गाँव एवं डाकघर बबेली

देवता-मंदिर : कशु नारायण-बनोगी, जीव नारायण-नथाण, नारायण-नरहाच, भेखली देवी-भेखली, वीर-माछंग, वीरनाथ-गदेढ़, वीरनाथ-बलोहणी, सारी नारायण-भेखली।

2. **श्री इंद्रदेव शर्मा,** गाँव पीपल आगे

देवता-मंदिर : आदि ब्रह्मा-खोखण, ज्वालामुखी-शमशी (संयुक्त लेख), बालक महेश्वर-बजौरा (संयुक्त लेख), हाटेश्वरी माता-बजौरा (संयुक्त लेख)।

3. **श्री ईश्वरी दास शर्मा**, गाँव तलाईटी, डाकघर वारी

देवता-मंदिर : कैला वीर-डोल, कैला वीर-थर्कू, गौहरी देऊ : वीरनाथ-बारी, चामुंडा-कसलादी, चौंगा भगवती-वारी तुनी, छमाहणी नारायण-छमाहण (संयुक्त लेख), जमलू-टिपरी, जमलू-तलाईटी, जमलू-मलाणा, जौड़ा नारायण-पीणी, तौठ बारोवारी-धार्ठ, नाग देवता-माहिष, विजली महादेव- चंसारी, विजली महादेव-मथाण, भागासिद्ध : धमेसरी देवी-तलपीणी (संयुक्त लेख), महामाई-मथाण, वास्तु देव-मड़ोली, हनुमान-छाशणी।

4. **श्री खुशहाल सिंह गुलेरिया**, गाँव कुटी आगे

देवता-मंदिर : काली माता-शाड़ाबाई, भागासिद्ध-नरोगी, भागासिद्ध-बरशोगी, वीरनाथ-बारी पधरू, शीतला माता-पीपल आगे, सूरजपाल-बड़ा भूईण।

5. **श्री गणेश भारद्वाज 'गनी'**, भुट्ठी कॉलोनी, शमशी

देवता-मंदिर : ज्वालामुखी-शमशी (संयुक्त लेख), पिरडी महादेव-पिरडी (संयुक्त लेख), रणपाल-मौहल, श्री राधाकृष्ण-वृंदावणी।

6. **श्री गोपाल सिंह वर्मा**, गाँव छाकी, डाकघर नग्गर

देवता-मंदिर : कार्तिक स्वामी-नथान, काली ओड़ी-अरछंडी, गणपति-घुड़दौड़।

7. **श्री ताराचंद ठाकुर**, गाँव खखनाल, डाकघर जगतसुख

देवता-मंदिर : कोटली देवी-सोयल, खड़ासणी देवी-भाड़का, गौरी शंकर-दशाल, पीऊंली नाग-पटाहर, वीरनाथ-भोष।

8. **श्री तेजराम नेगी,** सचिव, कुल्लू संस्कृति विकास मंच

देवता-मंदिर : काली ओड़ी-बबेली, गौहरी देऊ-मंदरोल, थान देवता-नाँगचा, हिडिम्बा-जिंदौड़।

9. **श्री धर्म सिंह ठाकुर,** केशव बेहड़, रियाड़ा, डाकघर पनगाँ

देवता-मंदिर : अजयपाल : दाणी-झौकड़ी, काली ओड़ी-डोभी, काली नाग-कराल, ज्वाला माता-फोजल, थान देवता-शिम, नारायण-मेहा, भारथा देवी-गलछेत, शेषनाग : पाशुकोट-बैंची, हरि नारायण-काथी, हुरंग नारायण-दराल।

10. **श्री पीयूष कुमार,** लोअर ढालपुर, कुल्लू

देवता-मंदिर : कमला थान-गाहर, थान देवता-तरांबली, दशमी वारदा-गाहर, पंजवीर-गाहर, पंजवीर-तरांबली, बिजली महादेव-तरांबली, सिंहमल-गाहर।

11. **श्री बलीराम ठाकुर,** गाँव व डाकघर काईस

देवता-मंदिर : जुआणू महादेव-नेऊली, थिरमल-धारा, दशमी वारदा-काईस, नेऊली राणी-नेऊली, बणींडू देऊ-काईस, भागासिद्ध : धमेसरी देवी-तलपीणी (संयुक्त लेख), भुवनेश्वरी देवी-पुईद, रोमणू नाग-राऊगी।

12. **श्री बुद्धि सिंह प्रभाकर,** गाँव खलोगी, डाकघर खड़ीहार

देवता-मंदिर : कैला वीर-कमांद, कैला वीर-खलोगी, कैला वीर-प्राक्षी, कैला वीर-लोट, कौशू नारायण-खलोगी, गौहरी देऊ : वीरनाथ-जनाहल, गौहरी देऊ-ढालपुर, जमलू-दरपोइण, नार सिंह (संयुक्त लेख), नारायण-कमांद, नारायण-जनाहल, नारायण-लोट, पंजवीर-करेरी, पंजवीर-खलयाणी, पड़ासर देऊ : पराशर ऋषि-कमांद, पाशकोट-कमांद, पिरडी महादेव-पिरडी (संयुक्त लेख), बराधी वीर-पीज़, रुपणपाल-पाहनाला, श्रीपाल-बंसू, सोलह सुरगणी- बंसू, हुरगू नारायण-जोंगा।

13. **श्री भोप सिंह ठाकुर,** गाँव पेदग, डाकघर शालंग

देवता-मंदिर : नार सिंह (संयुक्त लेख), भागासिद्ध-डुघीलग (संयुक्त लेख)।

14. **सुश्री विद्या शर्मा,** सेवानिवृत्त ज़िला भाषा अधिकारी, गाँव डोभी, डाकघर पुईद

देवता-मंदिर : श्री रघुनाथ जी-रघुनाथपुर कुल्लू शहर।

15. श्री शमशेर सिंह, गाँव बाग्गा, डाकघर रायसन

देवता-मंदिर : कालिया नाग-शिरढ़, गौहरी देऊ : वीरनाथ-व्यासर, विष्णु भगवान-दुआड़ा, वीरनाथ-डेहरा सेरी।

16. श्री संजय कुमार गूर, गाँव नांगाबाग, डाकघर बंदरोल

अनुपूरक सामग्री

देवता-मंदिर : कोटली देवी-सोयल, गणपति-घुड़दौड़, गौहरी देऊ : वीरनाथ-थाच तथा बड़ाग्राँ, पीऊंली नाग-पटाहर, त्रिजुगी नारायण-पिछला ग्रामग।

17. श्री सुरेन्द्र सिंह, गाँव शाँघन, डाकघर भल्याणी

देवता-मंदिर : क्षेत्रपाल-शालंग, जमलू-शिलाग्राँ, त्रिजुगी नारायण-पिछला ग्रामग, फलाणी नारायण-फलाण, भागासिद्ध-डुघीलग (संयुक्त लेख), भालठी नारायण-भालठा, लोहड़ी अच्छरी-जिंदी, हुरगू नारायण-गदियाड़ा, हुरगू नारायण-भूमतीर।

18. डॉ. सूरत ठाकुर, गाँव परगाणु, डाकघर भूंतर

देवता-मंदिर : अग्निपाल-पाथला, कलासन-चनाहलदी, क्याणी नाग-क्याणी, गर्गाचार्य-लाहशणी, गौतम ऋषि-शाट, चमन ऋषि-शिल्हा, चामुंडा-धारा, चौंगासन-चौंग, छमाहणी नारायण-छमाहण (संयुक्त लेख), जगथम- बरशैणी, जमलू-तोस, जांबद-शांगणा, जौड़ा नारायण- कशाधा, ज्वालामुखी-शमशी (संयुक्त लेख), नारायण-पुलगा, नैना भगवती : नागिन-मणिकर्ण, पंचासन-मतेउड़ा, बालक महेश्वर-बजौरा (संयुक्त लेख), भटंती-पड़ेई, भागासिद्ध : धमेसरी-तलपीणी (संयुक्त लेख), मंगलेश्वर महादेव-छैऊंर, महादेव-चौकी, रावल : याज्ञवल्क्य-ऊच, रावल : याज्ञवल्क्य-ग्राहण, रूपासन-धारला, वीरनाथ-टाहुक, शपराड़ा नारायण : भृगु ऋषि-बड़ोगी, शवार्श ऋषि-नकथान, श्री रामचंद्र-मणिकर्ण, सुन्न नारायण-डडेई, सोमू नारायण-कसोल, हाटेश्वरी देवी-हाट (संयुक्त लेख)।

19. श्री हरि सिंह, गाँव एवं डाकघर भुट्ठी

देवता-मंदिर : कतरूसी नारायण-जठाणी, गौहरी देऊ-थाच, गौहरी देऊ : वीरनाथ-बड़ाग्राँ, थान देवता : क्षेत्रपाल-भुट्ठी, पंचाली नारायण-ग्रामग, फुंगणी माता-तिऊन।

सर्वेक्षक : मनाली खंड

1. **श्री गोपाल सिंह वर्मा**, गाँव छाकी, डाकघर नग्गर

   देवता-मंदिर : चामुंडा-नशाला, त्रिपुरा सुंदरी-नगर।

2. **श्री टेकचंद ठाकुर**, गाँव कन्याल, डाकघर छियाल

   देवता-मंदिर : कंचन नाग-गोशाल, कार्तिक स्वामी-सिमसा, गौहरी देऊ-पारशा, जमलू-कुलंग, जमलू-प्रीणी, जमलू-बुरुआ, फाहली नाग-भाड़का, वशिष्ठ ऋषि-वशिष्ठ, शरबणी देवी-शूरू, शांडल रिखी-शलीण, शिरघण नाग-भनारा, शौंकू देऊ-नसोगी, सरीहटी नारायण-अलेऊ, सियाली महादेव-सियाल, हिड़मा : हिडिम्बा देवी-ढूंगरी।

3. **श्री ताराचंद ठाकुर**, गाँव खखनाल, डाकघर जगतसुख

   देवता-मंदिर : कार्तिक स्वामी-खखनाल, जमलू-सोयल, दोचा मोचा-गज़ां करज़ां, नीलासुरी देवी-हरिपुर, पार्वती माता-खखनाल, माधो राय-हरिपुर, वासुकि नाग-बल्थाह (संयुक्त लेख), विष्णु देवता-सजला।

4. **श्री धर्म सिंह ठाकुर**, केशव बेहड़, रियाड़ा, डाकघर पनगाँ

   देवता-मंदिर : जंबलू-बड़ाग्राँ, जंबलू : बैड़ा देऊ-शांगचर, जगथम-पनगाँ, जौऊसु नाग-जलसा, धुंबल नाग-पीह, नारायण-लिगन, नीलकंठ महादेव-डोबा, सिंहासनी माता-बड़ाग्राँ।

5. **श्री शमशेर सिंह**, गाँव बाग्गा, डाकघर रायसन

   देवता-मंदिर : अंबल देवता-बशकौला, गौरी शंकर-जगतसुख, जंबलू-छानी, जंबलू-जगतसुख, जंबलू-बंदल, जंबलू-बशकौला, धुंबल नाग-मंगाणा, भांदल माता-गोशाल, मनु ऋषि-पुरानी मनाली, वासुकि नाग-बल्थाह (संयुक्त लेख), संध्या गायत्री-जगतसुख।

6. **श्री संजय कुमार गूर**, गाँव नांगाबाग, डाकघर बंदरोल

   अनुपूरक सामग्री

   देवता-मंदिर : कार्तिक स्वामी-खखनाल, जमलू-सोयल, नीलासुरी देवी-हरिपुर, पार्वती माता-खखनाल, माधोराय-हरिपुर।

   छायाकार : श्री शमशेर सिंह, डॉ. सूरत ठाकुर, सर्वश्री टेकचंद ठाकुर, बुद्धि सिंह प्रभाकर, ईश्वरी दास शर्मा, धर्म सिंह ठाकुर, हरि सिंह, पीयूष कुमार, गणेश भारद्वाज 'गनी', गोपाल सिंह वर्मा व बलीराम ठाकुर।

सर्वेक्षण संयोजन प्रभारी

रमेश जसरोटिया

अनुसंधान अधिकारी, हिमाचल अकादमी।

कुल्लू खंड

श्री रघुनाथ जी

रघुनाथपुर कुल्लू शहर, तहसील व ज़िला : कुल्लू।
मूल स्थान : श्री अयोध्या जी।
मंदिर एवं भंडार : रघुनाथपुर।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का मंदिर। इसके मुख्य द्वार के बाहर जय-विजय नामक दो द्वारपाल स्थापित हैं। देव प्रांगण में बने लघु मंदिरों में नरसिंह, हनुमान तथा शिव की मूर्तियाँ स्थापित हैं।
अधिकार क्षेत्र : सम्पूर्ण कुल्लू ज़िला यानी स्वतंत्रता पूर्व का कुल्लू राज्य।
प्रबंध : कुल्लू के राजा रघुनाथ जी के पारम्परिक छड़ीबरदार हैं। रघुनाथ जी के हर कार्य में उनका उपस्थित होना अनिवार्य है। रघुनाथ जी के समस्त कार्य को सुचारु रूप से निभाने के लिए राजपरिवार से ही एक कारदार नियुक्त होता है। वर्ष में होनेवाले सभी त्योहारों के आयोजन का प्रबंध, मंदिर में दूर-दराज के देवताओं के आने पर उनकी व्यवस्था, रघुनाथ जी के बहुमूल्य भंडार की देख-रेख, आय-व्यय का विवरण रखना, समस्त कर्मचारियों के लिए सुविधा जुटाना तथा इन्हें वेतन देना, मंदिर में होने वाले उत्सवों के लिए खाद्यान्न सामग्री तथा दैनिक पूजा की पूरी व्यवस्था आदि कार्य कारदार की देखरेख में होते हैं।



न्याय प्रणाली : सामान्यतया देवता द्वारा स्वयं। विशेष परिस्थितियों में 'जगती-पूछ' से न्याय किया जाता है।
पूजा : मंदिर में पूजा के लिए पुजारी नियुक्त होते हैं, जो अपनी बारी के अनुसार पूजा करते हैं। पुजारी ऐसा ब्राह्मण होता है, जो सात्विक हो, हल न चलाता हो और कर्मकांड का भी ज्ञाता हो। पूजा करने से पूर्व यह स्नान करके धोती, रामनामी चादर, सिर पर विशेष किस्म की टोपी और ऊनी अंगी पहनता है। रघुनाथ जी की पूजा प्रतिदिन सात बार होती है। पहली पूजा रघुनाथ जी को निद्रा से उठाने हेतु की जाती है, जिसे *जगाऊण* कहते हैं। दूसरी *प्रातपूजा* कहलाती है। तीसरी *मध्याह्न पूजा* होती है। चौथी पूजा दिन के *शयन* की होती है। इसके पश्चात् मंदिर के कपाट सायं की पूजा तक बंद कर दिए जाते हैं। पाँचवीं पूजा सायंकाल मंदिर खुलने पर रघुनाथ जी को जगाने की होती है। छठी *सायं पूजा* होती है। सातवीं *शयन पूजा* होती है। गर्मियों और सर्दियों के लिए पूजा का समय निर्धारित है।

रघुनाथ जी को दिन में छह बार भोग लगाया जाता है। भोग पुजारी द्वारा धोती पहन कर बनाया जाता है। रघुनाथ जी को लगने वाले छह भोगों में से पाँच बाल भोग कहलाए जाते हैं, जिनमें दूध, पूरी तथा देसी घी में बनी लूचियाँ चढ़ाई जाती हैं। छठा भोग राजभोग कहलाता है। यह दिन की बड़ी पूजा के समय लगता है। इसमें दाल, चावल, सब्जियाँ आदि पूरी रसोई तैयार की जाती है। हर भोग में तुलसी के पत्ते रखे जाते हैं।

दशहरा, वसंत पंचमी, वन विहार, जल विहार आदि अवसरों पर जब रघुनाथ जी मंदिर से बाहर आते हैं तो वहाँ विशेष पूजा का आयोजन होता है, जो नियुक्त किए गए पुजारियों द्वारा की जाती है। मंदिर में पुजारी की

सहायता के लिए भाट्टू नियुक्त किए जाते हैं। इनका काम रघुनाथ जी के लिए पुष्प चुनना, हार बनाना, चंदन घिसना, तुलसी, दूर्वा आदि एकत्र करना, अक्षत तैयार करना, रघुनाथ जी को भोग रखना, घंटी बजाना, दीपक जलाना आदि पूजा सम्बंधी विविध कार्य सम्पन्न करना होता है। मंदिर में चार-पाँच भाट्टू रहते हैं। इनमें से एक भाट्टू राजा के निजी निवास में स्थापित मंदिर में पूजा करता है। भाट्टू के वस्त्र साधारण होते हैं। पूजा में धोती तथा सिर पर टोपी पहनना आवश्यक होता है। रघुनाथ जी के लिए चावल, रोटी आदि का भोग पुजारी ही बनाता है, परन्तु हलवे आदि का भोग भाट्टू भी बना सकता है।

पूजा के लिए झारियों में पानी भर कर देने के अतिरिक्त रघुनाथ जी के भोग के लिए दाल-चावल साफ करना, सब्जियाँ काटना, लकड़ियाँ काटना, मंदिर में झाड़ू-पोंछा करना, चावल आदि धो कर देना जैसे काम नीहर करता है। उसका ब्राह्मण होना ज़रूरी नहीं है, वह किसी भी उच्च वर्ग का हो सकता है। भोग के बर्तन साफ करने के लिए एक अतिरिक्त व्यक्ति होता है। इसे *मजाऊणी* कहते हैं। इसे मेहनताना के रूप में अन्न का कुछ भाग दिया जाता है।

रघुनाथ जी की पूजा के वाद्ययंत्रों में नौबत का विशेष महत्त्व है। नौबत बजने से दूर-दूर तक रघुनाथ जी की पूजा होने का पता चल जाता है।

रथ : रघुनाथ जी का काष्ठ निर्मित 19 पहियों वाला विशाल रथ है जिसे रस्से की सहायता से जनसमूह द्वारा खींचा जाता है। जहाँ अन्य रथ देव भंडार में रहते हैं वहाँ यह रथ ढालपुर मैदान के एक छोर में रखा जाता है। कुछ वर्षों पूर्व तक यह रथ खुले में रहता था परन्तु अब इसे उसी स्थान पर ईंटों से बनाए एक बड़े हाल में सुरक्षित रखा जाता है। रथ का मूल ढाँचा देवदार की लकड़ी से तैयार किया जाता है, जिसमें माहुन (वेदों में वर्णित बिल्व वृक्ष) की लकड़ी के पहिये लगाए जाते हैं। पहिये गरारी से घूमते हैं, जिनके बीच में बान या मोहरू की लकड़ी के मूसल लगे होते हैं। रथ के मध्य भाग में लकड़ी के तख्ते के बने पटड़े पर रघुनाथ और सीता जी की मूर्तियाँ रखी जाती हैं। रथ के ऊपर काष्ठ फलकों की छत है। इसे झालरदार रंगीन कपड़ों से ढका जाता है। रथ के शिखर पर चाँदी का छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : रघुनाथ और सीता जी की मूर्तियाँ हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को नवसंवत्सर के दिन रघुनाथ जी के मंदिर में नए वर्ष का पंचांग पढ़ा जाता है। इस अवसर पर रघुनाथ जी को भोग लगा कर उनकी आरती की जाती है। अगले दिन *गरुड़ द्वितीया* मनाई जाती है। इसमें डोल लगता है। राजा छड़ी पकड़ते हैं। रघुनाथ जी झूला झूलने के उपरांत पुनः मंदिर में विराजमान हो जाते हैं। तृतीया को *पावन तृतीया* उत्सव मनाया जाता है। नवमी को *राम जन्मोत्सव* का आयोजन होता है।

बैसाख मास की संक्रांति को बैसाखी, शुक्ल पक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया, द्वादशी को *वन विहार*, चतुर्दशी को *नरसिंह चौदश पर्व* मनाए जाते हैं।

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को *जल विहार* उत्सव का आयोजन होता है।

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को *जगन्नाथ द्वितीया*, एकादशी को *देव शयनी*, द्वादशी को *तुलसी पूजा* होती है।

श्रावण शुक्ल एकादशी को *पवित्रा रोपणी* तथा पूर्णिमा को *रक्षा बंधन* मनाया जाता है।

भादों मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को *जन्माष्टमी*, द्वादशी को *केसर डोल उत्सव*, शुक्ल पक्ष में *अंग प्रबोधिनी एकादशी*, *वामन द्वादशी* और *अनंत चौदश* के उत्सव होते हैं।

आश्विन मास की संक्रांति को *सैर साजी* तथा शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक *नवरात्र* मनाए जाते हैं। दशमी को *दशहरे* का शुभारम्भ होता है। इस अवसर पर सर्वप्रथम *बीज पूजा* की जाती है, जिसमें टीका, चंदन, गोरोचन, कस्तूरी, लौंग, इलायची, केसर एवं पारा को मिलाकर अष्टगंध तैयार किया जाता है। इस अष्टगंध

से रघुनाथ जी के सिंहासन, छत्र, पंखा, ढाल, तलवार, तराजू, चँवर, मुट्ठा आदि पर राम-राम लिखा जाता है तथा इन सबका पूजन किया जाता है। इस के पश्चात् अश्व-पूजन होता है, जिसे *घोड़ पूजन* कहा जाता है। इसमें घोड़ी को चाँदी के गहनों से सुसज्जित कर, उसे सुन्दर वस्त्र पहनाए जाते हैं। मंदिर की ड्योढ़ी के पास आकर राजा द्वारा इसकी पूजा की जाती है तथा ऊपर से अखरोट फेंके जाते हैं।

बीज पूजा और घोड़ पूजा के पश्चात् रघुनाथ जी की शोभायात्रा आरम्भ होती है। नरसिंह जी की घोड़ी भी सज-धज कर इस शोभायात्रा में शामिल होती है। ढालपुर पहुँच कर पूजा के उपरांत रघुनाथ जी रथ में विराजमान होकर ढालपुर शिविर तक जाते हैं। शिविर में सात दिनों तक प्रतिदिन सात आरतियाँ होती हैं। दशहरे में सम्मिलित समस्त देवता छठे दिन रघुनाथ जी को नमन करने क्रमानुसार आते हैं। देवता पहले रघुनाथ जी को फूल अर्पित करते हैं, फिर श्रद्धावश रथ स्वयं ही झुक जाते हैं। इस समागम को *मुहल्ला* कहते हैं। इसी दिन रात को लगभग 9-10 बजे *देवी रूप* का विशेष आयोजन होता है। इसमें एक व्यक्ति देवी बनता है तथा दूसरा व्यक्ति शेर। शेर पर देवी विराजमान होती है। राजा द्वारा शक्ति पूजन किया जाता है। उस समय चंदरौलियों और कान्ह का नृत्य होता है।

सातवें दिन लंका दहन के लिए केवल रघुनाथ जी रथ पर सवार होकर जाते हैं। लंका बेकर में लंका दहन के बाद सीता जी को रघुनाथ जी के साथ बैठाकर रथ मैदान तक लाया जाता है। वहाँ इन्हें पालकी में बैठाते हैं और शोभा यात्रा मंदिर तक आती है। मंदिर में पहुँच कर राजा छड़ी पकड़ते हैं तथा अठारह करडू के निमित्त 'धड़छ' जलाया जाता है।

कार्तिक कृष्ण प्रतिपदा को *राम रास* तथा त्रयोदशी को *धन तेरस* मनाया जाता है। इसी मास की अमावस्या को *दीवाली* मनाई जाती है। इस अवसर पर रघुनाथ जी तुलसी के पास बैठकर कहूए (धान के पराल का पूला) का पूजन करते हैं। राजा छड़ी पकड़ते हैं और भोग लगाया जाता है। धान की नई फसल आने के उपलक्ष्य में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को *अन्न कूट* उत्सव मनाया जाता है। इसमें पके चावलों का गोवर्धन पर्वत बना कर उस पर रघुनाथ जी को बैठाया जाता है। राजा छड़ी पकड़ते हैं। गो-पूजन होता है। इसी पक्ष की एकादशी से पाँच दिनों तक *पंजभीष्म* पर्व मनाया जाता है।

मार्गशीर्ष मास की षष्ठी को कपिल मुनि के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में *कपिला षष्ठी* पर्व मनाया जाता है। इस दिन रघुनाथ जी को माश के बने सोलह बड़ों का भोग लगता है। पूर्णिमा को *वीर पुन्या* मनाई जाती है। इस दिन वीर देवता और अस्त्र-शस्त्रों की पूजा होती है।

पौष मास की पूर्णिमा को *दूध पेड़ा* उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव पर रघुनाथ जी को सायंकाल में दूध एवं पेड़े का भोग लगता है। राजा छड़ी पकड़ते हैं और गद्दी पर बैठते हैं।

मकर संक्रांति के दिन राजा द्वारा रघुनाथ जी को बधाई के रूप में चाँदी की दूर्वा भेंट की जाती है। मंदिर में आरती और पूजन होता है। माघ कृष्ण एकादशी को मनाए जाने वाले *तिला एकादशी* नामक उत्सव के दिन राजा द्वारा रघुनाथ जी को तिल का भोग लगाया जाता है और वे छड़ी पकड़ते हैं।

माघ शुक्ल पंचमी को *वसंत* उत्सव का आयोजन होता है। पहले यह ढालपुर मैदान में मनाया जाता था फिर गत पचास वर्षों से इसका आयोजन राजमहल के प्रांगण में होने लगा, परन्तु वर्ष 2009 से यह उत्सव पुनः ढालपुर मैदान में मनाया जाने लगा है। रघुनाथ जी की शोभा यात्रा ढालपुर के रथ-मैदान तक जाती है। वहाँ राम और भरत के मिलन का दृश्य *भरत-मिलाप* किया जाता है। रथ में राम, हनुमान, वशिष्ठ एवं भरत विराजमान होते हैं। वैरागी परिवार के व्यक्ति को हनुमान बनाया जाता है, जो उछल-कूद कर अपनी खुशी की अभिव्यक्ति लोगों को रंग लगा कर करता है। चौथे पहर की पूजा मैदान में की जाती है। तत्पश्चात् रघुनाथ जी की ओर गुलाल फेंका जाता है।

राजा पीले वस्त्र धारण कर रघुनाथ जी की शोभा-यात्रा में शामिल होते हैं। मंदिर में गुलाल फेंकने की प्रक्रिया वसंत पंचमी से लेकर होली तक चालीस दिन चलती है।

फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को सीता जयंती के अवसर पर *फुल डोल* उत्सव मनाया जाता है। रघुनाथ जी के मंदिर के बाहर झूला लगाकर रघुनाथ जी को पुजारी झूला झुलाता है। इसी पक्ष की चतुर्दशी को *शिवरात्रि* मनाई जाती है। फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से आठ दिनों तक *होलाष्टक* मनाए जाते हैं। वैरागी सम्प्रदाय के लोग अष्टमी को मंदिर में होली गायन आरम्भ कर देते हैं। वे रघुनाथ जी पर गुलाल फेंकते हैं। ऐसा माना जाता है कि वैरागियों को इन दिनों रघुनाथ जी साक्षात् दर्शन देते हैं। राजा इन दिनों छड़ी पकड़ते हैं तथा आरती होती है। अष्टमी की शाम को *कमलासन उत्सव* मनाया जाता है।

फाल्गुन पूर्णिमा को छोटी व बड़ी होली के रूप में दो दिवसीय *होली* उत्सव मनाया जाता है। राजा नए वस्त्र धारण करके रघुनाथ जी को गुलाल अर्पित कर आशीर्वाद लेते हैं, फिर लोग होली खेलते हैं। बड़ी होली के दिन मुहूर्तानुसार रात को *फाग* उत्सव मनाया जाता है। इस दिन मंदिर के बाहर रघुनाथ जी कमलासन पर विराजते हैं। मैदान में होलिका पूजन होता है। होलिका दहन के लिए झाड़ियों के दो बड़े ढेर लगाए जाते हैं, जिसमें एक ढेर नरसिंह की फाग का तथा दूसरा रघुनाथ जी की फाग का होता है। होलिका पूजन के पश्चात् इन ढेरों में आग लगाई जाती है। ढेरों के बीच में ध्वजा रखी होती है, जिसके सिरे पर चाँदी का रुपया बाँधा जाता है। इसे वैरागी परिवार के लोग गिरा कर प्राप्त करते हैं। फाग के जलने के दृश्य से उसकी दिशा आदि को देख कर पुराने लोग इस बात का अनुमान लगाते हैं कि इस वर्ष क्या घटने वाला है। लोग जली हुई फाग की राख का मस्तक पर टीका लगाते हैं।

जनश्रुति : सन् 1637 से 1662 ई. तक कुल्लू में राजा जगत सिंह राज्य किया करते थे। उनके दरबार में हर वर्ग के लोगों का ताँता लगा रहता था। कुछ लोग इस प्रकार की सोच वाले भी आते थे, जिनका प्रयास रहता था कि राजा को किस प्रकार प्रसन्न रखा जाए ताकि राजा की कृपा-दृष्टि उन पर बनी रहे। इसी प्रयास में किसी व्यक्ति ने राजा को सूचना दी कि मणिकर्ण घाटी के टिप्परी गाँव के दुर्गादत्त नामक एक ब्राह्मण के पास एक पत्था मोती हैं, जो राज दरबार में होने चाहिए, न कि किसी ब्राह्मण के पास। राजा ने जब यह सुना तो उसे यह बात भा गई कि वास्तव में मोती तो राजदरबार में राजकोप की शोभा है। अतः उन्हें हर हालत में राजदरबार में लाना होगा। राजा ने ब्राह्मण दुर्गादत्त को कुल्लू राजकोष में मोती भेजने का संदेश भेजा। ब्राह्मण ने सूचित किया कि उसके पास मोती नहीं हैं। एक बार राजा मणिकर्ण जा रहा था तो रास्ते में पार्वती नदी के पार टिप्परी गाँव आया। राजा ने ब्राह्मण से कहा-मेरे मणिकर्ण से लौटने तक वह मोती सौंप दे अन्यथा परिणाम ठीक नहीं होगा। भयभीत गरीब ब्राह्मण ने अपने परिवार को घर के अन्दर बंद कर मकान में आग लगा दी। उस आग में अपनी एक-एक बोटी काट कर फेंकते हुए ब्राह्मण कहने लगा, 'ले राजा मोती'। वापसी में जब राजा को इस घटना का पता चला तो कुल्लू पहुँच कर उसका सुख-चैन छिन गया। वह ठीक से सो भी नहीं पाया। खाने में उसे कीड़े दिखाई देने लगे, पानी खून की भांति लाल दिखाई देने लगा। इस कारण राजा को अन्न-जल ग्रहण करना कठिन हो गया। तब इस दुःख के निवारण हेतु राजा अपने गुरु कृष्णदास पयहारी के पास गए। उन्होंने राजा से कहा कि यदि अयोध्या से श्रीराम और सीता जी की मूर्तियाँ, जिन्हें भगवान राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय स्वयं बनाया था, को कुल्लू लाया जाए तो उनके सारे कष्ट दूर हो सकते हैं। तब राजा ने दामोदर दास नामक एक महंत को यह कार्य सौंपा, जिसने अयोध्या जा कर कुछ काल के बाद उचित समय पा कर मूर्तियों को उठाया और कुल्लू आकर उन्हें राजा को सौंप दिया। राजा ने अपने गुरु की आज्ञानुसार भगवान की पूजा-अर्चना की, जिससे उनका सारा कष्ट दूर हो गया। इस चमत्कार से प्रभावित होकर राजा ने अपना सारा राज-पाट रघुनाथ जी को समर्पित किया और स्वयं उनके छड़ीबरदार बन गए।

अग्निपाल

गाँव : पाथला, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : पाथला।
भंडार : पाथला में कोट शैली का।



स्थापत्य : पहाड़ी शैली में बना 25ग25 फुट का डेढ़ मंज़िल का मंदिर है। इसमें अंदर गर्भगृह बना है। छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर बदोर लगा है।
अधिकार क्षेत्र : केवल गाँव पाथला।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, गोंठीदार, नीहर की समिति। इनके अतिरिक्त गाँववाले भी सहायता करते हैं।
न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप व बेठर से की जाती है।
रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ।
मोहरे : बारह।
मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास के 20 प्रविष्टे को देवता का रथ निकलता है, इसमें काली नाग भी शामिल होता है। आश्विन मास की पूर्व संध्या से लेकर 2 प्रविष्टे तक *शौयरी* मेले का आयोजन होता है। 2 प्रविष्टे को देवता गाँव जरी, पाथला तथा बजियांदा में धूप ग्रहण करता है। पाथला में गूर देऊ खेल करता है।
जनश्रुति : सैकड़ों वर्ष पूर्व देवता निहा-नदोण (समुद्र तट) से कुल्लू की ओर आया। उस समय पाथला गाँव में राणाओं का आधिपत्य था। वे जनता पर अत्याचार करते थे। देवता ने पाथला पहुँच कर राणाओं से अपने लिए स्थान माँगा। अभिमान में चूर राणाओं ने देवता को अपनी शक्ति से उन्हें हराने और अपने तप से उनके महलों को नष्ट करने की चुनौती दी। उन्होंने कहा कि यदि वह ऐसा करने में सफल हुआ तो वे उसे देवता मान कर बकरा भेंट करेंगे अन्यथा कौवा चढ़ा कर वहाँ से भगा देंगे। देवता ने चुनौती स्वीकार कर ली। अगली प्रातः राणाओं के परिवार वाले जब गोबर निकालने के लिए खुड़ में गए तो ज्यों ही उन्होंने कुदाली से गोबर खोदा तो आग भड़क उठी और देखते ही देखते महल सहित वे सब नष्ट हो गए। बाद में गाँव वालों ने उसे अग्नि देवता मानकर वहाँ मंदिर का निर्माण करके अग्निपाल नाम से देवता की स्थापना की।

अजयपाल : दाणी

गाँव : झौकड़ी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : ज़िला कांगड़ा में बड़ा भंगाल।
मंदिर एवं भंडार : झौकड़ी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर बीस फुट लम्बा और अठारह फुट चौड़ा है। लगभग बीस वर्ष पूर्व बने इस मंदिर की छत ढलवाँ है, जिसके किनारे पर लकड़ी की झालरें सुशोभित हैं। मंदिर की मघिरी (गर्भ गृह) में काष्ठ की लघु मूर्ति स्थापित है। मूर्ति पुरुष आकृति की है।
अधिकार क्षेत्र : झौकड़ी, बुलंग, फोजल, धारा, दुआड़ा।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, काईथ, भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : 'पूछ, गैटी, पोगे, मलोही' द्वारा तथा देऊ झुआरना से। देऊ झुआरना में देवता का मन ही मन स्मरण कर, संकट के निवारण और विरोधी को दंडित करने की प्रार्थना के साथ-साथ देवता से न्याय की विनती की जाती है। जब दोषी को दंड मिल जाए तो देवता की दिल से जयकार करनी होती है।
पूजा : मंदिर में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है।

मेले-उत्सवों आदि विशेष अवसरों पर जव रथ पूर्णरूप से सजा होता है तो सुवह-शाम घंटी और धड़छ से पूजा होती है। यहाँ पूजा में कभी भी वाद्य यंत्रों का प्रयोग नहीं होता।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेंटा रथ, जिसके शीर्ष पर कलश सज्जित होता है।

मोहरे : बारह रजत तथा दो अष्टधातु के।

मेले-त्योहार : आश्विन मास की पूर्णिमा को *वीर पजाई* तथा श्रावण मास में *भोज* का आयोजन। आयोजन के दिन का निर्धारण देवता ही करता है। भोज में सभी को खीर खिलाई जाती है।

जनश्रुति : देवत्व प्राप्ति से पूर्व एक शक्तिशाली दानव होने के कारण इसे दाणी भी कहा जाता है। तब यह लोगों को बहुत तंग किया करता था। इसी वृत्ति के कारण एक वार यह कुल्लू की लग घाटी के ढाढू नामक व्यक्ति के पीछे-पीछे चल पड़ा, लेकिन वह व्यक्ति बहुत बहादुर था। उसने इसका डटकर मुकाबला किया। दोनों में कई शक्ति परीक्षण हुए, जिनमें पराजित होने के कारण इसको ढाढू के अधीन होना पड़ा। ढाढू ने अपना दास बनाकर इसे रहने के लिए अपने घर के वाहर सीढ़ियों के नीचे स्थान दिया। अब इसे ढाढू द्वारा सुबह बताए गए कार्य शाम तक और शाम को बताए गए कार्य सुबह तक पूर्ण करने पड़ते थे।

कुछ समय बाद ढाढू पर शनि की दशा शुरू हुई। उसने अपना असर दिखाया, जिस कारण उसके दास की मुलाकात शनि से हुई। शनि ने इसे ढाढू का घर छोड़ कर साथ चलने को कहा और राक्षसी वृत्ति छोड़कर इससे देववृत्ति अपनाने का वचन भी लिया। शनि ने इसे आशीर्वाद दिया कि इसका वास लोहे में होगा और जो भी इसकी पूजा करेगा वह शनि के प्रकोप से बचेगा। शनि का वर पाकर यह तप के लिए महाचिन गया और देव-शक्ति को प्राप्त कर अजयपाल के नाम से जाना जाने लगा। महाचिन से यह स्पीति आया। वहाँ से रघु और कौरथू नामक दो गड़रियों के साथ कुल्लू के पनगाँ नामक स्थान पर पहुँचा। इन दोनों ने अपने पशुधन की रक्षा के



लिए इसकी पूजा आरम्भ की। भेड़-बकरियों का रक्षक होने के कारण यह गड़रियों का देवता कहलाता है और इनके साथ-साथ चलता है। इस तरह यह घूमता हुआ वड़ा भंगाल पहुँचा और वहाँ से फातर नाम के भेड़ पालक के साथ कुल्लू के झौकड़ी गाँव में वापिस आया। इसका वर्णन देव भारथा में भी आता है-*बीड़ मगाह न आऊ, भेड़ा-बौकरी चारी। फातर मैलू, तेई सैंगे झौकड़ी पुजू* अर्थात् बड़े भंगाल से आया, भेड़ें-बकरियाँ चराईं। फातर मिला, उसके साथ झौकड़ी आया।

कुछ समय वाद किसी व्यक्ति में देव शक्ति का प्रवेश हुआ। उसने वताया कि यहाँ देवता अजयपाल ने अपना स्थाई निवास वना लिया है। देव-कृपा से लोगों की व्याधियाँ समाप्त और मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं। तव लोगों ने गाँव में मंदिर का निर्माण कर इसमें अजयपाल की विधिवत् स्थापना की और इसे ग्राम-देवता के रूप में पूजने लगे।

आदि ब्रह्मा

गाँव : खोखण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खोखण।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से पैगोड़ा शैली में बना चार मंज़िल का मंदिर। लगभग 700 वर्ष पुराने इस मंदिर में देवता की पिंडी स्थापित है। कहते हैं उस समय मंदिर



निर्माण में दस वर्ष का समय लगा था। मंदिर के बायीं ओर स्थित एक छोटे मंदिर में भगवान् विष्णु के 24 अवतारों की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। मंदिर परिसर में जोगिनी का मंदिर तथा विभिन्न आकार के तीन शिवलिंग भी स्थापित हैं। मंदिर से लगभग 250 मीटर दूर नरोल बाई (बावड़ी) है, जिसका पानी देव-पूजा हेतु उपयोग में लाया जाता है।

शाखा मंदिर : गाँव रोहलगी।

अधिकार क्षेत्र : पंचगढ़ के अंतर्गत आनेवाली पाँच फाटियाँ और तेरह पंचायतें।

प्रबंध : कारदार, भंडारी, पुजारी, कठारी, गठीदार, गूर, बजंत्री की समिति।

न्याय प्रणाली : पर्ची डालकर तथा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। भादों मास में खोखण तथा रोहलगी दोनों मंदिरों में जंगली जड़ी बेठर से पूजा होती है और शाम को तेल का दीया जलाया जाता है। पूजा के समय देववाद्य बजाए जाते हैं। मंदिर में एक समय हलवे का भोग लगता है।

रथ : अंगू नामक लकड़ी का बना दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ। इसके लिए लकड़ी मणिकर्ण से पीछे शीलगोहर के बर्फ़ीले क्षेत्र से लाई जाती है। इसे लाते हुए निश्चित पड़ाव के अतिरिक्त अन्यत्र विश्राम करना वर्जित है। अतः चलते-चलते ही इसे एक व्यक्ति की पीठ से दूसरे व्यक्ति की पीठ पर बदला जाता है और चौथे दिन रोहलगी मंदिर में पहुँचाया जाता है। रथ की यह लकड़ी मक्खन से लीप कर छाजन से ढाँप कर लाई जाती है। इसके बाद पुनः इसे मक्खन से लीप कर एक साल तक मिट्टी में दबाया जाता है। इसके पश्चात् इसे विधिपूर्वक मिट्टी से निकालने के बाद थाउणी (बढ़ई) द्वारा रथ बनाने का कार्य आरम्भ किया जाता है। रथ बनकर तैयार होने के बाद कारदार पंचगढ़ क्षेत्र की पाँच फाटियों और तेरह पंचायतों के लोगों को इसकी प्रतिष्ठा का निमंत्रण देता है। तब देवता मौहल, देवता रणपाल, ज्वाला माता शमशी, नैणा देवी भूलंग, देवता नारायण सोहड़, देवता वीरनाथ शौगी, सत्यावती माता बजौरा, देवता वीरनाथ राजगीर के प्रतीक चिह्न तथा आमंत्रित सभी लोग पवित्र स्नान के लिए मणिकर्ण जाते हैं। पहले दिन शाट में पड़ाव डाला जाता है, दूसरे दिन मणिकर्ण पहुँचते हैं और तीसरे दिन वहाँ ब्रह्मकुंड में स्नान के पश्चात् भोज का आयोजन होता है और उसी दिन लौट कर शाट में रात्रि विश्राम किया जाता है। पाँचवें दिन भूंतर संगम में पड़ाव डाला जाता है और छठे दिन खोखण पहुँचते हैं।

मोहरे : चौदह। इनमें से एक अष्टधातु, दो पीतल तथा ग्यारह चाँदी के हैं। इनके अतिरिक्त रजत निर्मित छड़ी, मोर पंखा, मोरछला, चँवर, फलौहरी, अष्टधातु की घंटी, कृपाण और लोहे की साँकल देवता के निशान हैं।

मेले-त्योहार : प्रथम बैसाख से चार दिवसीय *बिरशू*, 22 बैसाख को तीन दिवसीय *मौहल मेला*, ज्येष्ठ की संक्रांति को गाँव रोहलगी में एक दिवसीय *कापू*, 22 ज्येष्ठ को गाँव भूलंग में *तीन दिवसीय मेला*, प्रथम आषाढ़ को शरोहगी में *नाउगी मेला*, आषाढ़ मास के अंतिम तथा श्रावण मास के प्रथम दो दिन *खोखण मेला*, भादों मास

की संक्रांति को रोहलगी गाँव में *नाउगी मेला,* आश्विन मास की संक्रांति को रोहलगी में *चार दिवसीय मेला,* कार्तिक मास में दशहरे के दौरान सात दिनों तक देवता अपने अस्थाई शिविर में रहता है। दशहरे से वापिस लौटने से पूर्व अन्य देवी-देवता यहीं आकर देवता का आशीर्वाद लेते हैं, पौष मास की पूर्णमासी को चार दिवसीय *खोखण मेला* और दस-पंद्रह वर्षों बाद देवाज्ञा से रोहलगी गाँव में *काहिका* मनाया जाता है। इसमें नौड़ को मारने की परम्परा निभाई जाती है। उसकी छाती पर एक तीर मारकर उसे बेहोश करके गाँव में घुमाया जाता है और फिर मंदिर परिसर में देव-कृपा से उसे फिर जीवित किया जाता है। इस रस्म के बाद देवता की पूजा करके भोग अर्पित करने के पश्चात् ब्रह्म-भोज दिया जाता है, कुछ वर्षों के अंतराल में देवेच्छा से क्षेत्र की रक्षा के लिए *मशहद बजौरा* किया जाता है। इसमें पंचगढ़ के सभी देवी-देवता शामिल होते हैं। उत्सव स्थल पर नौ बलियाँ दी जाती हैं। काफी समय के अंतराल में आश्विन मास में *हारगी* समारोह होता है। इसमें पराशर ऋषि के निमंत्रण पर आदि ब्रह्मा कोठी महाराजा के कमांद गाँव पधारते हैं। वहाँ पराशर ऋषि से मिलने के बाद दूसरे दिन खोखण वापिस आते हैं। पराशर ऋषि को आदि ब्रह्मा का पड़पौत्र माना जाता है, कामगारों के निमंत्रण पर देवता द्वारा स्वयं दिन निर्धारित कर *न्यूल हारगी* होती है। यह उत्सव तीन दिनों तक मनाया जाता है। दस-बारह साल बाद देवता स्वेच्छा से बैराकोट गढ़ जाता है। वहाँ ब्रह्मभोज दिया जाता है। श्रावण मास में खीर का भोग लगता है। माघ मास के शुक्ल पक्ष में एक दिन खिचड़ी का भोज होता है। देवता की आज्ञा अनुसार आषाढ़ व श्रावण मास में नागणी में पाँच-सात दिन, बैसाख मास में रोहलगी में तीन दिन तथा श्रावण मास को खोखण गाँव में समय-समय पर जप होता है।

जनश्रुति : किसी समय खोखण गाँव के साथ लगते बटेलू गाँव की एक राजपूत विधवा अपनी भूमि में निराई कर रही थी। साथ में उसकी छह मास की बच्ची भी थी, जिसे खेत में पेड़ की छाया में लिटाया हुआ था। कुछ समय बाद कन्या ने युवती का रूप धारण करके अपनी माँ की कुदाली से भूमि में खुदाई कर अष्टधातु का एक मोहरा निकाला और पुनः कन्या का रूप धारण कर लिया। उसकी माँ ने मोहरा घर के अन्न-भंडार में रखा और प्रतिदिन उसकी आराधना करनी आरम्भ की। काफी समय बाद जब बटेलू ब्राह्मणों को इसका पता चला तो वे मोहरे की पूजा पर अपना अधिकार बताकर उसे अपने घर ले आए। उन्होंने चमड़े की नार (आँत) का जनेऊ पहन कर गोबर के उपले और तंबाकू के धुएँ से उसकी पूजा आरम्भ कर दी। इससे रुष्ट होकर ब्रह्मा ने बटेलू ब्राह्मणों का नाश कर दिया और स्वयं खोखण में प्रकट होकर पूजा जाने लगा।

कतरूसी नारायण

गाँव : जठाणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जठाणी।

स्थापत्य : जठाणी गाँव में काठकुणी शैली में निर्मित ढाई मंज़िल का वर्गाकार मंदिर लगभग तीन सौ वर्ष पुराना है। इसकी धरातल मंज़िल खाली और ऊपर की मंज़िल में चौतरफा बरामदा है तथा छत पौट (अनघड़े स्लेट) से ढकी हुई है। मंदिर परिसर काफी खुला है। इसमें एक देवी फुंगणी का मंदिर है और एक खाली भवन है। इसे खाली


मल्याणी शाखा मंदिर

रखने का कारण बताया जाता है कि पहले यही देवता का मूल मंदिर बन रहा था, लेकिन इसके निर्माण के समय थांवी (पत्थर का काम करने वाला मिस्तरी) की गिरकर मृत्यु हुई थी। तब से यह भवन काफी समय तक खाली रखा गया था। इसके जीर्ण-शीर्ण होने पर लगभग तीन वर्ष पूर्व इसे मूल से उखाड़ कर यहाँ नए भवन का निर्माण किया गया है और मंदिर समिति ने यह निर्णय लिया है कि इसे देवता के अन्न भंडार के रूप में प्रयोग किया जाएगा।

इस भवन और देवी फुंगणी के मंदिर के बीच से देव मंदिर को रास्ता जाता है। पत्थर की बनी पैड़ियाँ उत्तर दिशा से दक्षिण की ओर होकर मंदिर के बरामदे तक जाती हैं। बरामदे में दायीं ओर मंदिर का मूल द्वार पश्चिमाभिमुख है। इस द्वार के भीतर पूर्व की ओर खुला स्थान है। इसे बैठक कहा जा सकता है। यहाँ 'छोदा' होता है और यही भंडारी का रात्रि-विश्राम का स्थान भी है। इस स्थान से उत्तर की ओर मुँह करके 'शाल्ह' का द्वार दिखता है। शाल्ह के अंदर देवता का रथ, मोहरे और अन्य कीमती सामान रखे होते हैं। शाल्ह में केवल देवता के चुने व्यक्ति ही जा सकते हैं। इस द्वार को आम दिनों में नहीं खोला जाता। मेले से पहले दिन देवता को रथ पर सजाकर शाल्ह से बाहर दर्शन हेतु रखा जाता है और मेले के दिन इसे यहीं से 'सौह' में लाया जाता है। देवता की सौह भल्याणी गाँव में है और वहीं पर सभी मेले आयोजित होते हैं।

शाखा मंदिर : गाँव भल्याणी, रोपड़ी और भुट्ठी में धोचक स्थान पर। भल्याणी में वर्ष 1986 से पूर्व केवल डेहरा (देवघर) होता था, जहाँ मेले के दौरान देवता का रथ रहता था। अब इसके स्थान पर काष्ठ-प्रस्तर से नए मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर की दो छतें चारों ओर को ढलानदार हैं और स्लेटों से ढकी हैं। ऊपरी छत के चारों कोनों और मध्य में कलश शोभायमान हैं। इसमें राधा-कृष्ण की संगमरमर की मूर्ति स्थापित की गई है।

अधिकार क्षेत्र : कोठी तारापुर के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पंडित (पुजारी), काईथ, कठियाला, पज़ियारा की समिति। इनमें से गूर को छोड़कर बाकी सभी पद वंशानुगत हैं। गूर को देवता या प्रजाजनों की इच्छा से बीच में बदला भी जा सकता है।

न्याय प्रणाली : 'अर्ज़, देऊ छुंगणा और देऊ पिलाणा' विधि से।

पूजा : गाँव जठाणी के मंदिर में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर देवता का भंडारी ही 'घोंडी-धड़छ' के साथ पूजा करता है; जबकि भल्याणी के मंदिर में पंडित (पुजारी) प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा करता है।

रथ : भेखल की लकड़ी का बना आयताकार रथ। इसे एक ही व्यक्ति सिर पर उठाता है।

मोहरे : रजत निर्मित तीन छत्र, जो रथ पर एक पंक्ति में लगते हैं। मध्य वाला छत्र सबसे बड़ा है, जिसके ऊपर एक स्वर्ण निर्मित छोटा छत्र सुशोभित रहता है।

मेले-त्योहार : वैशाख शुक्ल पक्ष के प्रथम वीरवार या सोमवार को *सलाहर* मनाया जाता है। इस दिन देवता का रथ भुट्ठी गाँव के धोचक मंदिर में जाता है और यहाँ एक दिवसीय मेला होता है। इसी दिन गेहूँ-जौ की नई फसल का प्रथम आहार भी बनता है।

श्रावण मास में क्रमशः प्रथम वर्ष *शाउण जाच* होती है। दूसरे वर्ष *थंदोर* होता है। तीसरे वर्ष *काहिका* होता है, जिसमें देवता की सौह में ध्वजा आरोपित करते हैं और तीन दिनों तक मेला चलता है। चौथे वर्ष *सलौखरा* मनाया जाता है। इसमें देवता का गूर पहले दिन अपनी कोठी (अधिकार क्षेत्र) का फेरा लगाता है और अगले दो दिन सौह में मेला लगता है।

मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को एक दिवसीय मेला *मुंघर पुन्नू* होता है। फाल्गुन मास में *फागली* मनाई जाती है। इसमें पहले दिन देव-रथ *रोपड़ी* गाँव में जाता है। वहाँ *भौती* (भोज) का आयोजन होता है और मेला लगता है। दूसरे दिन रथ भल्याणी गाँव में पधारता है और उस दिन यहाँ मेला लगता है। तीसरे दिन देवता आराम करता है और चौथे दिन *खोपरी* गाँव में मेला लगता है।

यहाँ रथ नहीं जाता, केवल देवता के वाद्ययंत्र और गूर 'घोंडी-धड़छ' के साथ जाते हैं।

जनश्रुति : यह देवता दिल्ली, मंडी-सुकेत से घोधर धार होकर कुल्लू जनपद के भूमतीर में लाईन नामक स्थान पर आया। वहाँ इसने अपना नाम बदलकर नियामशु रखा। भूमतीर से यह रोपड़ी फिर भल्याणी आया। यहाँ इसे भल्याणी की सौह पसंद आई, लेकिन वह बड़ागाँव के गौहरी देऊ (वीरनाथ) का स्थान था। तब यह जठाणी पहुँचा। कतरूसी नारायण और गौहरी देऊ में आपसी बातचीत से यह निर्णय हुआ कि गौहरी देऊ भल्याणी सौह को कतरूसी नारायण के लिए छोड़ देगा और स्वयं बड़ा गाँव की टिकरी सौह ले लेगा लेकिन इसके बदले में कतरूसी नारायण की ओर से गौहरी देऊ को सम्मानस्वरूप मेले में निमंत्रण दिया जाएगा और उसके भल्याणी सौह पहुँचने के बाद दोनों की एक ही धूप से पूजा होगी। उससे पूर्व कोई भी देवकार्यवाही नहीं होगी। तब से मेले में जब गौहरी देऊ सौह में पहुँचता है तो सबसे पहले दोनों देवता आपस में गले मिलते हैं। उसके बाद उनकी एक धूप से पूजा होती है, फिर मेले का आरम्भ होता है। कोठी का सबसे शक्तिशाली देवता होने के कारण इसे बड़ा देऊ भी कहते हैं।

कमला थान

गाँव : गाहर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : गाहर।

मंदिर : नहीं है, देवता की स्थापना खुले स्थान पर है।

अधिकार क्षेत्र : गाहर, शधारा, थरमाहण, सेऊबाग, जुआणी।

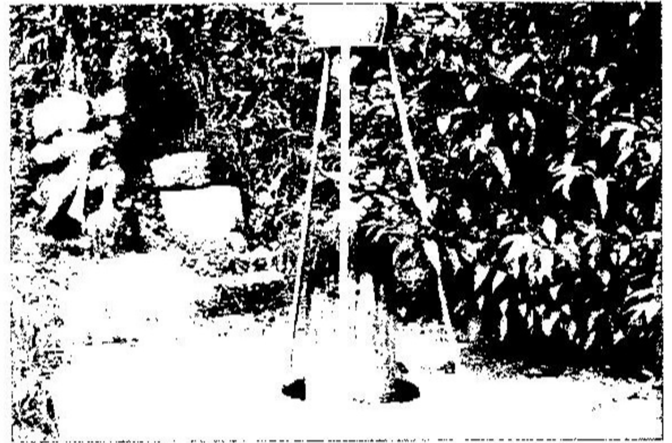
प्रबंध : कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : देवी दसवीं वारदा के गूर के माध्यम से।

पूजा : ग्रामवासी ही गुग्गुल धूप तथा दीप से देवता की पूजा करते हैं।

मोहरे : केवल शिवलिंग।

मेले-त्योहार : वर्ष में एक-दो बार यहाँ यज्ञ का आयोजन होता है।



जनश्रुति : गाहर क्षेत्र का यह स्थान-देवता है, जो लिंग रूप में स्थापित है। इसे भगवान शिव का प्रतीक माना जाता है। मान्यता है कि जहाँ वर्तमान में यह लिंग स्थापित है वहाँ पहले मंदिर हुआ करता था और उसमें सात लिंग स्थापित थे। भूस्खलन में मंदिर के साथ-साथ अन्य छह लिंग भी दब गए थे। केवल यही पिंडी भूमि से साढ़े चार फुट ऊपर थी। अब पिंडी के ऊपर जलहरी लगा दी गई है। साथ ही खुदाई में मिली महावीर हनुमान की प्रतिमा स्थापित है।

कलासन

गाँव : चनाहलदी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : चनाहलदी।

भंडार : चनाहलदी में ढाई मंज़िल का।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से निर्मित डेढ़ मंज़िल का पहाड़ी शैली का मंदिर है। इसकी छत स्लेटों से ढकी है, जिस पर बदोर लगा है।

शाखा मंदिर : गाँव कटोमा में तीन छत वाला।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चनाहलदी और कटोमा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ की सहायता से।

पूजा : देवता का रथ जब निकलता है तो प्रातः-सायं जड़ी धूप व गुग्गुल धूप से नियमित पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।

मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को फागली होती है। इस अवसर पर गूर भारथा सुनाता है। बैसाख मास की संक्रांति को देवी का रथ कटोमा गाँव जाता है और वहाँ बिरशू मेले का आयोजन होता है।

जनश्रुति : देवी कलासन सात बहनों में सबसे छोटी मानी जाती है। यह मद्रोणा नामक जोत से चनाहलदी गाँव में एक स्त्री के घर आई। इसके आने से उस स्त्री का घर धन-धान्य पूर्ण हो गया। एक रात देवी ने उस स्त्री को स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि वह कलासन देवी है और उसके साथ घर में रह रही है। तब पहले इसे बड़ेही के बारह परिवार मानने लगे और बाद में अन्य गाँवों में भी उसकी मान्यता हुई।

कशु नारायण

गाँव : बनोगी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : बनोगी।

मंदिर एवं भंडार : बनोगी।

स्थापत्य : देशज शैली में लकड़ी-पत्थर से बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर गाँव के मध्य में स्थित है, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है और अन्दर फर्श पर संगमरमर बिछा है। मंदिर का प्रवेशद्वार भेखली देवी के मंदिर की ओर है।



अधिकार क्षेत्र : गाँव कांगती, बनोगी, बाशंग और सराजी बेढ़।

प्रबंध : छह कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदारों के माध्यम से, 'मलोही' विधि से, न्यायालय द्वारा।

पूजा : नित्य पूजा का विधान नहीं, केवल भाद्रपद मास में ही प्रतिदिन पूजा होती है। इसके अतिरिक्त देवता के उत्सव तथा त्योहारों के अवसर पर पुजारी 'घोंडी-धड़छ' व शंख-ध्वनि के साथ पूजा करता है। इस अवसर पर वाद्ययंत्र भी बजाए जाते हैं।

रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ, जिसके अग्रभाग में मोहरे सजाए जाते हैं।

मोहरे : नौ।

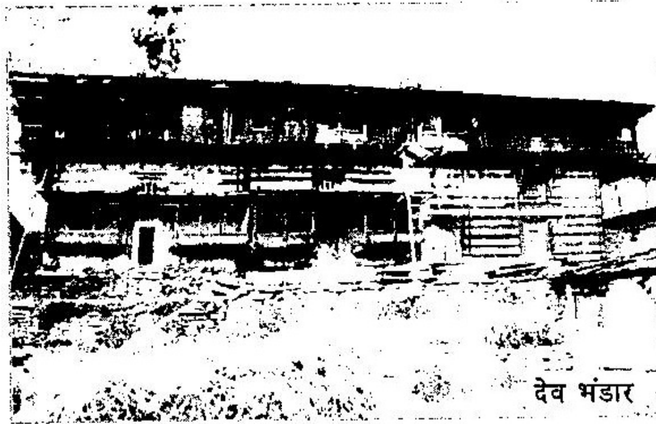
मेले-त्योहार : आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष के तीसरे नवरात्र को *शान्हू मेला,* भादों की संक्रांति को *शनौहली* जो कोठी सारी का महत्त्वपूर्ण मेला है। इस मेले में करीब 60-70 भेड़-बकरियों की बलि दी जाती है, जिसका 'चरू' बनाकर वहाँ उपस्थित हज़ारों लोगों में बाँटा जाता है। आश्विन मास में *शौईरी मेला,* माघ की संक्रांति को *माघी मेला* होता है। मान्यता है कि इस दिन देवता समस्त कार्यों को छोड़कर अपने अनुयायियों का कुशलक्षेम पूछने गाँव आता है और लोग उसका स्वागत करते हैं।

जनश्रुति : बनोगी गाँव में कदाचित् किसी महिला को खेत में गोड़ाई करते समय एक मोहरा मिला। वह उसे घर ले आई और अपने सोते हुए बच्चे के साथ रखकर स्वयं काम में लग गई। काफी समय बाद जब बच्चा उठा नहीं तो वह उसे देखने गई। उसे बच्चा तो मिला नहीं, परन्तु मोहरे के मुख में रक्त लगा हुआ दिखाई दिया। यह देखकर उसे अत्यंत क्रोध आया और उसने मोहरे को ओखली में कूटकर उसका चूरा बना दिया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उसका रोना सुनकर भेखली देवी ने प्रकट होकर कहा यह एक राक्षस है। मैं इसे अपने अधीन करके तुम्हारे बच्चे को पुनः जीवित कर दूँगी। भविष्य में इसके साठ परिवार हो जाएँगे। वह राक्षस भेखली देवी के पास

जाकर क्षमा-याचना करने लगा और उसने पश्चात्ताप स्वरूप बनोगी गाँव की रक्षा करने और दुष्टों का नाश करने की ज़िम्मेवारी ली। तब देवी ने वहाँ लोगों को आदेश दिया कि वे देवता के रूप में स्थापना करके उसकी पूजा करें।

कार्तिक स्वामी

गाँव : नथान **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : नथान में शैंशर नामक स्थान
भंडार : नथान।


देव भंडार

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से काठ-कुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर नथान गाँव के ऊपर शैंशर नामक स्थान पर है। इसकी ढलानदार छत पत्थर की स्लेटों से ढकी है। मंदिर चारों ओर से देवदार व चीड़ वृक्षों से घिरा है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव नथान, पलजोट, नथानू सेरी, बरनोट और शाड़।
प्रबंध : कारदार, भंडारी, पुजारी, गूर, कर्मिष्ठ, कठियाला, जठेरे, कायथ, छठाली, भारी, नशाणदार, पुरोहित, नाथ व बड़ेही की समिति।
न्याय प्रणाली : देवता तथा उसके कारकुनों द्वारा।
पूजा : देवता की पूजा केवल मेले-उत्सवों के अवसर पर ही की जाती है। पुजारी धड़छ (धूपपात्र) में बेठर (स्थानीय सुगंधित जड़ी, जिसका धूप के तौर पर प्रयोग किया जाता है) और गुग्गुल धूप जलाकर घंटी बजाते हुए देवता की पूजा करता है। तत्पश्चात् शंख-ध्वनि की जाती है।
रथ : फंटा रथ तथा करडू दोनों हैं। रथ के ऊपरी तिरछे भाग पर मोहरे सजाए जाते हैं, जबकि करडू को रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्रों से सजाकर उसके अन्दर मोहरे रखे जाते हैं।
मोहरे : सात।
मेले-त्योहार : वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तथा षष्ठी को देवता के प्रकट होने के दिवस रूप में *नथान जाच* का आयोजन।
जनश्रुति : देवता कार्तिक स्वामी वैशाख शुक्ल षष्ठी तिथि को गाँव नथान के समीप शैंशर नामक स्थान पर धरती फाड़ कर प्रकट हुआ था। उस समय यहाँ अत्याचारी राणाओं का राज था, जिन्होंने अपने क्षेत्र के सभी मंदिर नष्ट कर दिए थे। उनकी क्रूरता को देखकर कार्तिक स्वामी ने शैंशर, लाल टिप्परी तथा काईसधार के राणाओं का नाश किया। शैंशर में केवल एक गर्भवती स्त्री बची रही थी, जिसकी देखभाल कार्तिक स्वामी ने स्वयं की। कुछ काल बाद उसके एक पुत्र पैदा हुआ और देवता उनके साथ नथान गाँव में आ गया। वह काफी समय तक उस परिवार के साथ रहकर उनकी हर कामना को पूर्ण करता रहा। उस स्त्री के पौत्रों नंदू और धर्मू के जीवित रहने तक देवता साक्षात् रूप में उनके साथ रहा, परन्तु उनकी मृत्यु के बाद वह अपने उत्पत्ति स्थल शैंशर में जाकर लुप्त हो गया। तब उस स्त्री के वंशजों ने वहाँ एक मंदिर का निर्माण कर उसमें देवता की स्थापना की। कार्तिक स्वामी की कृ.. से उसकी वंश-बेल खूब बढ़ी और आज वे 150 परिवार हो गए हैं।

कालिया नाग

गाँव : शिरढ़, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : शिरढ़ गाँव का कोट आगे नामक स्थान।
मंदिर : शिरढ़।
स्थापत्य : कोट शैली में देवता का पुराना मंदिर छह मंज़िल का था, परन्तु जीर्णोद्धार के बाद अब यह केवल



चार मंज़िल का ही है। ऊपरी मंज़िलों के लिए धरातल मंज़िल के भीतर से ही रास्ता है। बाहर पत्थर का एक चबूतरा है। ऐसा माना जाता है कि यह पुराने मंदिर की नींव थी, इसलिए इसे उखाड़ा नहीं गया। मंदिर की तीसरी मंज़िल में देवता की स्थापना है और मूल मूर्ति वहाँ एक चबूतरे पर स्थापित है, परन्तु उसके दर्शन करने की मनाही है। काष्ठ निर्मित व सुनहरी रंग से पुते एक अन्य चबूतरे पर भगवान् विष्णु की छह इंच की मूर्ति, एक सर्पाकार मूर्ति तथा कालिया नाग का एक मोहरा प्रतिष्ठित हैं। श्रद्धालुओं को इनके ही दर्शन कराए जाते हैं। बताया जाता है कि पूर्वकाल में यह चबूतरा तथा देवता से सम्बंधित अन्य मोहरे व आभूषण आदि स्वर्ण निर्मित थे, परन्तु चोरों ने यहाँ से सब कुछ चुरा लिया था। उसके बाद प्रातः पूजा के पश्चात् मूल द्वार पर ताला लगा दिया जाता है। तीसरी मंज़िल के बाहर चौतरफा बरामदा है। चौथी मंज़िल में बेठर धूप तथा देवता का रथ रखा जाता है। मंदिर की ढलानदार छत पर स्लेट लगे हैं और शिखर पर 'बदोर' के ऊपर तीन काष्ठ निर्मित कलश स्थापित हैं। द्वार पर लोहे के सर्प बनाए गए हैं और बलि पशुओं के सींग टाँग गए हैं। मंदिर के दायीं ओर सराय है जिसमें दो कमरे हैं। लोग इसे *मौड़* कहते हैं। सामने देवदार के वृक्ष के साथ एक अन्य चबूतरा है जिसे थान देवता का स्थल माना जाता है।

शाखा मंदिर : बंदरोल, बैंची, शिम, कराल, हिम्बरी।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शिल्हा, शिरढ़, सजूणी, जलौरा और त्रिशड़ी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति, जिसके सदस्य देऊलू होते हैं।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातःकाल बेठर धूप से। भाद्रपद व माघ मास में पूजा नहीं होती, केवल सायंकाल में देवता के वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं। इसे झूणा कहते हैं।

रथ : अखरोट की लकड़ी से बना फेंटा रथ, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। शिखर पर फन रूपी एक छत्र व तीन कलश सुशोभित हैं। ऐसी मान्यता है कि कुल्लू के दूसरे देवताओं के रथों की अपेक्षा कालिया नाग का रथ आकार में बड़ा और आठ पाँवों वाला है। इसके अलावा एक करड़ू भी है जो भेखल की तीन लकड़ियों को जोड़कर बनाया गया है।

मोहरे : कुल बारह, जिनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा शेष ग्यारह रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास के 10 से 20 प्रविष्टे के बीच *शिरढ़ काहिका* मनाया जाता है जिसे मनाने की प्रक्रिया वैशाख मास से ही आरम्भ हो जाती है। फाल्गुन मास के 12 प्रविष्टे को *रानी का मेला* लगता है।

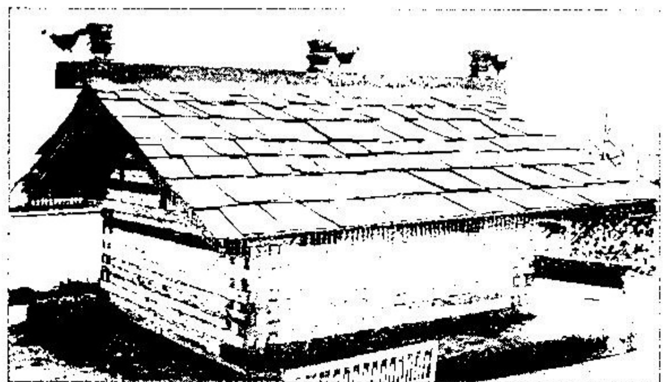
जनश्रुति : सौरा नगोणी नामक स्थान पर वासुकि नाग के संयोग से कमला नाम की स्त्री के गर्भ से अठारह नाग-नारायणों का जन्म हुआ। वह उन्हें घड़े में रखकर पालने लगी। एक दिन उसकी मायके जाने की इच्छा हुई

तो किसी व्यक्ति ने उसके घड़े को किलटे में रखकर उसके मायके पहुँचा दिया। एक दिन अनजाने में उस स्त्री की माँ से अंगारों भरा पात्र उन नागों पर गिर गया। सारे नाग आग के गिरते ही विह्वल हो उठे और घड़े से निकल कर इधर-उधर भागे। कालिया नाग भी व्यास नदी में बहते-बहते *बूढ़ी री शाढ़ी* नामक स्थान पर पहुँचा जो कुल्लू के निकट बंदरोल गाँव के नीचे नदी किनारे स्थित है। वहाँ पहुँच कर उसने ब्राह्मण का रूप धारण कर गाँव में प्रवेश किया और भिक्षा के रूप में दूध माँगने लगा। परन्तु किसी ने भी उसे दूध नहीं दिया। वहाँ से वह सूपाकूणी स्थान पर गया, जहाँ उसे एक बुढ़िया दिखाई दी। ब्राह्मण ने उससे भी दूध माँगा, परन्तु उसके घर में गाय ही नहीं थी, अतः उसने अपनी असमर्थता जताई। ब्राह्मण ने उसे गोशाला में जाने के लिए कहा। उसके कहने पर जब वह वहाँ गई तो उसको एक गाय दिखाई दी, जिसका बछड़ा दूध पी रहा था। आश्चर्यचकित हो बुढ़िया ने गाय के थनों से दूध निकाल कर ब्राह्मण को दिया। वह वहाँ से आगे गया और व्यासर गाँव पहुँचकर वहाँ के राणाओं से भिक्षा माँगी, परन्तु उन्होंने उसे दुत्कार दिया। इससे ब्राह्मण को अत्यंत क्रोध आया और उसने अपने अलौकिक बल से व्यासर से कुछ ऊपर एक बड़ा सरोवर बना डाला। उस सरोवर से भयंकर गर्जना करता हुआ जल नीचे बहने लगा, जिससे राणाओं का महल पूरे गाँव समेत नष्ट हो गया। कुछ दिनों बाद जौला नामक स्थान पर पहुँचकर ब्राह्मण रूपी नाग धूनी रमाकर बैठ गया। नदी पार के गाँव सोयल का कोई 'नड़' जो अपने ससुराल लगघाटी से वापिस आ रहा था, आग तापने के लिए धूनी के पास बैठ गया। कुछ समय बाद जब वह चलने लगा तो ब्राह्मण ने भी उसके साथ जाने की इच्छा व्यक्त की और नड़ को वहाँ से एक गोलाकार पत्थर भी उठाकर ले चलने के लिए कहा।

दोगा बाग (आज का बैंची गाँव) पहुँच कर वह पत्थर एकदम भारी हो गया। उसे वहीं छोड़ दोनों आगे बढ़े। शिरढ़ गाँव पहुँचकर नाग ने नड़ को वहीं रहने के लिए कहा और स्वयं ज़मीनदारों के पास पहुँचकर भिक्षा में उनसे एक शंख और घंटी की माँग की। उन्होंने नाग से कहा कि यदि वह चौसर के खेल में उन्हें हरा देगा तो वे उसे शंख और घंटी देंगे। चौसर में नाग ने उन्हें हरा दिया, परन्तु उसे अकेला जानकर वे उसे वहाँ से खदेड़ने लगे। ब्राह्मण रूपी नाग के क्रोध की सीमा न रही और उसकी थरथराहट से धरती काँपने लगी। वह काली चाँग पर्वत पर गया और अपने साथ भयंकर बाढ़ लेकर आया, जिसमें सारा शिरढ़ गाँव बह गया। क्रोध शांत होने पर उसे नड़ की याद आई। नागणी सौह के पास उसे नड़ मृत मिला। उसने उसका अंतिम संस्कार किया और शिरढ़ के पीछे काली चांग पर्वत में जाकर पत्थरों में लुप्त हो गया। नड़ की मृत्यु में अपने को दोषी मानकर नाग ने समस्त नड़ समुदाय के लिए आजीविका की व्यवस्था की, जो काहिका के रूप में आज भी विद्यमान है। ऐसा माना जाता है कि काली नाग यज्ञ करने के लिए हर तीसरे वर्ष साक्षात् उपस्थित रहता है।

काली ओड़ी

गाँव : अरछंडी, **तहसील** : कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : अरछंडी।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर देशज शैली में है। स्लेटों से ढकी मंदिर की छत ढलानदार है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव अरछंडी, बटेहड़, माहिली, बागा।
प्रबंध : कारदार, गूर, भंडारी, पुजारी, जठेरा, ढौंसी, जठाली व खोलीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : देवी के दिशा-निर्देशों के अनुसार गाँव के विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा। जो व्यक्ति इस फैसले को नहीं मानता, उसे 'उगू' कर दिया जाता है।

पूजा : देवी की पूजा विशिष्ट अवसरों पर ही होती है। उस समय वाद्ययंत्रों की ध्वनि के बीच पुजारी 'धौड़छ' में बेठर धूप जलाकर देवी की आरती उतारता है। शंख व घंटा-ध्वनि भी की जाती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : बीस।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में नव वर्ष आरम्भ होने के अवसर पर *बिरशू*, भाद्रपद मास में *शाउणी जाच*।

जनश्रुति : किसी समय अरछंडी गाँव में साठ राणाओं का राज हुआ करता था। ये अत्यंत क्रूर प्रवृत्ति के थे और अपनी प्रजा को तरह-तरह की यातनाएँ दिया करते थे। एक बार गाँव से ऊपर करमौडी नामक एक ऊँची पहाड़ी पर जमदग्नि ऋषि के साथ देवी और जीव नारायण चौसर खेल रहे थे। जब खेल अपने चरम पर था तो देवी ने ग़लती से किसी अरथी को हाथ लगा दिया। इससे रुष्ट होकर जीव नारायण ने कहा कि शव को हाथ लगाने के कारण वह यहाँ नहीं रह सकती। तब माता वहाँ से जाणा, शिरढ, डोभी गाँव होती हुई अरछंडी पहुँची और वहाँ के राणाओं की दुष्टता देखकर अपनी शक्ति से उनका विनाश किया। यहाँ के मूल देवता गौहरी के साथ सोने की गेंद से खेलते हुए गौहरी को कुल्लू के ढालपुर नामक स्थान पर पहुँचा दिया और स्वयं उसके स्थान पर विराजमान हो गई। कालांतर में देवी काली ओड़ी का मोहरा किसी महिला को भेखल की झाड़ी में दिखा और तभी देवी ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिए। उसने यह घटना सभी गाँववासियों को बताई तो वे उस मोहरे की देवी के रूप में पूजा-अर्चना करने लगे। अब भी यह मोहरा देवी के भण्डार में सुरक्षित है। यह ***जेठा मोहरा*** कहलाता है। जब देवी तीर्थ यात्रा पर जाती है, तब इस मोहरे को धारण करती है। अन्यथा इस मोहरे को गुप्त ही रखा जाता है। ऐसा माना जाता है कि जब भी किसी ने इसे देखा या देखने की कोशिश भी की तो उसके साथ कुछ न कुछ अनहोनी घटना अवश्य घटी।

काली ओड़ी

गाँव : डोभी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : डोभी।

भंडार : गाँव शिम।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर



कुल्लू-मनाली राजमार्ग के साथ डोभी गाँव की पश्चिम दिशा में गाँव के शीर्ष पर स्थित है। प्राचीन मंदिर के स्थान पर मधिरी (गर्भगृह) को यथावत् रखकर यह मंदिर पुरानी शैली में ही पुनः निर्मित किया गया है। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर सुंदर नक्काशी हुई है। स्लेटों से ढकी इसकी ढलवाँ छत पर 'बदोर' लगा है। छत के साथ काष्ठ झालरें शोभित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव डोभी, शिम और डोहलू नाला।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : दोनों विरोधी दल देवी के मंदिर में जाकर न्याय की प्रार्थना करते हैं। तब दोनों में से जो झूठा होता है, वह दैवी-शक्ति से काँपने लगता है। ऐसी स्थिति में देव-दोष से बचने के लिए वह अपना झूठ स्वीकार करते हुए देवी से माफी माँगता है।

पूजा : मंदिर में स्थापित प्रतिमा की प्रतिदिन प्रातः-सायं गुग्गुल धूप, शंख व घंटा ध्वनि के साथ पूजा होती है, जबकि देवरथ की पूजा तभी होती है जब मेले-त्योहार आदि विशेष अवसरों पर रथ सजाया जाता है। इस अवसर पर 'घोंडी' का वादन करते हुए 'धड़छ' में बेठर धूप जलाया जाता है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ जिसके शीर्ष पर तथा आँचल में रजत निर्मित तीन-तीन छत्र सजाये जाते हैं।

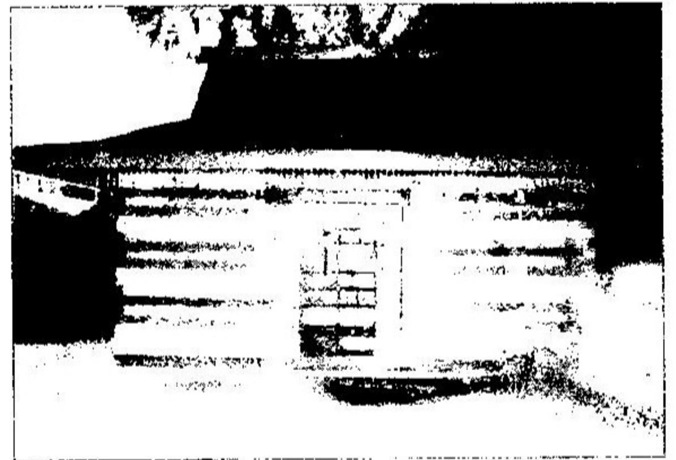
मोहरे : रथ में पहले आठ मोहरे सजाये जाते थे, परन्तु अब बारह मोहरे रहते हैं। इनमें से एक अष्टधातु का तथा शेष रजत निर्मित हैं। देवी के रथ में स्वर्ण व रजत मिश्रित नथ भी लगाई जाती है।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति को *डोडणी जाच*, भादों की संक्रांति को *शाऊण जाच* तथा ज्येष्ठ मास की संक्रांति को *कापू* उत्सव मनाया जाता है। इन मेलों में अन्य देव-क्रियाओं के साथ 'देऊ-खेल' भी मुख्य आकर्षण होता है। इन मेलों के अतिरिक्त किसी श्रद्धालु की मन्नत पूर्ण होने पर, देवी के मंदिर में भजन-कीर्तन का आयोजन किया जाता है।

जनश्रुति : किसी समय देवता जीव नारायण के साथ देवी काली ओड़ी उसकी बहन के रूप में व्यास नदी के वाम तट पर स्थित जाणा नामक स्थान में रहती थी। एक दिन देवी ने अंगड़ाई लेते हुए हाथ लम्बे कर, नदी के दक्षिण तट पर स्थित शिम गाँव में एक शव को छुआ। इससे क्रोधित होकर जीव नारायण ने इसे लात मारकर, शिम के साथ शिरढ़ गाँव में पहुँचा दिया। तब देवी शिरढ़ और शिम क्षेत्र में विचरण करने लगी। उन दिनों शिम गाँव में जोकू नाम का कुम्हार रहता था। एक बार कुम्हार की अनुपस्थिति में बिल्ली ने उसके एक घड़े में अपने बच्चों को जन्म दिया। जब कुम्हार ने घड़े पकाने के लिए आवाँ जलाया तो बिल्लों के जल कर मर जाने को ब्रह्म हत्या समान पाप जान कर देवी ने बिल्ली और इसके बच्चों की रक्षा की। जब कुम्हार ने आवाँ खोला तो एक घड़े में बिल्ली और उसके बच्चों को जीवित देखकर हतप्रभ रह गया। उस वार उसके घड़े भी अच्छे दामों में बिक गए। इस चमत्कार का रहस्य जानने के लिए उसने देवताओं की शरण ली। गूरों के माध्यम से पता चला कि यह देवी काली ओड़ी की कृपा है। कुम्हार ने देवी का ध्यान कर उसकी पूजा आरम्भ की। कुछ समय बाद उसके अन्न के भंडार में एक मोहरा मिला। तब एक ब्राह्मण को खेल आई जिसके माध्यम से देवी ने आदेश दिया कि उसका मंदिर डोभी गाँव में बनाया जाए।

काली ओड़ी

गाँव : बबेली, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : बबेली।
भंडार : गाँव जिंदौड़।



स्थापत्य : बबेली गाँव के मध्य बहनेवाला नाला इसे उत्तर और दक्षिण दो भागों में विभक्त करता है। उत्तर दिशा वाले बबेली गाँव के ठीक पीछे एक सीधी धार के मध्य में काहू (जैतून प्रजाति का पौधा) के दो विशाल वृक्षों की छत्रछाया में काली ओड़ी का काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का एक मंज़िल का लगभग 500 वर्ष पुराना मंदिर है। इसकी चारों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर देवदार के काष्ठ का लगभग पंद्रह-सोलह फुट लम्बा 'बदोर' लगा है। दीवारें तराशे पत्थरों से बनी हैं। 4x10 फुट के गर्भगृह में महिष-मर्दिनी की अतिप्राचीन

प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है, जिसे स्थानीय लोग *काली ओड़ी* के नाम से पूजते हैं। गर्भगृह के बाहर 12x10 फुट का एक कक्ष है।

अधिकार क्षेत्र : बबेली।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, केवल उत्सवों और त्योहारों के अवसर पर प्रातः-सायं देवी की पूजा बेठर धूप, कुंकुम, अक्षत तथा पुष्प से पुजारी शंख ध्वनि के साथ करता है तथा सभी वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं।

रथ : दो अर्गलाओंवाला फेटा रथ जिसे चार 'जमाणी' उठाते हैं। अर्गलाओं के अग्रभाग पर रजत-आवरण लगे हैं। रथ के शिखर पर चाँदी के तीन व दोनों किनारों पर एक-एक छत्र लगा है। अर्गलाओं के मध्य में चाँदी का ही चंद्रहार तथा स्वर्ण निर्मित एक 'पवीत' शोभित है।

मोहरे : बारह। इनमें से एक मोहरा अष्टधातु का और शेष चाँदी के हैं। इन मोहरों के शीर्ष पर रजत निर्मित अर्द्धचन्द्राकार आभूषण सुशोभित हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की प्रथम तिथि को मंदिर के पट खुलते हैं और द्वितीया को *जौबाड़ी* नामक मेला लगता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन गूर देवी की भारथा के पश्चात् बर्शोहा (वर्ष भर की भविष्यवाणी) भी सुनाता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को बबेली गाँव में अपने सम्पूर्ण हारियानों एवं वाद्ययंत्रों के साथ काली ओड़ी एक फेरा लगाती है। इस अवसर पर प्रत्येक घर की मुखिया स्त्री धूप-दीप जलाकर देवी का स्वागत करती है। लगभग आठ 'पत्था' अनाज हर घर से भेंटस्वरूप देवी को अर्पित किया जाता है। इसके बाद फाल्गुन मास तक देवी-मंदिर के पट बंद रहते हैं।

जनश्रुति : देवी काली ओड़ी लोगों के कल्याण की कामना से स्वर्ग से पृथ्वी पर सुकेत नामक क्षेत्र में उतरी थी। वहाँ के लोगों की कामनाएँ पूर्ण करती हुई वह कुल्लू आई और भेखली नामक स्थान पर अपना निवास बनाया। अपनी शक्ति से सूखे ताल में जल उत्पन्न किया। तत्पश्चात् खशाला गाँव पहुँचकर खशाली नाग के साथ जुआ खेलकर नाग को हराया। वहाँ अठारह नाग व अठारह नारायण रहते थे। उनमें उसने भूमि का बँटवारा किया। देवी की पूजा करने के लिए वहाँ साठ कुम्हार और साठ लुहार रहते थे, परन्तु देवी की उनके साथ नहीं बनी। उनमें से छह दुष्ट परिवारों का नाश करके देवी द्राम ढाँक से होती हुई बबेली गाँव में पहुँची और उसके पीछे एक धार पर देवी ने अपना स्थान बना कर काहू वृक्ष की पौध लगाई। वर्तमान में ये वृक्ष मंदिर के ऊपर और नीचे विशाल रूप में खड़े हैं।

अन्य सूचना : एक जनश्रुति के अनुसार एक बार इस देवी का सूर्य से किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ। सूर्य ने देवी के पाँव पर पत्थर से प्रहार किया, जिससे इसके पाँव में चोट लग गई। देवी ने क्रुद्ध होकर सूर्य से कहा कि वह भविष्य में कभी भी उसका मुँह नहीं देखेगी। इसीलिए आज भी इस देवी का रथ सूर्यास्त से पहले अपने मंदिर से बाहर नहीं निकलता और अपनी 'हुलकी' में आज भी वह लँगड़ा कर चलती है।

काली नाग

गाँव : कराल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : गाँव हिंबरी।

मंदिर एवं भंडार : कराल।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित ढाई मंज़िल का यह मंदिर गाँव के ऊपरी भाग में अन्य मकानों के बीच में स्थित है। मंदिर की शैली और आकार अन्य घरों से एकदम भिन्न है, अतः लघु और सामान्य होने पर भी इसके मंदिर होने का बोध हो जाता है। मंदिर के आगे छोटा-सा प्रांगण है तथा मुख्य द्वार के सामने घंटा लगा है। इसी मंदिर के साथ देवता का एक मंज़िल का नवनिर्मित भवन भी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव डोभी, डौहलु नाला, भाटग्राँ, त्रिशड़ी, गलछेत, कराल, हिंबरी, पर्वी, ग्राहण, शिलीहार, व्यासर।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : पूछ, गैटी, पोगैं, मल़ोही द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। देवता की पूजा मेले, त्योहार, उत्सव आदि विशेष अवसरों पर तभी होती है जब देवरथ सजा होता है। ऐसे मौके पर 'धड़छ' में बेठर जलाकर घंटी बजाते हुए पुजारी देव वाद्य धुन पर प्रातः व सायं दोनों समय पूजा करता है।

रथ : दो बौहियों (अर्गलाओं) वाला फेटा रथ। इसके शीर्ष भाग में चाँदी की दो फुल्लियाँ शोभायमान हैं। रथ में देवता वीरनाथ (देऊ गौहरी) का मोहरा भी सज्जित होता है। लोक विश्वास के अनुसार वीरनाथ को देवता काली नाग अपने गणराज्य की रक्षा के लिए *थाचा माशण* स्थान से अपने साथ लाया था। इसलिए दोनों इकट्ठे रहते हैं।

मोहरे : ग्यारह चाँदी के और एक अष्टधातु का।

मेले-त्योहार : आश्विन मास की संक्रांति को तीन दिवसीय *शौयरी* मेला लगता है। इस मेले में अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। सभी देवताओं के मिलन का दृश्य बड़ा आकर्षक होता है। इस अवसर पर देवता की विशेष पूजा-अर्चना की जाती है और देव रथ को नचाया जाता है। गूर द्वारा 'देऊ-खेल' का प्रदर्शन भी किया जाता है। माघ मास की संक्रांति को *माघ मेला* लगता है। यह तीन दिनों तक चलता है। मेले के दौरान देऊखेल का विशेष आकर्षण रहता है।

जनश्रुति : हिंबरी गाँव के निःसंतान वृद्ध पति-पत्नी एक बार खेत में काम करके शाम को जब घर वापिस आ रहे थे तो कुछ दूर चलने के बाद उस वृद्ध महिला को खेत में एक चट्टान के पीछे दो शिशु खेलते हुए दिखाई दिए। महिला ने सोचा कि इनके माता-पिता आस-पास ही होंगे, लेकिन बड़ी देर तक जब उनके पास कोई नहीं आया तो उसने नज़दीक जाकर बच्चों को अपनी गोद में उठा लिया। तब बच्चों ने रोना शुरू किया। वह उन्हें चुप कराती रही, परन्तु बच्चे चुप नहीं हुए। थक-हार कर उसने बच्चों को अपना स्तन पान कराया। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके स्तनों से स्वतः दूध निकलना शुरू हो गया और बच्चे भी उससे तृप्त होकर चुप हो गए। वह महिला उन्हें अपने घर लाने की सोच ही रही थी कि दोनों बच्चे अंतर्धान हो गए। वृद्ध पति-पत्नी आश्चर्य चकित होकर घर लौट आये। रात में वृद्धा को स्वप्न में उन दोनों शिशुओं के पुनः दर्शन हुए। उनमें से एक शिशु तो आगे निकल गया पर दूसरे ने उसे बताया कि वह देवता काली नाग है और यहीं रहना चाहता है। प्रातः उठकर वृद्धा ने यह स्वप्न अपने पति और गाँववालों को सुनाया। उन सबने मिलकर अपने गाँव में काली नाग की स्थापना कर दी। देवता के चमत्कार और आशीर्वाद से प्रभावित होकर कालांतर में लोगों ने देव-इच्छा से गाँव कराल में भी काली नाग के मंदिर का निर्माण किया।

काली माता

गाँव : शाड़ाबाई, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शाड़ाबाई।

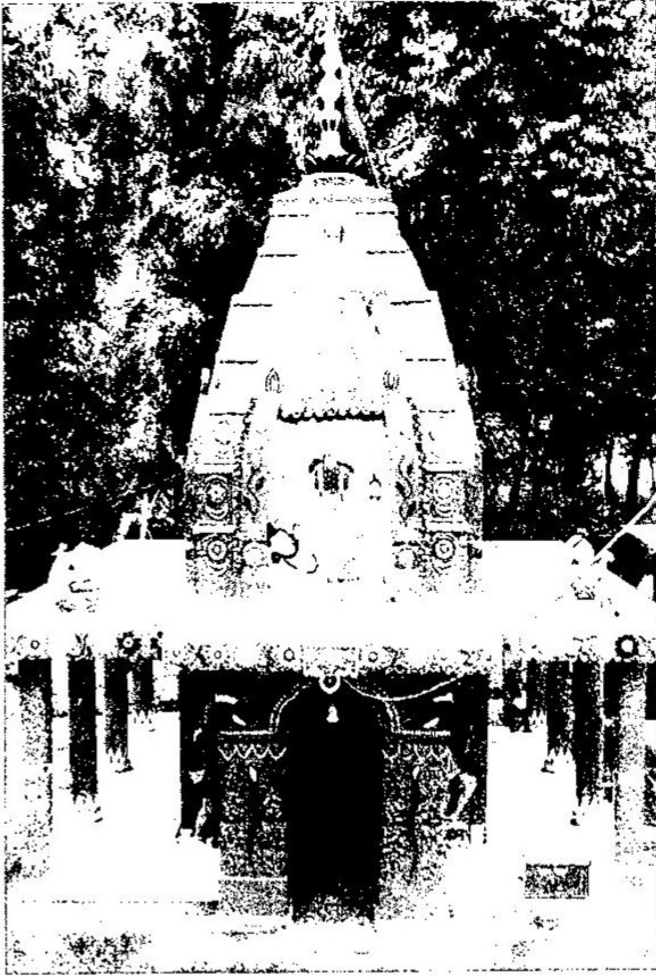
स्थापत्य : पहले देवी की स्थापना एक वृक्ष में थी, परन्तु वर्तमान में सीमेंट व बजरी से शिखर शैली में मंदिर का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : मशगाँ पंचायत।

प्रबंध : होमगार्ड द्वारा।

न्याय प्रणाली : फूल, 'मरोहड़ी' तथा 'धड़छ' द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से देवी की पूजा होती है।



रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : चैत्र व आश्विन के नवरात्रों में *अष्टमी* के दिन *मेला* लगता है।

जनश्रुति : शाड़ाबाई में कदाचित् आते-जाते एक स्थान पर लोगों को छल हुआ करता था। इससे भयभीत होकर गाँववालों ने वहाँ एक वृक्ष पर माँ काली की स्थापना की, जिससे उन्हें छल से मुक्ति प्राप्त हुई और उस स्थान की महत्ता बढ़ती गई। कालांतर में वहाँ मंदिर का निर्माण कर उसमें देवी की प्रतिमा की स्थापना की गई।

कुंवरदान

गाँव : व्यासर, **तहसील** : कुल्लू।

मूल स्थान : गोशाल।

मंदिर : व्यासर।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित लगभग तीन सौ वर्ष पुराना डेढ़ मंज़िल का आयताकार मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर पर स्थापित 'बदोर' के ऊपर काष्ठ के ही तीन कलश लगे हैं। इन कलशों पर लोहे की चिड़ियाँ बनी हैं। पूर्वाभिमुख द्वार की चौखट पर लकड़ी के दो मोहरे स्थापित हैं और ऊपरी भाग पर साँप की आकृति उकेरी गई है। मंदिर के गर्भगृह में तीन फुट ऊँची एक प्रस्तर प्रतिमा है जो कुंवरदान की बताई जाती है। मंदिर के बायीं ओर अखरोट का एक विशाल वृक्ष है, जिसके साथ देवता का ध्वज-स्तम्भ गाड़ा गया है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव मापक तथा व्यासर।

प्रबंध : गूर, पुजारी तथा भंडारी द्वारा।

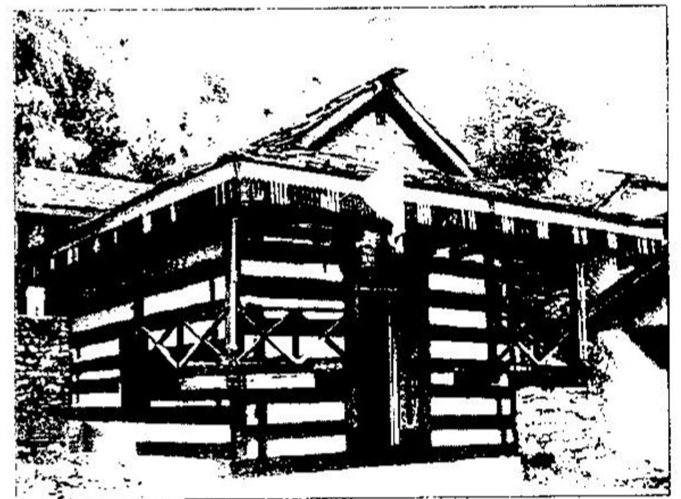
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : दैनिक पूजा की प्रथा नहीं, केवल मेले के अवसर पर ही पुजारी घंटी-धड़छ से देवता की पूजा करता है।

रथ : अखरोट की लकड़ी का बना खड़ा रथ जिसके ललाट पर चाँदी का एक पत्र लगाया जाता है, स्थानीय बोली में इसे झीरक कहते हैं।

मोहरे : कुल नौ, जिनमें से छह मोहरे चाँदी के तथा तीन अष्टधातु के हैं।

मेले-त्योहार : चार आश्विन को *शौयरी* मेला, जिसमें देवता का रथ वाद्ययंत्रों सहित देव प्राँगण में निकलता है। इस मेले में गौहरी देऊ व्यासर भी सम्मिलित होता है, परन्तु वह कुंवरदान को नहीं छूता क्योंकि यह देवता शव



की चादरों को पहनता है। गाँव के लोग मृतक हेतु चादर देवता से ले जाते हैं और उसकी कीमत चुकाने के साथ-साथ शवदाह के बाद चादर भी देवता को ही लौटा देते हैं। ये चादरें देवता के रथ में लगाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को *'हारका'* होता है। तत्पश्चात् मंदिर के द्वार बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : देवता कुंवरदान को गोशाल गाँव में उत्पन्न अठारह नागों में से एक माना जाता है। वहाँ से वह अपने लिए स्थान खोजते हुए व्यासर पहुँचा और साथ लगते गाँव मापक के भोधू नामक दलित व्यक्ति को स्वप्न में दर्शन देकर गाँव में प्रकट होने की बात कही। प्रातः उठने पर उसे अपने घर से थोड़ी दूर एक मोहरा मिला और उसे स्वप्न की बात प्रत्यक्ष घटित होती लगी। वह मोहरे को घर लाकर पूजने लगा तो देवता की शक्ति से भोधू के सभी कार्य सिद्ध होने लगे। जब अन्य लोगों को इस बात का पता चला तो उन्होंने भी देवता को पूजना आरम्भ किया और उसके निमित्त व्यासर गाँव में मंदिर बनाकर उसकी स्थापना की। न्याय के लिए लोग दूर-दूर से इस देवता के पास आते हैं और इसकी झूठी शपथ खाने से परहेज़ करते हैं।

कैला वीर

गाँव : कमांद, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कमांद।

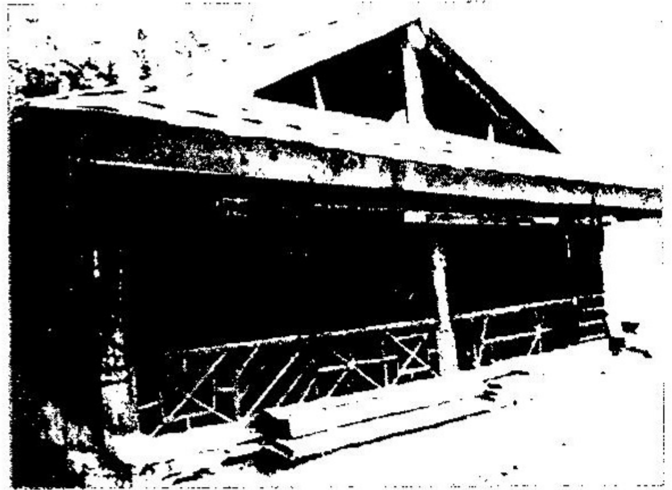
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना मंदिर। इसकी चारों ओर को ढलानदार छत पर स्लेटें आच्छादित हैं। शिखर पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : कमांद।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी व भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति तथा उसके बाद आने वाले प्रथम रविवार या वीरवार को। मेले-त्योहारों में जब



देव-रथ निकलता है तो प्रातः-सायं दोनों समय रथ की पूजा होती है।

रथ : गुंबदाकार छत्र से अलंकृत खड़ा रथ।

मोहरे : कुल नौ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का अन्य आठ पीतल के।

मेले-त्योहार : 20 मार्गशीर्ष को देवता का अपना पर्व होता है, जिसमें प्रातः-सायं देउली होती है।

जनश्रुति : कैला वीर कोठी हरकंडी के लोगों का कुल देवता था। किसी समय वहाँ के हारियान गाँव ज़िया से कमांद आए तो अपने कुलज के प्रतीक चिह्न के रूप में एक पिंडी साथ लाए और उसकी पूजा करते रहे। उनकी सुख-समृद्धि से प्रभावित होकर उस क्षेत्र के अन्य लोगों ने भी देवता की शक्ति को अनुभव किया और वे भी कैला वीर को पूजने लगे।

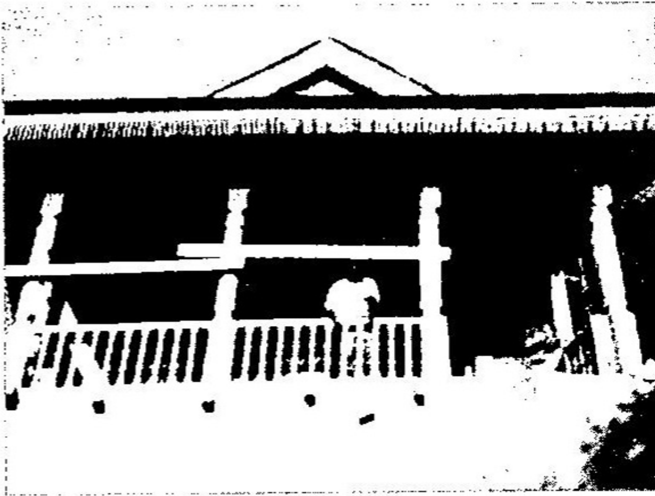
कैला वीर

गाँव : खलोगी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : खलोगी।

भंडार : विष्ट खानदान के परिवार में।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर एक कमरे व एक मंज़िल का था, जिसकी छत दो ओर को ढलानदार थी। इसके गर्भगृह में पिंडी स्थापित थी। इसके स्थान पर पुराने स्वरूप को कायम रखते हुए नए मंदिर का निर्माण किया जा रहा है। इसके साथ ही जोगणी का भी मंदिर है।



अधिकार क्षेत्र : खलोगी, पधर, पाहनाला।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : 'पूछ', 'लड्डू' और 'मलोही' द्वारा।
पूजा : मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर 'धड़छ' में जड़ी धूप जलाकर रथ के समक्ष प्रातः-सायं घंटी व शंख ध्वनि के साथ पंचोपचार विधि से।
रथ : दौइल की लकड़ी का बना फेटा रथ।
मोहरे : तेरह। इनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का और अन्य रजत निर्मित हैं। इनके अतिरिक्त लोहे की छड़, तीन कटारें, एक साँकल, ध्वज, सूरज पंखा इसके निशान हैं।
मेले-त्योहार : बैसाख मास के प्रथम सप्ताह और श्रावण मास के अंतिम सप्ताह में 'सतराड़ा' होता है। इसमें रथ को भंडार से मंदिर तक ले जाया जाता है और वहाँ रथ को तैयार करके 'देऊखेल' होती है। उसके बाद 'पूछ' डाली जाती है।
जनश्रुति : यह पाहनाला के दलित वर्ग का देवता था, जो पिंडी रूप में मंदिर में स्थापित था। एक बार खलोगी गाँव के विष्ट परिवार की एक स्त्री यहाँ घराट में आटा पिसाने आई। वह लौटते हुए मंदिर से पिंडी उठाकर किलटे में डालकर अपने घर ले आई और उसे पूजना आरम्भ किया। कुछ समय बाद देवता ने उसे स्वप्न में कहा कि उसकी स्थापना गाँव में की जाए। तब गाँव में मंदिर का निर्माण कर वहाँ पिंडी को स्थापित किया गया।

कैला वीर

गाँव : डोल, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : डोल।
स्थापत्य : गाँव से दूर एकांत स्थान पर लकड़ी और पत्थर से बना एक कक्ष का लघु मंदिर, जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। इसके द्वार की चौखट से ऊपर बलि-पशुओं के सींग लगे हुए हैं।
शाखा मंदिर : धार्ठ, पेच्छा।
अधिकार क्षेत्र : सेऊगी, बेऊगी, धार्ठ, पेच्छा आदि गाँव।
प्रबंध : देवता के कारकुनों द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'पोगले' व 'मलोही' डाल कर।
पूजा : धड़छ में बेठर व गुग्गुल जलाकर घंटा-ध्वनि के साथ।
रथ : नहीं है।
मेले-त्योहार : श्रावण तथा माघ मास में *जागरा* होता है, जिसमें मोटी-मोटी लकड़ियों को देव-प्रांगण में इकट्ठा कर त्रिकाल वेला में अग्नि प्रज्वलित की जाती है। जिस व्यक्ति ने जागरे का आयोजन किया होता है, वह देवता से 'पूछ' लगाता है। सारी रात भजन और नाटी होती है। देवता को भोग लगाने के पश्चात् उपस्थित जनों को भोजन करवाया जाता है, मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को वीर-पुजाई उत्सव। इसके अतिरिक्त जब कभी मंदिर का जीर्णोद्धार होता है तो मेढ़े या बकरे की बलि दी जाती है। देवप्रथा के अनुसार उस समय पार्वती और व्यास नदियों



के संगम स्थल से देवता को लाया जाता है। वहाँ से एक आकार और वज़न के पाँच या सात गोल पत्थर तुला में तोल कर लाए जाते हैं। रास्ते में दोबारा तोलने पर जिस पत्थर का वज़न कम हो जाए उसे फेंक दिया जाता है। इस प्रकार तीन-चार बार तोलते हुए अंत में बराबर भारवाले केवल तीन पत्थर रह जाने पर ब्राह्मणों द्वारा उनकी विधिवत् प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। देवशक्ति के मंदिर में प्रवेश करते ही बादल बरसते हैं। इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

जनश्रुति : कैला वीर डोल गाँववालों का कुलदेवता है। लगभग हज़ार वर्ष पूर्व इस गाँव पर डलाल खानदान के डोली ठाकुर का राज था। इसके अतिरिक्त कई अन्य गाँवों में भी उसकी सैकड़ों बीघा भूमि थी। उसकी समृद्धि से रोगीगढ़ के राजा को बड़ी ईर्ष्या होती थी। डोली ठाकुर की भूमि को हथियाने के उद्देश्य से एक बार उसने डोल गाँव पर हमला कर दिया और वहाँ पर अपना कब्ज़ा जमा लिया। इस घटना से डोली ठाकुर अत्यंत पीड़ित हुआ और धार्ठ गाँव में स्थित कैलावीर की शरण में गया। धार्ठ में उसके महल के चार मुख्य द्वार थे, जिनमें से एक द्वार पर बैठकर वह बिजली महादेव की स्तुति करने लगा।

बिजली महादेव के गूर ने रोगी गढ़ के राजा पर विजय प्राप्त करने के लिए उसे एक अंगूठी धारण करने के लिए दी। दिव्य शक्तियुक्त उस अंगूठी को पहनकर डोली ठाकुर ने रोगीगढ़ के राजा के साथ युद्ध किया और अपनी भूमि वापिस छुड़वा ली। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने अपने कुलदेवता कैला वीर के निमित्त डोल में भी एक मंदिर का निर्माण करवाकर, उसमें देवता की स्थापना की। आज भी डलाल वंश के ठाकुर इस देवता के पुजारी हैं। इस वंश के लोग जिस भी गाँव में बसे, वहाँ उन्होंने देवता कैलावीर की स्थापना की।

कैला वीर

गाँव : थर्कू, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : गाँव रोगी।
मंदिर : थर्कू।



स्थापत्य : लकड़ी-पत्थर से पैगोड़ा शैली में वना डेढ़ मंज़िल का द्विछतीय मंदिर स्लेटों से आच्छादित है। प्रवेश-द्वार पश्चिम दिशा की ओर है। मंदिर के उत्तर-पश्चिम में जोगणी माता की थली (स्थल) है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव रोगी, बंदल, दहणीधार, तलाईटी, थर्कू, पेच्छा।

प्रबंध : देवता के कारिंदों द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'मलोही' और 'पांगले' डाल कर।

पूजा : प्रतिदिन गुग्गुल व वेठर धूप से।

रथ : नहीं है।

मोहरे : मोहरों के स्थान पर घंटी-धड़छ ही देवता का प्रतीक चिह्न है।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को *वीरपजाई* उत्सव। इसके अतिरिक्त ढैने खानदान के लोगों द्वारा वर्ष में दो बार *यज्ञ* का आयोजन किया जाता है। श्रावण मास के यज्ञ में सम्मिलित लोगों को खीर तथा माघ मास में मीठा भात व खिचड़ी का भोग परोसा जाता है।

जनश्रुति : कैलावीर को दानवीर कर्ण माना जाता है। यह देवता रोगी गाँव से थर्कू में चंसारी गाँव के डोडू और पत्तू नाम के दो ब्राह्मण भाइयों के साथ आया। वे बिजली महादेव के साथ-साथ अन्य देवों की भी पूजा करते थे। ब्राह्मण होने के नाते कई बार वे रोगी गाँव में कैलावीर के मंदिर में जप-पाठ के लिए जाया करते थे, जिस कारण देवता ने उन्हें अपना पुरोहित नामित किया। अब उन्हें नियमपूर्वक चंसारी से रोगी गाँव जाना पड़ता। संतान न होने के कारण वे बहुत दुःखी थे। एक बार पूजा करते हुए उन्होंने अपना दुःख कैलावीर के सामने प्रकट किया तो देवता के आशीर्वाद से डोडू के घर पुत्र पैदा हुआ और उनका वंश चल पड़ा। कुछ समय बाद उन्होंने थर्कू गाँव की अपनी भूमि पर मकान बनाकर उसकी छत पर कैला वीर की स्थापना की और कुलदेवता के रूप में पूजा करने लगे। सैकड़ों वर्षों तक देवता की पूजा वहीं होती रही और पूछ आदि भी छत पर ही डाली जाती रही। लगभग पचास वर्ष पूर्व फाटी आबादी में योगिनी और दाणी देवता के स्थान के साथ वहीं कैलावीर के मंदिर का भी निर्माण किया गया। तब से ये तीनों देवता एक स्थान पर ही हैं।

कैलावीर

गाँव : प्राक्षी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : प्राक्षी।



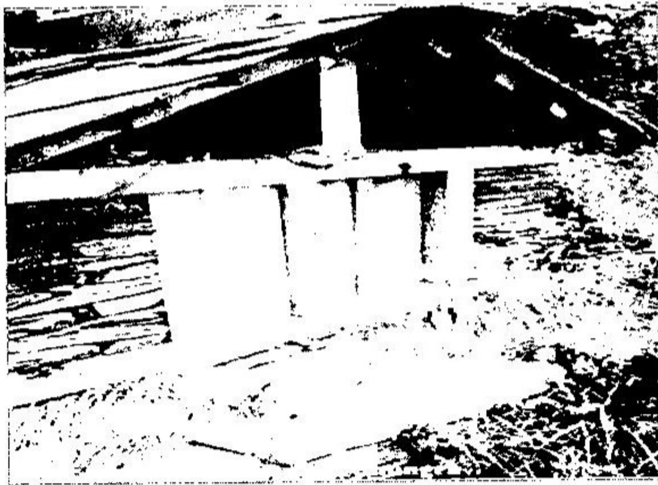
भंडार : गाँव प्राक्षी में कस्तारू खानदान के एक परिवार में।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का मंदिर। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है, जिस पर बदोर लगा है। गर्भगृह में कैलावीर के साथ पराशर ऋषि की पिंडी भी स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : प्राक्षी गाँव के कस्तारू खानदान का कुल देवता। गाँव नैणा सेरी के लोग भी इसे मानते हैं।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, कठियाला, बांठ की समिति। ये सभी कस्तारू खानदान से होते हैं।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देवरथ द्वारा, पूछ, लाडू तथा मलोही डालकर।
पूजा : पर्व के अवसर पर जब देवता का रथ निकलता है तो प्रातः-सायं 'घोंडी-धड़छ' से पारम्परिक तरीके से पूजा होती है। जेठे वीरवार और रविवार में से जो पहले आए उस दिन तथा संक्रांति को केवल प्रातः पूजा होती है।
रथ : वर्ष 1994 में दो अर्गलाओं से युक्त चौकोर रथ का निर्माण किया गया है। इसके चारों ओर रजत निर्मित दो-दो मोहरे लगाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त अग्रभाग में अष्टधातु का मुख्य मोहरा भी लगता है। रथ के शीर्ष पर चाँदी का छत्र शोभित होता है। रथ बनने से पूर्व देवता की कोंडी (करंडी) होती थी, जिसमें देवता का केवल एक मोहरा होता था।
मोहरे : नौ।
मेले-त्योहार : श्रावण मास के अंतिम सप्ताह में शनोहुली मनाई जाती है, मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को मुंघर पुन्नू मनाया जाता है, मन्नत पूर्ण होने पर लोग भौती (प्रीति भोज) का आयोजन करते हैं। इस अवसर पर देवता के रथ को घर बुलाया जाता है। पराशर ऋषि का प्रहरी होने के कारण यह देवता कहीं न ठहर कर उसी दिन सायं अपने मंदिर में लौट आता है।
जनश्रुति : यह पराशर ऋषि, कमांद के साथ यहाँ आया और प्राक्षी खानदान के लोगों का कुल देवता बना।

कैला वीर

गाँव : लोट, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : लोट।

भंडार : लोट गाँव के ठाक्कर खानदान के भंडारी के निजी घर में।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक कक्षीय मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।

अधिकार क्षेत्र : लोट गाँव तथा इसके बाहर बसे ठाक्कर खानदान के लोगों का कुल देवता।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, कठियाला, बांठ की समिति।

न्याय प्रणाली : देव रथ द्वारा, गूर के माध्यम से, लड्डू तथा मलोही डालकर।

पूजा : पर्व के अवसर पर जब रथ सजा होता है तो प्रातः सायं रथ की पूजा होती है। इसके अतिरिक्त हर संक्रांति के दिन भंडार में केवल प्रातःकाल ही पूजा होती है। यदि वीरवार या रविवार को संक्रांति आए तो मास में केवल एक दिन पूजा होती है अन्यथा जेठे वीरवार या रविवार में से जो पहले आता है, उस दिन भी पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ। इसके चारों ओर रजत निर्मित दो-दो मोहरे सजे होते हैं। रथ की गोदी में मुख्य मोहरा तथा शीर्ष पर चाँदी का छत्र सुशोभित होता है।

मोहरे : मुख्य मोहरे सहित कुल नौ।

मेले-त्योहार : वैशाख, श्रावण और मार्गशीर्ष मास में पर्व होते हैं। वैशाख मास में देवता महाराजा कोठी में लगभग 8,500 फुट की ऊँचाई पर स्थित गढ़ पर जाता है। श्रावण मास में लोट गाँव में नारायण देवता के साथ शाउणी मेला लगता है और मार्गशीर्ष मास में मंदिर में पर्व मनाया जाता है।

जनश्रुति : रियासती काल में महाराजा कोठी के सभी गढ़ों पर पड़ोसी ठाकुरों ने कब्ज़ा कर लिया था, लेकिन लोट गढ़ पर स्थानीय ठाकुर का आधिपत्य बरकरार था। इस गढ़ पर कई बार आक्रमण करने पर भी शत्रु विजय पाने में असफल रहे। इसे कैला वीर की शक्ति का प्रभाव जानकर ठाकुर ने इसे कुल देवता के रूप में पूजना आरम्भ किया और देवता के मंदिर का निर्माण किया। लोट गाँव का ठाक्कर खानदान इसे वर्तमान में भी कुल देवता के रूप में ही पूजता है। इस स्थान पर आज भी पुराने किले के निशान तथा पत्थर में खुदे लगभग दस फुट से अधिक गहरे तथा सात-आठ फुट व्यास के दो टैंक विद्यमान हैं।

कोटली देवी

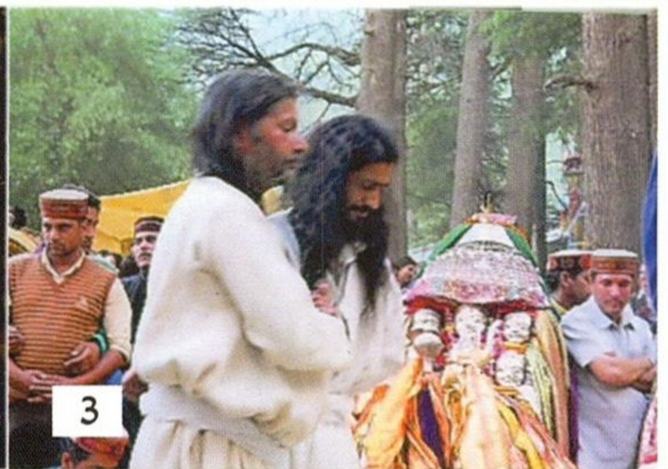
गाँव : सोयल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सोयल।

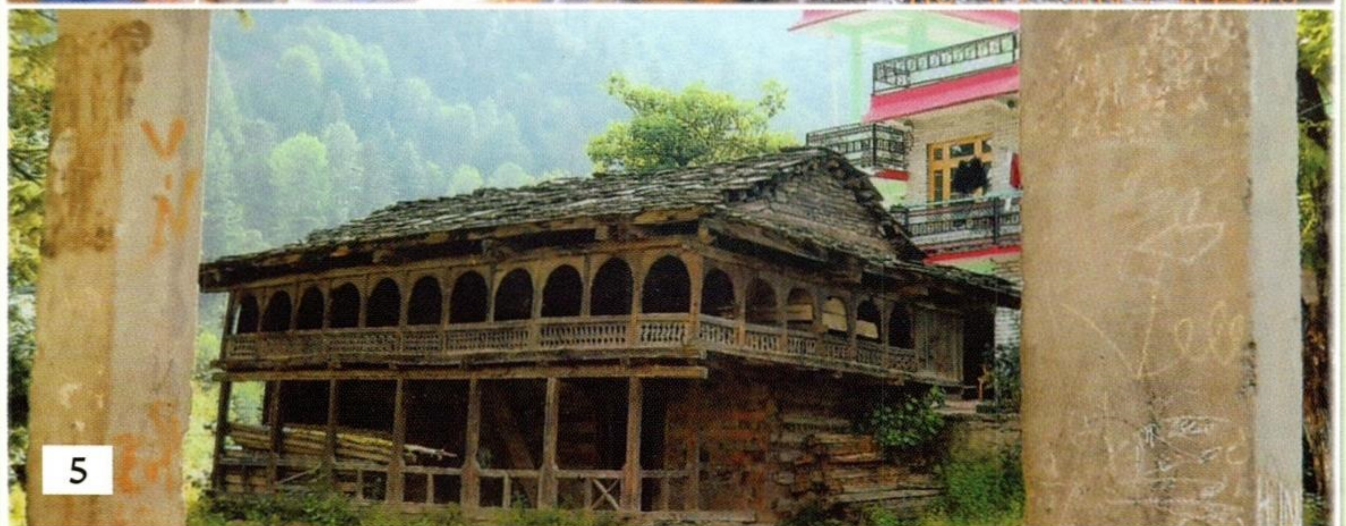
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत 'पौट' से ढकी है। नीचे की मंज़िल में भंडारी अपने परिवार के साथ रहता है। माता की शाल्ह (मोहरे, छत्र, आभूषण आदि रखने का छोटा कमरा) मंदिर के टाले़ (सबसे ऊपर की आधी मंज़िल) में है। मुख्य मंदिर से चार-पाँच मीटर की दूरी पर देवी का 'डेहरा' है। इसमें रथ रहता है और मेले-त्योहारों के अवसर पर इसे यहीं सजाया जाता है। मुख्य मंदिर से पंद्रह-बीस मीटर की दूरी पर शाखा मंदिर है। ढलानदार छतवाले इस डेढ़ मंज़िल के मंदिर के शिखर पर 'बदोर' लगा है। मंदिर का पिछला भाग एक भीमकाय चट्टान से सटा है। इसके आधार की गुफा में माता की पिंडी और कन्या रूप की माता की प्रस्तर मूर्ति है।


1


2


3


4


5


6


7



8

फोटो फीचर : 1

1. हिड़मा : हिडिम्बा देवी का मूल मोहरा 2. भेखली माता का गर्भ गृह 3. ढूंगरी मेले में देऊखेल करते हुए गूर 4. नारायण देवता नरहाच (बायें) के शनौहली उत्सव में कौशू नारायण बनोगी (दायें) का मिलन 5. सिंहासनी माता बड़ाग्राँ का भंडार 6. थान देवता शिम तथा काली ओड़ी डोभी के रथ 7. वासुकि नाग का फागली उत्सव 8. आदि ब्रह्मा खोखण

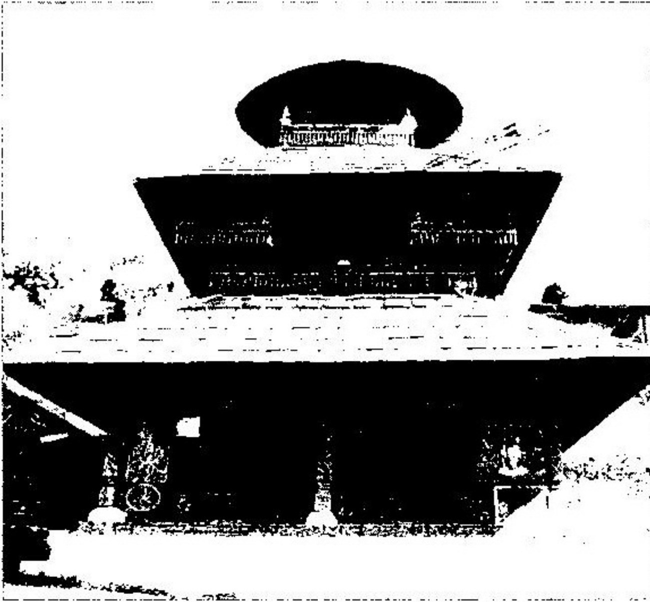


अधिकार क्षेत्र : सोयल।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : मेले-त्योहारों के अवसर पर जब रथ बाहर निकलता है तब प्रातः-सायं देवी की पूजा 'घोंडी-धड़छ' के साथ की जाती है।
रथ : फेटा, अखरोट की लकड़ी का बना है। इसमें दो अर्गलाएँ लगी हैं। इसके अतिरिक्त एक 'करड़ू' भी है।
मोहरे : रजत निर्मित ग्यारह और छत्र।
मेले-त्योहार : नव संवत् के दूसरे दिन *कोहनी फागली*, जिसमें देवी रथ पर सज्जित होकर जमलू देवता के पास जाती है। दिन भर देव-कार्यक्रम के बाद माता के रथ को डेहरे में रखा जाता है। अगले दिन माता *जवाड़ी मेले* में सरसेई गाँव जाती है। यह मेला तीन दिन तक चलता है। इन दिनों देवी दशाल गाँव में हारियानों (प्रजाजनों) के घर रात्रि विश्राम करती है। यहीं से प्रतिदिन मेले में पधारती और पारम्परिक देव-कार्यक्रम के पश्चात् लौटती है। चौथे दिन देवी वहाँ से वापिस सोयल आती है। मूल मंदिर में रथ को रख दिया जाता है। श्रावण मास में तीन दिवसीय *शाऊणी जाच*, जिसमें प्रथम दिन जमलू देवता की *जेठी जाच* को माँ मेले में आए अन्य स्थानीय देवताओं-सजला के विष्णु, ब्राण के महादेव, पटाहर के पीऊंली नाग, हरिपुर की नीलासुरी देवी, अरछंडी की काली ओड़ी आदि का स्वागत करती है। विष्णु देवता के अतिरिक्त अन्य सभी देवी-देवता उसी दिन अपने-अपने स्थान को लौट जाते हैं। दूसरे दिन करज़ां से कुल्लू के राजा की कुलदेवी दोचा-मोचा आती है तथा 'देवचारी' के पश्चात् सायं अपने देवालय को लौट जाती है। तीसरे दिन विष्णु, जमलू और कोटली माता भी अपने-अपने मंदिर में लौट आते हैं। शिवरात्रि को दो दिन का उत्सव होता है। प्रथम दिवस देवी के जन्मोत्सव के रूप में रात्रि जागरण किया जाता है। दूसरे दिन शिवरात्रि मेला होता है जिसमें देवी के 'करड़' को सजा कर भंडार से 'डेहरे' में लाया जाता है। इसी दौरान पाँच बारी (कामदार) चुने जाते हैं। इसके बाद शाम को देवचारी के उपरांत माता का करड़ू भंडार में रख दिया जाता है।
जनश्रुति : किसी समय काँगड़ा के कोटला गाँव से कुछ लोग आकर सोयल गाँव में बस गए और वहाँ उन्होंने अपनी कुलदेवी पार्वती की स्थापना की। कोटला से आने के कारण देवी का नाम *कोटली* पड़ा।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार देवी की स्थापना पहले दशाल गाँव में भगवान गौरीशंकर के मंदिर में थी। कभी सोयल गाँव के लोग देवी को वहाँ से चुराकर ले गए और सोयल में देवी की स्थापना की, लेकिन आज भी दशाल गाँव के लोग कोटली देवी को मानते हैं।

कौशू नारायण

गाँव : खलोगी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : खलोगी।
भंडार : खलोगी गाँव के दरोगा परिवार के घर में।
स्थापत्य : गाँव के मध्य में पैगोड़ा शैली में बना मंदिर, जिसमें तीन छतें हैं। सर्वप्रथम देवता की स्थापना डेहरी में की गई थी। इसके स्थान पर वर्ष 1978 में एक मंदिर बनाया गया, जिसका जीर्णोद्धार वर्ष 1992 में किया गया है। मंदिर के गर्भगृह में प्रस्तर मूर्ति स्थापित है तथा बाहर के कक्ष में काष्ठ पर भगवान विष्णु के 24 अवतार उत्कीर्णित हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव खलोगी, पधर तथा इन गाँवों के बाहर बसे लोग, जो मेले के दौरान देव-चाकरी के लिए आते हैं।



न्याय प्रणाली : न्याय के लिए क्षेत्र में यह देवता सबसे अधिक शक्तिशाली माना जाता है। यह 'कशमी' के माध्यम से झूठे व्यक्ति को दंड देता है। यदि कोई व्यक्ति झूठ, चोरी आदि से मुकर जाता है तो उसे *कशमी* (क़सम) के लिए मंदिर में ले जाकर देवता का पानी (चरणामृत) पिलाया जाता है। अगर व्यक्ति झूठा हो तो धारणा है कि उसकी कुछ ही दिनों बाद आकस्मिक मृत्यु हो जाती है या उसे मृत्युतुल्य कष्ट होता है। कशमी से ही इस देवता के नाम **कौशू** की उत्पत्ति मानी जाती है।

पूजा : हर मास की संक्रांति तथा मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर 'धड़छ' में जड़ी धूप जलाकर घंटी व शंख ध्वनि के साथ देव-स्तुति की जाती है। प्राकृतिक आपदाएँ आने पर 'हारियान' की समस्याओं के समाधान के लिए *'हारका'* होता है।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *बिरशू*।

जनश्रुति : लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व खलोगी गाँव में दरोगा खानदान के अठारह तथा दलित वर्ग के बाईस परिवार थे। इस गाँव का विस्तार कड़ोणी नाले तक था, जहाँ देवता का मंदिर था। किसी समय भूस्खलन से यहाँ तबाही हो गई, जिसमें मंदिर भी नष्ट हो गया। इस जगह आज भी देवता का स्थान माना जाता है। कालांतर में लगभग 1830 ई. के आसपास दरोगा खानदान के किसी परिवार के खुड़ (गोशाला) के डुकण (पशुओं का मूत्र इकट्ठा करने के लिए बनाया गया गड्ढा) में गोमूत्र उबलने की घटना घटी। वहाँ खोदने पर उन्हें एक मोहरा मिला। उसी समय किसी व्यक्ति में देवशक्ति का प्रवेश हुआ। उसने कहा-मैं कौशू नारायण हूँ और जनकल्याण के लिए प्रकट हुआ हूँ, गाँव में मेरी स्थापना की जाए। तब लोगों ने एक डेहरी (छोटा देवघर) में इसकी स्थापना कर इसे पूजना आरम्भ किया। इसी डेहरी के स्थान पर गाँववासियों ने बाद में मंदिर का निर्माण किया।

क्याणी नाग

गाँव : क्याणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : क्याणी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर है। छत स्लेटों से ढकी है, जिस पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव क्याणी, लपास।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, छटाली की समिति।

न्याय : गूर व रथ द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन पूजा नहीं होती। हर संक्रांति, पूर्णमासी तथा मेले-त्योहारों के अवसर पर प्रातः-सायं पूजा होती है।

रथ : फेटा। इसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।

मोहरे : बारह।

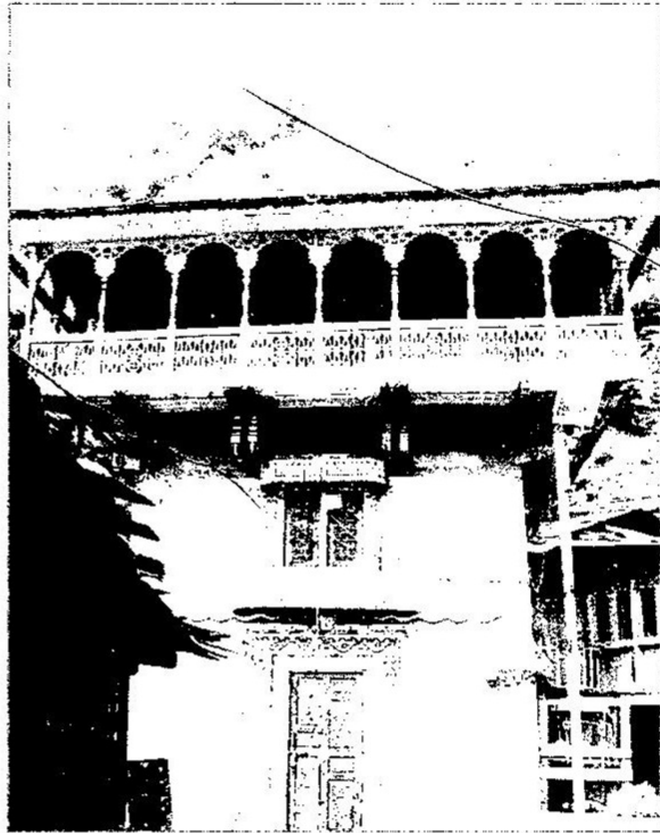
मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति तथा नागपंचमी को देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : इसे वासुकि नाग का पुत्र माना जाता है। क्याणी गाँव के किसी व्यक्ति को एक रात स्वप्न हुआ कि गाँव में नाग देवता ने प्रवेश किया है। उसका मुखौटा खेत में दबा पड़ा है। यदि उसका सम्मान किया जाए तो वह गाँव के हर कष्ट दूर करेगा। उस व्यक्ति ने स्वप्न में बताए गए स्थान पर खुदाई की तो उसे वहाँ एक मोहरा मिला। लोगों ने उसे एक स्थान पर स्थापित किया और उसकी पूजा करनी आरम्भ की। शीघ्र ही गाँव में अन्न-धन की

भरमार हो गई। कालांतर में लोगों ने एक मंदिर का निर्माण किया और इसे गाँव के नाम पर क्याणी नाग के नाम से पूजा जाने लगा।

क्षेत्रपाल

गाँव : शालंग, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शालंग।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर; जिसका प्रवेशद्वार पूर्व की ओर है। समतल छत पत्थर की बड़ी-बड़ी स्लेटों से ढकी है। तीसरी मंज़िल में दो फुट का चौतरफा बरामदा है। मंदिर की दूसरी मंज़िल में भंडार है, जिसमें देवता के वाद्ययंत्र तथा लोगों से प्राप्त अन्न रखा जाता है।
अधिकार क्षेत्र : कालंग, डुंखरी, दोघरी।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : 'मलोही' डालकर।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-बत्ती जलाई जाती है।
रथ : दो अर्गलाओं पर उठाया जानेवाला, फेटा रथ।
मोहरे : कुल सोलह। इनमें से मुख्य मोहरे को विशेष उत्सवों में देवरथ में सजाया जाता है।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को *बिरशू* मेला; जिसमें देव-भारथा सुनाई जाती है। शालंग गाँव से निकल कर देवता डुंखरी नामक स्थान की ओर जाता है। वहाँ दिन-भर मेले का आयोजन होता है। देऊखेल भी होती है और शाम के समय देवता शालंग गाँव की ओर प्रस्थान करता है। शालंग गाँव में रात को मंदिर परिसर में अलाव जलाया जाता है जहाँ स्थानीय लोग देवता के साथ उसके चारों ओर नाचते-गाते हैं। गूर को खेल आती है और उस समय वह लोगों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देता तथा उनकी शंकाओं का समाधान करता है। श्रावण संक्रांति को *शाउणी जाच, भादों मास* में मेला, कार्तिक में *दशहरा,* मार्गशीर्ष में *मुंघर पुन्नू के त्योहार* मनाए जाते हैं।
जनश्रुति : किसी समय शालंग गाँव के इशरू नामक पुरोहित व उसकी पत्नी को अपने खेत में निराई करते समय एक मोहरा मिला। वे उसे घर ले आए और माश की कोठड़ (अन्न रखने की काष्ठ-पेटिका) में रख दिया। कुछ समय बाद उन्होंने देखा कि मोहरा कोठड़ के ऊपर आ गया है। जब ऐसा दो-चार दिन तक होता रहा तो उसमें दिव्य शक्ति जान कर वे प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगे। देवता के प्रताप से कुछ ही समय में वे समृद्ध हो गए। कालांतर में गाँव के किसी व्यक्ति में प्रकट होकर देवता ने मंदिर बनाने का आदेश दिया तो लोगों ने मंदिर बनाकर उसमें देवता की स्थापना की।

खडासणी देवी

गाँव : भाड़का, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : मणिकर्ण घाटी का खडासण नामक स्थल।
मंदिर : भाड़का।
स्थापत्य : मेरु संयोजन शैली में बना काष्ठ-प्रस्तर का



मंदिर जिसके सम्पूर्ण काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है, जिस पर 'बदोर' लगा है। देवी की स्थापना सबसे भीतर के कक्ष में है। यहाँ केवल पुजारी ही जा सकता है।

अधिकार क्षेत्र : सरसेई से हरिपुर तक का सारा क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : कारदार के माध्यम से।

पूजा : मंदिर में प्रातः-सायं रथ की पूजा केवल मेले-त्योहारों के अवसर पर ही की जाती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : पंद्रह, जिनमें एक मुख्य मोहरा है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को जवाड़ी मेले का आयोजन।

जनश्रुति : कात्यायन ऋषि के घर जन्म लेने के कारण इसे कात्यायनी नाम से भी जाना जाता है। यह वास्तव में मणिकर्ण घाटी के खडासण नामक स्थान की देवी थी। वहाँ देवी के गूर को जब खेल आती थी तो देवी दूसरे स्थान पर स्थापित होने की बात करती थी। उन्हीं दिनों भाड़का के वर्तमान पुजारी के पूर्वज को भी खेल आई। उसने कहा मैं खडासणी देवी हूँ और यहाँ रहना चाहती हूँ। तब गाँववासियों ने भाड़का में मंदिर का निर्माण कर खडासण से देवी की मूर्ति लाकर यहाँ स्थापित कर दी। देवी की स्थापना इस क्षेत्र के चौंग गाँव में चौंगासन, बड़ाग्राँ में संघासण, जरी के पीछे जंगल में रूपासण, चनाहलदी में कलासन, पनेऊड़ा जरी में पंजासण तथा भाड़का में खडासण के नाम से है। इसके आसन छह स्थानों पर होने के कारण भी इसका नाम षडासन है। ष के ख होने की भाषा प्रवृत्ति से यह खडासण कहलाई जाने लगी।

गणपति

गाँव : घुड़दौड़, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : घुड़दौड़।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। छत के शिखर पर 'बदोर' तथा उसके ऊपर लकड़ी के तीन पारू (कलश) लगे हैं। भीतर शिव-पार्वती व गणेश की पाषाण मूर्तियाँ स्थापित हैं। मंदिर से 400 मीटर दूर चार मंज़िल का काठकुणी शैली में निर्मित भंडार है, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर देवदार की लकड़ी का बदोर लगा है और उस पर पीतल के तीन कलश स्थापित हैं। धरातल मंज़िल में भंडारी का आवास है। दूसरी मंज़िल में देवता के रथ रखे जाते हैं जो संख्या में चार हैं। तीसरी मंज़िल में चारों ओर *ग़ाउड़* (बरामदा) है। तीसरी व चौथी मंज़िल खाली व बंद रहती है।

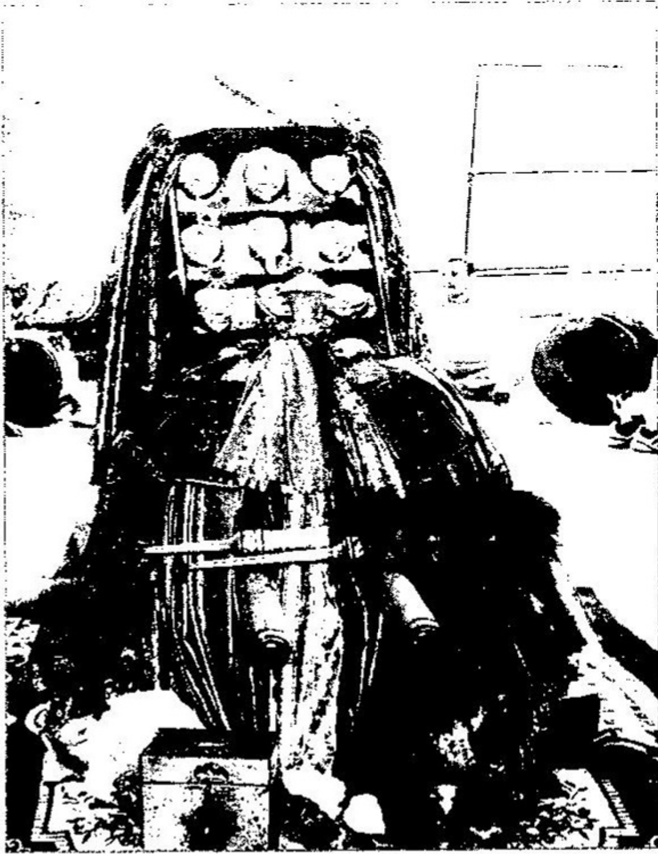
अधिकार क्षेत्र : गाँव घुड़दौड़, तिल्लाशारनी, बटाहर, बणसारी।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, धामी, जठेरा, भंडारी, कठियाला, ढौंसी, छटाली, कायथ, नाथ, खोलीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता व उसके कारकुनों द्वारा जिसमें अंतिम निर्णय देवता का ही माना जाता है। 'पौगल' विधि से भी।

पूजा : केवल विशेष अवसरों पर 'धौड़छ' में वेठर जलाकर घोंडी (घंटी) की ध्वनि के साथ की जाती है।

रथ : अखरोट की लकड़ी से बना फेटा रथ, जिसके शीर्ष पर चाँदी का कलश लगता है। इस रथ की यह विशेषता है कि यह सदैव सज्जित रहता है। रथ-निर्माण के पीछे जनश्रुति है कि एक बार घुड़दौड़ गाँव के बच्चों ने खेलने



के लिए एक रथ बनाया। शौयरी संक्रांति के दिन उसे सजा कर वे गाँव के प्रत्येक घर में ले गए। गाँववालों ने बच्चों को पैसे और अनाज दिया। अनाज को बेचकर उन्होंने कुछ धन कमाया। तब उनके मन में देवता के लिए सुन्दर रथ बनाने का विचार आया। उन्होंने मिस्त्री से बात की, परन्तु उसने समयाभाव का बहाना कर रथ बनाने से मना कर दिया। अगले दिन जब वह खेत में हल चलाने लगा तो उसका बैल अचानक बीमार हो गया। रात को स्वप्न में देवता ने उसे दर्शन देकर कहा कि अगर वह बच्चों का रथ बना देगा तो उसका बैल ठीक हो जाएगा। प्रातः जब उसने रथ बनाना आरम्भ किया तो उसके बैल ने घास खाना शुरू कर दिया। इसे देवता का चमत्कार जान कर मिस्त्री ने देवता के लिए सुन्दर रथ बनाया।

मोहरे : बारह रजत के व सात अष्टधातु के।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को देवता रथ पर सुसज्जित होकर गाँव की परिक्रमा कर रक्षासूत्र बाँधता है। वैशाख मास में त्रिदिवसीय *बिरशू* मेला, जिसमें तीन प्रविष्टे को सायं मंदिर के प्रांगण में अलाव जलाया जाता है और वैशाख मास के चार प्रविष्टे को *जला पधर मेला,* माघ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्थी को देवता के *जन्मोत्सव* का आयोजन।

जनश्रुति : एक राजा के कोई संतान नहीं थी। एक बार उसकी रानी ने पुत्र प्राप्ति की कामना से गणपति की अष्टधातु की मूर्ति बनवा कर श्रद्धापूर्वक उसकी आराधना की। गणपति की कृपा से उसे पुत्र की प्राप्ति हुई तो राजा ने घुड़दौड़ में देवता के लिए सात मंज़िल का मंदिर बनवाकर मूर्ति को उसमें स्थापित किया और लगभग 100 बीघा भूमि भी मंदिर के नाम कर दी। कालांतर में किसी प्राकृतिक आपदा के कारण यहाँ की बस्ती और मंदिर नष्ट हो गए। देवता की पूजा करनेवाला कोई न रहा। कुछ काल बाद भेखली गाँव का एक महंत यहाँ आया और देवता की पूजा करने लगा। एक बार उसके मन में कपट आने पर उसने देवता की सारी चल-अचल सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा लिया। इससे रुष्ट होकर देवता ने उस महंत का नाश कर दिया। सन् 1955 में मोती राम नाम के मिस्त्री को स्वप्न में दर्शन देकर गणपति ने वहाँ अपनी उपस्थिति का आभास कराया तो उसने ग्रामवासियों के साथ मिलकर रथ और मंदिर का निर्माण किया।

गर्गाचार्य

गाँव : लाहशणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : लाहशणी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पैगोड़ा शैली में बना तीन मंज़िल का मंदिर। छत पर स्लेटों का आच्छादन है और काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त पहाड़ी शैली के दो छोटे मंदिर भी हैं।

अधिकार क्षेत्र : लाहशणी।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, भंडारी, कठियाला, ढौंसी आदि की समिति।

न्याय प्रणाली : देवरथ द्वारा, पुजारी के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा की प्रथा नहीं है। संक्रांति, पूर्णिमा, अमावस्या तथा विशेष मेले-त्योहारों पर जब रथ सज्जित होता है तो प्रातः-सायं पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : चैत्र, भादों तथा आश्विन मास की संक्रांतियों के अतिरिक्त 7 जेठ को कथैची मेला लगता है।

जनश्रुति : सृष्टि के आरम्भ में गर्गाचार्य स्वर्ग से कश्मीर में प्रकट हुआ। वहाँ से मथुरा-वृंदावन होते हुए कई अन्य स्थानों में स्थापना के बाद कुल्लू ज़िला के लाहशणी (दलासणी) नामक स्थान पर साधु वेश में आया। वहाँ उसने अपना त्रिशूल धरती में गाड़कर पानी का स्रोत निकाला और वहाँ के लोगों को पीने का पानी उपलब्ध करवाया। लोग इस चमत्कार को देखकर उसके पास नतमस्तक होने लगे। लोगों के पूछने पर उसने अपना परिचय गर्गाचार्य के रूप में दिया। एक दिन साधु अकस्मात् अन्तर्धान हो गया। तब लोग देवता के रूप में उसकी आराधना करने लगे।

गौतम ऋषि

गाँव : शाट, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शाट।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर। चारों ओर को ढलानदार इसकी छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर बदोर लगा है।

शाखा मंदिर : गाँव मनिहार एवं गोशाल।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शाट, शारनी, छनीखोड़।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, कुठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ द्वारा।

पूजा : मेले-त्योहारों के अवसर पर जब रथ सजता है तो प्रातः-सायं पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।



मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष की आमला एकादशी को देवता का जन्मोत्सव मनाया जाता है। तब दो दिवसीय मेला लगता है। देव रथ को मंढारने (देवता को देव मंदिर में वापिस बिठाना) से पूर्व मंदिर के पास स्थित तालाब के पास ले जाते हैं, जहाँ सदियों पुराना एक सूखा पेड़ है। देवता के कारिंदे उस पेड़ पर तीर चलाते हैं। तीर लगे स्थान से दूध, मधुमक्खी, ततैया, बर्रे इत्यादि निकलते हैं। इस अवसर पर दो मेढ़ों की बलि दी जाती है। इनमें से एक मेढ़ा कुल्लू के राजा की ओर से भेंट किया जाता है और दूसरा देवता की ओर से होता है।

यहाँ पर देवता का सहायक ठारा पेड़े भी है। इसे सूर पिलाई जाती है। तत्पश्चात् गूर लोगों की समस्याओं का निदान करता है।

जनश्रुति : शाट गाँव के गुंबल नामक स्थान में किसी व्यक्ति को खेत में निराई करते हुए एक मोहरा मिला। उसे घर लाकर परिवारवालों ने पूजना आरम्भ किया। कुछ समय बाद देव शक्ति ने एक सदस्य में प्रवेश कर बताया कि वह गौतम ऋषि है और उस स्थान पर रहना चाहता है जहाँ वह प्रकट हुआ है। तब गुंबल में मंदिर का निर्माण कर इसे पूजा जाने लगा। स्थान के नाम पर इसे गुंबल देवता भी कहते हैं।

गौरी शंकर

गाँव : दशाल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : दशाल।

स्थापत्य : पत्थर को तराश कर बनाया गया यह मंदिर शिखर शैली का है। मंदिर में शिवलिंग स्थापित है। दीवारों पर नंदी पर आसीन शिव पार्वती, देवी-देवताओं और नर्तकियों की आकृतियाँ उकेरी गई हैं। प्रवेश द्वार पर गंगा और यमुना का चित्रण हुआ है।

अधिकार क्षेत्र : दशाल।

प्रबंध : भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : नहीं है।

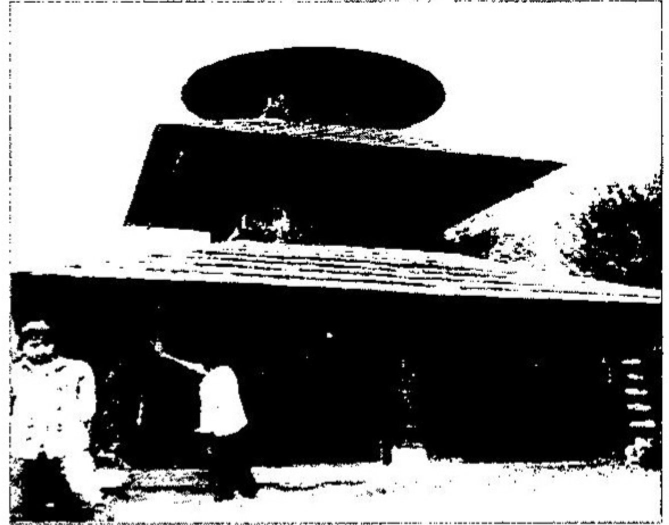
जनश्रुति : पांडव अज्ञातवास के दौरान जब इस क्षेत्र में आए तो उन्होंने इस मंदिर का निर्माण किया।



गौहरी देऊ : वीरनाथ

गाँव : जनाहल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : गाँव थाच माशण।



मंदिर : जनाहल।

भंडार : जनाहल गाँव में भंडारी के घर में।

स्थापत्य : पहाड़ी शैली में बने प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्ष 2005 में पैगोड़ा शैली के मंदिर का निर्माण किया गया है।

शाखा मंदिर : गाँव खोखण।

अधिकार क्षेत्र : शिलीराजगिरी पंचायत का राजगिरी क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, गूर, कठियाला, बांठ की समिति।

न्याय प्रणाली : 'लड्डू, मलोही' तथा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल संक्रांति और इसके बाद प्रथम आनेवाले वीरवार अथवा रविवार को प्रातः पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त मेलों के अवसर पर जब रथ सजा होता है तो प्रातः-सायं पारम्परिक तरीके से रथ की पूजा होती है।

रथ : फेटा, जिसके अग्रभाग में रजत निर्मित नौ मोहरे सज्जित होते हैं। मुख्य मोहरा रथ की गोदी में लगता है।

मोहरे : देवता का एक मुख्य मोहरा है, शेष नौ मोहरे

गौहरी देऊ और नारायण देवता गाँव जनाहल के साझे हैं।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में शाहनु जाच, जिसमें देव रथ गाँव खोखण में देवता आदि ब्रह्मा के मंदिर में जाता है। वहाँ मेला लगता है। देवता दशहरे में भी शामिल होता है। दशहरे के बाद गाँव जनाहल में माला जात्र होती है। इसमें देवता की 'हार' के लोग देवता को घर-घर बुलाकर उसकी पूजा करते हैं।

जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच, तहसील कुल्लू।

विशेष : गौहरी देऊ को खोखण कोठी के मालिक आदि ब्रह्मा का प्रहरी माना जाता है।

गौहरी देऊ

गाँव : ढालपुर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : थाच।



मंदिर एवं भंडार : ढालपुर।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िला प्राचीन मंदिर के स्थान पर सन् 1986-87 में शिखर शैली के मंदिर का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : कुल्लू शहर।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी की समिति।

पूजा : पंचोपचार विधि से प्रतिदिन प्रातः-सायं।

रथ : करड़ू रथ जिसे सिर पर उठाया जाता है।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति को बैशाखी, आश्विन मास की संक्रांति को सैर साजा, पहले 16 बैसाख को एक दिवसीय पीपल जात्र लगती थी अब 28 अप्रैल से 30 अप्रैल तक बसंत उत्सव के नाम से मेला लगता है।

जनश्रुति : दे. गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच की जनश्रुति। उक्त जनश्रुति के अनुसार थाच में वीरनाथ की हत्या होने के उपरान्त उसे देवत्व प्राप्त हुआ और वह गौहरी देऊ के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। एक बार राजा मानसिंह जब मण्डी के राजा के साथ युद्ध करने के लिए यहाँ से गुज़र रहा था तो उसके घोड़े की लात से गौहरी देवता का डेहरा क्षतिग्रस्त हो गया, जिसके दोष से घोड़ा लंगड़ा हो गया। तब राजा ने देवता से घोड़े की रक्षा के लिए प्रार्थना की तो घोड़ा ठीक हो गया। महल में आकर राजा ने यह घटना रानी को सुनाई। रानी ने देवता की शक्ति से प्रभावित होकर राजा से कहा कि गौहरी देऊ का मंदिर सुलतानपुर के राजमहल के सामने ऐसी जगह बनाएँ जहाँ से प्रातः उठते ही वह देवता के दर्शन कर सके। तब राजा ने राजमहल के सामने ढालपुर में देवता का मंदिर बनवाया।

गौहरी देऊ : वीरनाथ

गाँव : थाच, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : थाच।

स्थापत्य : पुराने मं[illegible] के स्थान पर सन् 2000 में काष्ठ व प्रस्तर से साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर बनाया गया है, जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। मंदिर के साथ 'सौह' है और सौह में गौहरी देऊ (वीरु) की बहन तिलू माता की डेहरी (छोटा देवघर) है।

शाखा मंदिर : बड़ाग्राँ, ढालपुर, हुरला, थरास।

अधिकार क्षेत्र : माशण पंचायत के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।



पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। मेले-त्योहारों आदि के अवसर पर जब देवरथ सजा होता है तो 'घोंडी-धड़छ' द्वारा पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : भेखल का बना जिसे एक व्यक्ति सिर पर उठाता है।

मोहरे : पाँच। मुख्य मोहरा अष्टधातु का, तीन चाँदी के और एक पीतल का। रजत निर्मित बड़ा तथा स्वर्ण निर्मित एक छोटा छत्र है। रथ में चाँदी का छत्र नीचे और सोने का छत्र ऊपर सजाया जाता है।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति को *जेठा बिरशू* होता है जिसमें देवता का रथ निकालकर सौह में मेला आयोजित किया जाता है। आश्विन मास की संक्रांति को *शौयरी*, चैत्र मास की संक्रांति को *बिरशू* होता है। इस दिन रथ नहीं निकलता। देवता की कोंडी जिसमें धूप, 'शेष' के चावल, गूर की टोपी, 'छोदा' का थाल व शंख रखा होता है, को लेकर पज़ियारा तिलू माता की डेहरी में जाता है। वहाँ छोदा, पूछ, मटमान (मन्नत) आदि सभी देवकार्य होते हैं और *भौती* (भोज) दी जाती है।

जनश्रुति : किसी समय गुरु गोरखनाथ का एक शिष्य वीरू अपनी बहन तिलू के साथ तपस्या के लिए पहाड़ों में निकल पड़ा। उनके साथ कोंढी नाम की कुतिया भी थी। ये दोनों भाई-बहन अनेक स्थानों में जाकर ब्रह्मा की पूजा करते रहे। वीरू ने ब्रह्मा की भक्ति से अनेक शक्तियाँ प्राप्त कीं। घूमते-घूमते एक बार वे कुल्लू के बजौरा में हाट नामक स्थान पर पहुँचे और वहीं रहने लगे। तिलू प्रायः अपने डेरे में ही रहती थी और वीरू अपनी कुतिया के साथ भिक्षा के लिए इधर-उधर जाता था। वीरू के हाथ में गहरी (बाँस की एक प्रजाति) की लाठी रहती थी, जिसमें उसने घुँघरू डाल रखे थे। चलते हुए इसमें छुनक-छुनक की ध्वनि होती थी। वीरू भ्रमण करते हुए एक बार थाच गाँव में पहुँचा। वहाँ के लोगों को भ्रम हुआ कि वीरू ने लाठी में अपनी दौलत छुपा रखी है। तब दो भाइयों धूड़ू गाणिया और तर गाणिया, जो वहाँ के बड़े ज़मींदार थे, उन्होंने उसे मारने की योजना बनाई। लेकिन मारने के बाद जब उन्हें उसकी लाठी में कुछ नहीं मिला तो उन्होंने उसकी लाश को गड्ढे में दबा दिया। यह देखकर उसकी कोंढी कुतिया भागती हुई तिलू के पास गई और उसे लेकर उस स्थान पर आई, जहाँ वीरू को दबाया गया था। कुतिया ने जब मिट्टी कुरेदी तो गड्ढे में अपने भाई की लाश को देखकर तिलू ने शाप दिया-

मेरे भाईएँ खोईरा गुआईरा होला ता नारा धोखा
एंडाएँ मारू होला ता तूसा लोड़ी चाउल़ बोणै
ये लोड़ी कुक्कड़ बोणै, तूसा लोड़ी चुंगी चुंगीएँ खाएँ

अर्थात् मेरे भाई ने कुछ बुरा किया होगा तो कोई बात नहीं और यदि उसे बिना कारण के मारा गया होगा तो तुम चावल बन जाओ और मेरा भाई मुर्गा बनकर तुम्हें चुग-चुग कर खाए। अर्थात् मेरा भाई देवत्व को प्राप्त हो और तुमसे बदला ले।

उसके शाप से कुछ ही समय बाद धूड़ू और तर गाणिया में से एक को कुष्ठ रोग हो गया। तब उन्होंने इसे जीवहत्या का दोष जानकर प्रायश्चित्त के लिए वीरू का एक डेहरा (देवघर) बनाया और उसकी पूजा-अर्चना आरंभ कर दी, जिससे उसका रोग ठीक हो गया।

इसके कुछ दिनों बाद राजा मान सिंह मण्डी के राजा के साथ युद्ध करने के लिए यहाँ से गुज़र रहा था तो उसने एक रात यहाँ विश्राम किया और अपने घोड़ों शालटू-मालटू को चरने के लिए खुला छोड़ दिया। चरते-चरते घोड़े की लात से यह डेहरा क्षतिग्रस्त हो गया, जिसके दोष से घोड़ा लंगड़ा हो गया। राजा को चिंता हुई कि वह आगे कैसे जाएगा। उसने धूड़ू गाणिया और तर गाणिया से

इसका हल पूछा। वे कालंग गाँव के नांढू गूर के पास पूछ डालने गए। उसने शाई देखकर (सरसों के दानों से गणना कर) बताया कि यह वीरू देवता का दोष है, अतः राजा को बताएँ कि वह देवता से क्षमा माँगे। तब राजा ने देवता से प्रार्थना की कि यदि उसका घोड़ा ठीक हो जाए और वह युद्ध जीत जाए तो वह यहाँ मोहरा भेंट करेगा। देव कृपा से वैसा ही हुआ। तब थाच गाँव में वीरू, जिसे गहर की लाठी हाथ में होने से गौहरी कहा गया, उसका मंदिर बनाया गया और राजा ने अष्टधातु का एक मोहरा और रथ यहाँ अर्पित किया। इसके बाद गौहरी देवता प्रजा की भलाई के लिए अनेक स्थानों पर प्रकट हुआ और स्थानीय लोगों का आराध्य बना।

गौहरी देऊ : वीरनाथ

गाँव : बड़ाग्राँ, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : थाच।
मंदिर एवं भंडार : बड़ाग्राँ।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा द्विछतीय मंदिर स्लेटों से ढका है। दोनों छतें चारों ओर को ढलानदार हैं। ऊपरी छत के मध्य में पीतल



के तीन कलश सुशोभित हैं। मंदिर की दो मंज़िलें मात्र खड़ी दीवारें हैं और तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है, जो नीचे से लकड़ी के तख्तों और ऊपर लोहे की जाली से बंद है। मंदिर की दो मंज़िलों में कोई खिड़की नहीं है, केवल छोटी तीरियाँ (बिना शीशे की तख्ते वाली छोटी खिड़की) हैं। दूसरी मंज़िल में रात को पहरे के लिए भंडारी रहता है। तीसरी मंज़िल में शाल्ह (छोटा कमरा) है, जिसका द्वार पश्चिम की ओर है। शाल्ह के अंदर लकड़ी के बक्से में देवता के मोहरे, वस्त्र, गहने आदि कीमती सामान रहता है और उसके बाहर बैठक में देवता का करडू रखने के लिए स्थान बना है। कुछ वर्ष पूर्व ही मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ है, जिसमें धरातल मंज़िल में नीचे से पत्थर और ऊपर लोहे की सलाखों से बंद बरामदा बनाया गया है। इसकी गोल छत लकड़ी से ढकी है तथा प्रवेश-द्वार भी लोहे का बना है।
शाखा मंदिर : टिकरी सौह गाँव से लगभग एक किलोमीटर दूर। यहाँ डेढ़ मंज़िल का डेहरा (देवघर) है। इसमें देवता का 'पिंडा' है, यह मंदिर खाली रहता है। केवल मेले के दिन ही देवता इसमें विराजता है।
अधिकार क्षेत्र : बड़ाग्राँ, घलियाणा, मथाल और पलालंग।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : पूछ डालकर, 'पोगले' द्वारा तथा गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, केवल मेले-त्योहार आदि विशेष अवसरों पर ही पज़ियारा 'घोंडी-धड़छ' से पारम्परिक पूजा करता है।
रथ : नहीं है। इसके स्थान पर नगाल (बाँस की एक प्रजाति) का बना करंडू है, जिसमें मोहरे और छत्र आदि सजाए जाते हैं।
मोहरे : दो। एक अष्टधातु का और दूसरा रजत निर्मित। इसके अलावा चाँदी का छत्र।
मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को दो दिवसीय मेला होता है। पहले दिन *जेठा बिरशू* और दूसरे दिन *खौल जाच* नाम से इसे आयोजित किया जाता है।

बैसाख की संक्रांति को *कोन्हा बिरशू,* आश्विन की संक्रांति को *शोयरी जाच* जो दो दिन होती है। श्रावण मास में *भल्याणी काहिका* होता है।

जनश्रुति : किसी समय बड़ाग्राँ का डुमणू पजिया नामक व्यक्ति पौजम स्थान पर खेत में हल चला रहा था। उसे हल की सीता में अष्टधातु का एक मोहरा मिला। उसने मोहरा अपनी पत्नी को देते हुए कहा कि इसे घर छोड़कर दोपहर का खाना लेकर खेत में आ जाए। उसकी पत्नी ने घर पहुँचकर जब मोहरा कोठड़ (लकड़ी का संदूक) के पीछे रखा तो कुछ समय बाद वह कोठड़ के ऊपर आ गया। उसने वह पुनः कोठड़ के पीछे रखा, लेकिन वह दोबारा ऊपर आ गया। ऐसा कई बार हुआ। तब उसने इसे गौड़गू (मिट्टी का घड़ा) में डाल कर ऊपर से उसका मुँह लीप कर बंद कर दिया। इस तरह उसे दोपहर का खाना खेत में ले जाने के लिए देर हो गई। जब उसके पति ने देरी का कारण पूछा तो उसने मोहरे की घटना सुना दी। शाम को घर पहुँचकर डुमणू ने कहा कि वह उसे तब देवता मानेगा जब वह अगले दिन घराट में पीसने के लिए ले जाए जा रहे एक बोरी अन्न को दोगुना कर देगा, अन्यथा वह उसे अपने घर के आगे स्थित भोंग (भाँग) की क्यारी में फेंक देगा। देवता ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वह घराट के रास्ते में गोमूत्र का छिड़काव करते हुए जाए। डुमणू ने वैसा ही किया और देवकृपा से उसका अन्न दोगुना हो गया। डुमणू के कोई संतान नहीं थी, उसके संतान भी हो गई। उन्हीं दिनों बड़ाग्राँ के निकट एक भयानक राक्षसी ने लोगों को तंग करना शुरू किया था। गौहरी देऊ ने उसका संहार करके लोगों को भयमुक्त किया। इन सब चमत्कारों से प्रभावित होकर गाँववासियों ने मंदिर का निर्माण कर देवता को पूजना आरम्भ किया। वीरू नाम के कारण इसे *वीरूनाथ,* हाथ में गहर की लाठी होने के कारण *गौहरी देऊ* और गौड़गू (मिट्टी का घड़ा) में रखे जाने के कारण *गौड़गू देऊ* के नाम से भी जाना जाता है। (गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच की जनश्रुति भी देखें)।

गौहरी देऊ : वीरनाथ

गाँव : बारी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : थाच माशण।
मंदिर : बारी।
भंडार : बारी-तुनी।



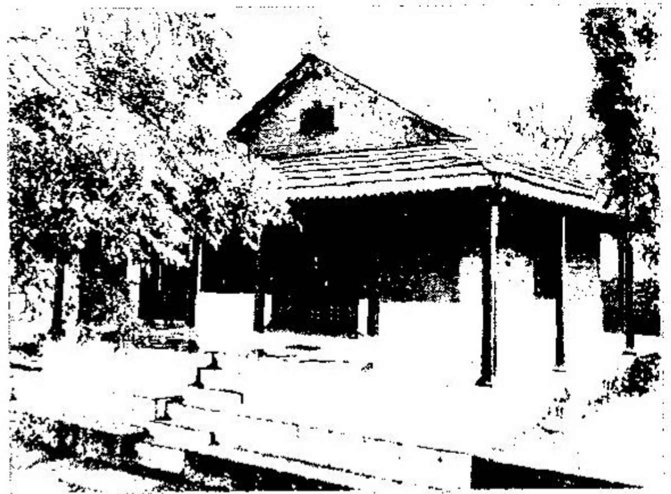
स्थापत्य : सीमेंट व लकड़ी से बना एक मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव किंजा, बारी, बारी-तुनी, तरांबली।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : गुग्गुल, बेठर धूप तथा दीपक जलाकर।
रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ।
मोहरे : तीन, परन्तु रथ पर केवल एक ही मोहरा लगाया जाता है।
मेले-त्योहार : आश्विन मास में *शौयरी मेला,* मार्गशीर्ष संक्रांति को हर वर्ष देवता अपनी 'हार' के दौरे पर जाता है और प्रजा के दुःखों का निवारण करता है। श्रावण और मार्गशीर्ष मास में यज्ञ का आयोजन किया जाता है।

जनश्रुति : पौराणिक कथानुसार दक्ष प्रजापति के यज्ञ में अपने पति भगवान् शिव का स्थान न देखकर सती ने कुपित होकर हवन कुंड में अपनी आहुति दे दी। जब भगवान् शिव को यह समाचार मिला तो क्रोधवश उन्होंने

अपनी जटा को उखाड़ा, जिससे वीरभद्र प्रकट हुआ। भगवान शिव के आदेश पर वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति के सिर को काटकर यज्ञ कुंड में डाल दिया तथा उसके स्थान पर एक बकरे का सिर लगा दिया। यही वीरभद्र वीरनाथ कहलाया जो कुल्लू में गौहरी देवता के नाम से जाना जाता है। गाँव बारी में इसकी उत्पत्ति के सम्बंध में जनश्रुति है कि इस क्षेत्र में बरियाल राणाओं का आधिपत्य था। दैवी शक्ति से एक बार बारीगढ़ में सोने की ऐसी सलाख निकली, जिसे जितना काटते उतनी ही वह बढ़ जाती। इससे वे बड़े धनी और दंभी हो गए। एक दिन उन्हें गाँव में एक दुबला-पतला अजनबी बच्चा घूमता हुआ दिखाई दिया। राणाओं ने उसका परिचय पूछा। बच्चे ने कहा कि वह यहाँ का देवता है और बारीगढ़ पर उसका अधिकार है। यह सुनकर राणाओं ने उसका उपहास करते हुए कहा कि वह वहाँ से चला जाए अन्यथा वे उसे मुर्गे की भाँति मरोड़ देंगे। यह सुनकर बच्चे ने राणाओं से कहा कि जिस सोने की सलाख के कारण वे इतने अभिमानी हो गए हैं, वह भी उसी की दी हुई है। इतना कह कर उसने तुरंत एक मुर्गे का रूप धारण किया और उड़-उड़ कर सभी के सिर पर चोंच मारने लगा। यह देखकर उन्हें अपनी भूल का अहसास हुआ। उन्होंने उससे माफी माँगते हुए पूछा कि वह कौन-सी शक्ति है। तब उसने बताया कि वह वीरनाथ है और थाच-माशण से यहाँ आया है। लोगों ने बारी में उसके निमित्त मंदिर का निर्माण किया। देवता की यह विशेषता है कि इसका गूर आज भी बालक ही होता है।

गौहरी देऊ

गाँव : मंदरोल, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : मंदरोल।
भंडार : मंदिर परिसर की पूर्व दिशा में लगभग सौ मीटर की दूरी पर।
स्थापत्य : तराशे पत्थरों से पहाड़ी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत काष्ठ स्तंभों पर आधारित है।

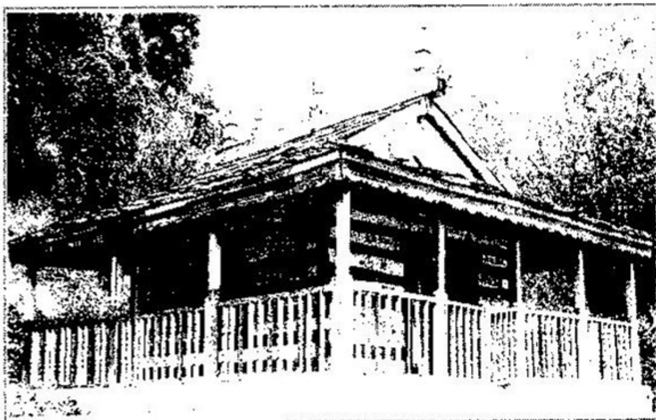


अधिकार क्षेत्र : मंदरोल, जोल्ह, जौला, काहला, नांगा बाग, बगुनाला, नेरामाटी, मटियाणा आदि गाँव।
प्रबंध : आठ सदस्यों की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन पूजा नहीं होती, केवल विशेष उत्सवों के अवसरों पर ही पूरे वाद्य-यंत्रों की ध्वनि के साथ पूजा-अर्चना की जाती है।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।
मोहरे : रजत निर्मित नौ।
मेले-त्योहार : भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी-नवमी को *ब्रौती जाच*। इस अवसर पर सभी वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ देवता की पूजा की जाती है। तत्पश्चात् देवता से पूछ डाली जाती है। मेले के दोनों दिन सायंकाल लगभग 7-8 बजे देवता का रथ साज-बाज, गूर तथा अपने प्रजाजनों के साथ 'हुलकी' में सम्मिलित होता है। हुलकी का यह दृश्य अद्भुत एवं रोमांचकारी होता है। देवता अपने मंदिर के चारों ओर अपनी 'सौह' में सात फेरे लगाता है। अपने सहायक देवी-देवता फुँगणी देवी और काली नाग को उनके सम्मान में 'नुआँस' देता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन देवता अपने गाँव के गिर्द परिक्रमा करता है। चैत्र मास की संक्रांति को जेठा बिरशू होता है।
जनश्रुति : मंदरोल गाँव के समीपस्थ नेरामाटी गाँव में धनी नामक कुम्हार रहता था। एक बार वह बर्तन बनाने के लिए एक स्थान पर मिट्टी खोद रहा था तो मिट्टी

निकालते हुए उसे एक छोटा-सा मोहरा मिला। उस देव-मोहरे ने किसी गूर के माध्यम से अपनी पहचान बाबा वीरनाथ गौहरी देऊ के रूप में प्रकट की और वर्तमान स्थान पर मंदिर बनाने के लिए गाँववालों को आदिष्ट किया। मंदरोल में गौहरी देऊ के प्रकट होने से पूर्व इस गाँव का इष्ट देवता काली नाग था। वहीं लोगों ने काली नाग के सहायक देवता के रूप में गौहरी देऊ की भी स्थापना कर दी और उसे पूजने लगे।

गौहरी देऊ : वीरनाथ

गाँव : व्यासर, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : गाँव थाच।
मंदिर : व्यासर।
भंडार : पहाड़ी शैली का ढाई मंज़िल का भवन, जिसमें देवता का भंडार है और इसी में भंडारी का परिवार भी रहता है।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का एक कक्षीय मंदिर, जिसके ऊपर टाला (आधी मंज़िल) है। इसकी स्लेटों से ढकी चौतरफा छत बरामदे के स्तंभों पर टिकी है। इस छत पर कैंची डाल कर टाले की दो ओर को ढलानदार छत पड़ी है जिस पर बदोर लगा है।
अधिकार क्षेत्र : केवल व्यासर गाँव।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।
पूजा : दैनिक पूजा का विधान है। मेले-त्योहारों के अवसर पर पारंपरिक तरीके से पूजा होती है।
रथ : करड़ू।
मोहरे : नहीं है। धड़छ, झंडे, रणसिंघा, नरकाल और प्राचीन शंख देव चिह्न हैं।
मेले-त्योहार : गाँव व्यासर में देवता वीरनाथ, कुंवरदान, माता पमेसरी और जोगिनी का स्थान है, अतः सभी मेले-त्योहार एक-दूसरे से जुड़े हैं। गौहरी देऊ का आश्विन मास की संक्रांति को चार दिवसीय शौयरी मेले का आयोजन होता है। इस मेले में देवता वीरनाथ के प्रतीक चिह्न तथा देवता कुंवरदान का रथ स्थानीय देवता कोकल के पास जाते हैं। यहाँ से वापिस आ कर दोनों देवता गाँव के अन्य देवताओं के साथ एक सामूहिक स्थान में बैठते हैं। दूसरे दिन साजा मनाया जाता है। तीसरे दिन व्यासर के आस-पास गाँवों के अन्य देवता-वीरनाथ रायसन, गौहरी देऊ मंदरोल, धुंबल नाग हलाण, थान देवता नांगचा, मड़ोगी नाग मड़ोगी, गौहरी देऊ शिकारीधार, बिजली महादेव मथाण, ज्वाला माता फोज़ल, भागासिद्ध डुघीलग, कालिया नाग शिरढ़ शामिल होते हैं। कालिया नाग हर वर्ष नहीं आता, लेकिन अन्य देवता नियमित रूप से भाग लेते हैं।

मार्गशीर्ष मास की पूर्णमासी को मुंघर पूर्णमाशी नाम से एक दिन का मेला लगता है। फाल्गुन मास के अंतिम दिन और चैत्रमास के प्रथम नवरात्र को फागली उत्सव का आयोजन होता है। इस दिन देऊ खेल के माध्यम से आसुरी शक्तियों को गाँव से दूर भगा दिया जाता है।

पौष मास में देवता स्वर्ग लोक में इन्द्र देवता की सभा में शामिल होता है। वहाँ से वापिस आने पर एक दिन के लिए कापू मेले का आयोजन होता है।
जनश्रुति : दे. गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच की जनश्रुति।
विशेष : गाँव में सूतक व पातक के निवारण के लिए पूरे गाँव वासियों तथा हारियानों को सूर (कोदरा अन्न तथा अनेक जड़ी-बूटियों से तैयार नशीला पेय) पिलाई जाती है।

चमन ऋषि

गाँव : शिल्हा, **तहसील** : कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शिल्हा।

स्थापत्य : पहाड़ी शैली में निर्मित दो मंज़िल के पुराने मंदिर में दो वर्ष पूर्व आग लग जाने के कारण उसके स्थान पर नए मंदिर का निर्माण किया गया है। यह द्विछतीय मंदिर दो मंज़िल का है। इसमें लकड़ी पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : शिल्हा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, पुजारी तथा देवरथ द्वारा।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति, पंद्रह, बीस प्रविष्टे, पूर्णिमा तथा मेले-त्योहारों पर बेठर व चूड़ी धूप से पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : पाँच ज्येष्ठ को कापू साजा मनाया जाता है। इस दिन देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : शिल्हा गाँव का एक व्यक्ति अपने खेत में हल चला रहा था। अभी उसने आधा खेत ही जोता था कि हल की नोक के किसी वस्तु में फँस जाने के कारण बैल रुक गए। हल वाहक ने नोक पर से मिट्टी हटाई तो देखा कि उसमें एक मुखौटा अटका था। उसने मोहरे को हल से निकालकर घर पहुँचाया और माश की पेटी में रख दिया। अगली प्रातः उसने देखा कि माश पेटी से बाहर निकले हुए थे। उसने ढक्कन खोला तो पेटी माश से लबालब भरी थी। तभी देवता की शक्ति ने उस व्यक्ति में प्रवेश कर बताया कि वह च्यवन ऋषि है और उसे इसी स्थान पर रहना है। तब से देवता की शिल्हा में स्थापना हुई और बाद में मंदिर भी बनाया गया।

चामुंडा

गाँव : कसलादी, **तहसील** : कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कसलादी।



स्थापत्य : देशज शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसकी स्लेट युक्त ढलवाँ छत पर लगे बदोर पर लकड़ी के तीन कलश स्थापित हैं। मंदिर के द्वार के सामने की ओर लकड़ी की झालर लगी है। प्रवेशद्वार नौ फुट लम्बी दो चट्टानों से बना है।

अधिकार क्षेत्र : पीणी फाटी।

प्रबंध : देवी के कारकुनों-कठियाला, जठाली, गंठीदार, शकारू, कायथ, दरोगा, कढ़ाईदार तथा पालसरा की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, पोगले तथा मलोही माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः धूप-दीप से। संक्रांतियों, नए संवत् तथा पूर्णिमा के दिन पारम्परिक विधि से विशेष पूजा की जाती है।

रथ : अंगू नामक लकड़ी से बना फेटा रथ जिसे दो व्यक्ति अर्गलाओं की सहायता से उठाते हैं। इसके शीर्ष पर तथा गोदी में तीन-तीन रजत-छत्र लगते हैं।

मोहरे : बारह। एक अष्टधातु, एक स्वर्ण तथा दस रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : वैशाख संक्रांति को बिरशू मेला, मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को वीरपुजाई, फाल्गुन मास की एकादशी

तथा द्वादशी तिथि को फागली मनाई जाती है। इन सभी मेले-त्योहारों के अवसर पर श्रद्धालु चामुंडा, भागासिद्ध तथा जौड़ा नारायण इन तीनों देवताओं के समक्ष हाज़री भरते हैं क्योंकि हर पर्व में ये तीनों एक साथ विराजते हैं।

जनश्रुति : किसी समय कसलादी गाँव में अपने खेत में निराई करते हुए दुमसा खानदान के एक व्यक्ति की किलणी से कोई वस्तु टकराई। उसने सावधानी से उसे बाहर निकाला तो वह एक मोहरा था। देवता समझकर वह उसे अपने घर ले आया और उसकी पूजा करने लगा, जिससे उसके घर में सुख-समृद्धि आई। तब उसने मोहरे से पूछ डाली कि वह कौन है। मोहरे ने चामुंडा के रूप में अपना परिचय देते हुए कहा कि यदि वह इसी तरह पूजा करता रहे तो देवी उसकी हर कामना पूर्ण करेगी। उसकी समृद्धि देखकर गाँववासियों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने दुमसा से इसका कारण जानना चाहा तो उसने इसे माँ चामुंडा का चमत्कार बताया। तब गाँववाले भी देवी को मानने लगे और उन्होंने कालांतर में देवी के निमित्त मंदिर व रथ का निर्माण किया। देवी का पुजारी आज भी दुमसा खानदान से ही बनता है।

चामुंडा

गाँव : धारा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धारा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का प्राचीन मंदिर जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर बदोर लगा है। इसकी लकड़ी पर उत्कृष्ट नक्काशी हुई है।

शाखा मंदिर : तलाड़ी, सौहच, पब्बौ, सौहकली।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चतराणी, बलगाणी, गुरवेहड़, धारा, शाट, पब्बौ, तलाड़ी, सौहच, रतोचा, शौरन।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी आदि की पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : देव-रथ तथा गूर के माध्यम से।



पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।

रथ : फेटा।

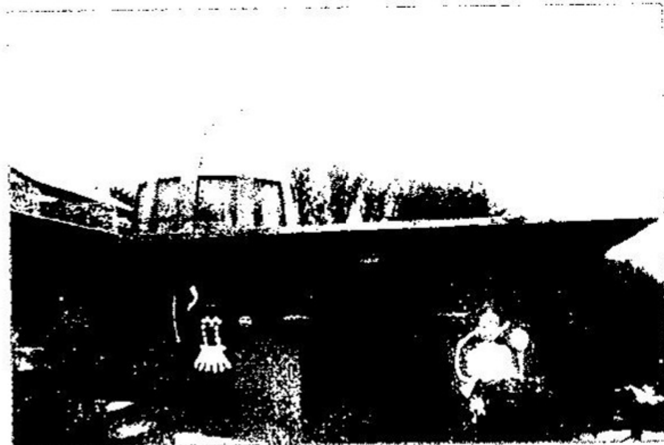
मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल द्वितीया को सौहकली मंदिर में देवी रथ के पास पुरोहित द्वारा पत्री सुनाई जाती है। प्रथम वैशाख को रथ का श्रृंगार करके दूसरे दिन रतोचा गाँव में लाया जाता है, जहाँ महिलाएँ देवी को धूप देती हैं। कन्याएँ देवी-रथ के गिर्द चरासा नृत्य करती हैं। चार दिन तक देवी की हार में यही प्रक्रिया निभाई जाती है। ज्येष्ठ मास की संक्रांति को देवी को जौ अर्पित किए जाते हैं, जिसे सलाहर देना कहते हैं। श्रावण संक्रांति से चार दिन तक देवी अपनी हार में धूप ग्रहण करने जाती है। हर तीसरे वर्ष तलाड़ी में काहिका का आयोजन होता है। कृष्ण जन्माष्टमी को ब्रौत तथा मार्गशीर्ष के दो प्रविष्टे को मोक्षर धूप का त्योहार मनाया जाता है।

जनश्रुति : गाँव चतराणी और धारा के मध्य स्थान मनाल में एक महिला को खेत में काम करते हुए एक मुखौटा मिला। उसे घर लाकर उसने अनाज के बक्से में रखा। प्रातः जब उसने बक्सा खोला तो अनाज के आधे भरे बक्से को पूरा पाया। इसी प्रकार उस मोहरे ने कई चमत्कार दिखाए और महिला को स्वप्न में बताया कि वह देवी चामुंडा है। तब धारा गाँव में देवी की स्थापना की गई।

चौंगा भगवती

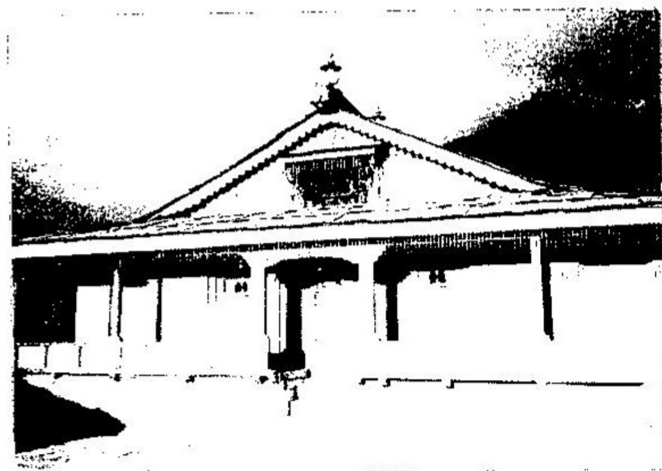
गाँव : बारीतुनी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : चौंग।
मंदिर : बारी।



स्थापत्य : छोटे से प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्ष 1999 में नए मंदिर का निर्माण किया गया, जो एक मंज़िल का तथा सीमेंट से आधुनिक शैली में बना है। मंदिर की समतल छत पर गर्भगृह के ऊपर शिखर बना है, जिस पर कलश स्थापित है। बाहरी दीवारों पर लाल रंग से पुताई की गई है। सामने की बाहरी दीवार पर महाकाली और हनुमानजी के चित्र बनाए गए हैं।
अधिकार क्षेत्र : बारी।
प्रबंध : मंदिर के पुजारी द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'पोगले' और 'मलोही' डाल कर।
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : फेटा, जो देवी के मूल स्थान चौंग में रहता है।
मोहरे : एक।
मेले-त्योहार : श्रावण और माघ मास में *यज्ञ* का आयोजन।
जनश्रुति : चौंगा भगवती को माँ पार्वती का रूप माना जाता है। देवी की स्थापना कुल्लू ज़िला के कई गाँवों में है। गाँव बारी-तुनी में यह देवी बिजली महादेव के जोगी के साथ आई; जो आलज गाँव का रहनेवाला था। वह देवी का परम भक्त था तथा देवी और बिजली महादेव के मूल मंदिर में आयोजित मेले-त्योहारों के अवसर पर वहाँ फूल देने जाया करता था। एक बार उसने बारी-तुनी में भूमि खरीदी और वहाँ मकान बनाकर उसकी पूर्व दिशा में देवी के लिए एक छोटे से मंदिर का निर्माण किया और पूरी आस्था के साथ देवी की पूजा करता रहा। इससे प्रसन्न होकर देवी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सदा उसकी सहायता करती रही। देवी के चमत्कारों से प्रभावित होकर कुछ वर्ष बाद जोगी के परिवारवालों ने उसकी आज्ञा से गाँव में बड़ा मंदिर बनवाया। आज भी वहाँ पूजा का कार्य जोगी ही करते हैं।

चौंगासन

गाँव : चौंग, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : चौंग।
स्थापत्य : पहाड़ी शैली में निर्मित, स्लेटों से आच्छादित छत वाले डेढ़ मंज़िल के मंदिर का कुछ वर्ष पूर्व जीर्णोद्धार किया गया है। मंदिर में काष्ठ पर सुंदर नक्काशी हुई है।
अधिकार क्षेत्र : केवल चौंग।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।
मोहरे : बारह।



मेले-त्योहार : 3 बैसाख को बिरशू तथा ज्येष्ठ मास की संक्रांति को सौरा नाहुली उत्सव मनाया जाता है। देवी के आदेश से कभी-कभी काहिका होता है। भादों मास में कृष्ण जन्माष्टमी को जागरण होता है। फाल्गुन मास की संक्रांति को पूछ होती है तथा गूर भारथा सुनाता है।

जनश्रुति : चौंग गाँव के एक फलाहरी (देवता को चंवर डुलाने वाला व्यक्ति) के चार बेटे थे। एक बार वे सभी धाउणी नामक स्थान में ज़मीन खोद रहे थे। दोपहर में अपने भोजन के लिए उन्होंने एक पत्थर पर सत्तू घोले। वे यह देख कर आश्चर्यचकित हुए कि घोलते ही एक सेर सत्तू के चार सेर सत्तू बन गए। इसे पत्थर का करिश्मा समझ कर वे उसे बारी-बारी से अपनी पीठ पर उठाकर घर की ओर चल पड़े। जरवाहण नामक स्थान में दोंदू बाजी के रोपे (धान के खेत) में पहुँच कर उन्होंने विश्राम करने के लिए पत्थर नीचे रख दिया। थोड़ी देर के बाद जब आगे चलने के लिए वे पत्थर को उठाने लगे तो वह उनसे नहीं उठाया गया। उसे वहीं छोड़ कर वे घर चले गए। कुछ समय बाद बढ़ई की एक लड़की को गाँव में एक प्रतिमा मिली, जिसने उसे बताया कि वह एक देवी है, जिसे फलाहरी ने जरवाहण में छोड़ा है। देवी ने आदेश दिया कि उसकी स्थापना गाँव में की जाए। तब लोगों ने चौंग गाँव में मंदिर व रथ का निर्माण किया और देवी गाँव के नाम पर चौंगासन (चौंग में जिसका आसन है) के नाम से प्रसिद्ध हुई।

छमाहणी नारायण

गाँव : छमाहण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : छमाहण।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर का काठकुणी विधि से देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर की दक्षिण-पश्चिमी दिशा की ओर तीन मंज़िल का भंडार है, जिसमें देवता के रथ-मोहरे व अन्य सामान रखा जाता है।



अधिकार क्षेत्र : फाटी कशावरी, गाँव दणोगी, शाहण, छमाहण, छाशणी।

प्रबंध : देवता के कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : बेठर व गुग्गुल धूप से प्रातः-सायं।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिसके अग्रभाग में मोहरे सजाए जाते हैं।

मोहरे : अठारह मोहरे, तीन कलगियाँ तथा एक गलपट्टा। सभी रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास में देवता फूलों पर विराजता है, और कुजा नामक झाड़ी के श्वेत पुष्प विशेष रूप से देवता को चढ़ाए जाते हैं। इस अवसर पर यदि कोई भी देवता मंदिर में आए तो छमाहणी नारायण बाहर नहीं आता, परन्तु यदि देवी पड़ेई भगवती आए तो देवता का रथ स्वागत हेतु बाहर निकलता है। श्रद्धालु दूर-दूर से देवता के दर्शन के लिए आते हैं।

जनश्रुति : किसी समय दणोगी गाँव के राणा की कन्या को एक दिन खेलते हुए कोई चमकती हुई वस्तु दिखाई दी। वह उसके समीप पहुँची तो उसे वहाँ एक मोहरा मिला। जैसे ही उसने मोहरे को उठाया, आकाशवाणी हुई कि वह नारायण है। उस कन्या की भगवान् में बड़ी आस्था थी। अतः मोहरे को घर लाकर वह नित्य उसकी पूजा करने लगी। राणा को जब इस बात का पता चला कि उसकी कन्या किसी मूर्ति की पूजा करती है तो वह उसके पास गया और उससे पूछताछ की। कन्या ने सारी

बात उसे बताई। राणा के मन में देवता की परीक्षा लेने का विचार आया। वह अभी सोच ही रहा था कि उस मोहरे में से एक नाग प्रकट हुआ। राणा ने अपनी लड़की से कहा कि वह अपनी तलवार से सात बार नाग पर प्रहार करेगा। यदि ऐसा करने पर रक्त के बजाए दूध निकलेगा तो वह देवता की शक्ति को मानेगा। जैसे ही राणा ने उस पर तलवार से प्रहार किए, दूध की धाराएँ बहने लगीं। तब उसे विश्वास हो गया कि वास्तव में यह दिव्य मोहरा भगवान नारायण का है। राणा के अधीन जितने भी गाँव थे, उन सब में इस बात की चर्चा हुई और सब ने देवता को मानना शुरू किया। बाद में देवता की हार ने आपस में बातचीत करके गाँव छमाहण में देवता की सहमति से मंदिर व भंडार बनाया क्योंकि वह सारी हार का केन्द्र स्थान है।

जगथम

गाँव : बरशैणी, **तहसील** : कुल्लू।



मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बरशैणी।
स्थापत्य : पहाड़ी शैली के पुरातन मंदिर के स्थान पर 10 वर्ष पूर्व पार्वती पनबिजली परियोजना द्वारा कोट शैली में ढाई मंज़िल के मंदिर का निर्माण किया गया है।
शाखा मंदिर : बागी कशाड़ी।
अधिकार क्षेत्र : बरशैणी।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।
न्याय प्रणाली : रथ के माध्यम से, पुजारी द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातःसायं जड़ी धूप से।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।
मोहरे : दस।
मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास में दो दिन तक मक्षर धूप मनाया जाता है। इसमें देवता को घाटी के सभी लोग धूप देते हैं।
जनश्रुति : जगथम को घेपन और जमदग्नि का छोटा भाई माना जाता है। किसी समय ये तीनों स्पीति से घूमने के लिए निकले। सर्वप्रथम वे हँसा गाँव पहुँचे। कुछ दिन वहाँ विश्राम करने के बाद वे कुंजोम होते हुए हामटा और फिर चंद्रखणी पहुँचे। चंद्रखणी से घेपन लाहुल चला गया। जमदग्नि मलाणा आया और जगथम ने बरशैणी को अपना स्थान चुना। एक दिन वहाँ के किसी व्यक्ति को स्वप्न में देवता ने बताया कि वह जनकल्याण हेतु बरशैणी आया है। उसने प्रातः यह स्वप्न अन्य लोगों को बताया तो सबने आपसी विचार-विमर्श के बाद गाँव में देवता की स्थापना की और उसे पूजने लगे।

जमलू

गाँव : टिपरी, **तहसील** : कुल्लू।
मूल स्थान : मलाणा का हामटा नामक स्थान।
मंदिर एवं भंडार : टिपरी।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर तथा गारे से निर्मित देशज शैली का एक मंज़िल का मंदिर जिसकी तीन छतें चारों ओर को ढलान लिए हुए हैं। छतों के चारों ओर झालरें लगी हैं और ऊपर स्लेटें आच्छादित हैं। इसके समीप देवता का थड़ा है। मंदिर से पूर्व दिशा की ओर देवी महामाई तथा योगिनी का स्थान है।
अधिकार क्षेत्र : पूरा कुल्लू ज़िला।



शाखा मंदिर : बारह देऊघरे-हामटा, जगतसुख-भनारा, बड़ागढ़-बड़ाग्राँ, धारा, छानी, करज़ां, सोईल, पोलंग शौरन, रूमसू, जाणा, देव डोभी, टिपरी-मलाणा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : देवता से पूछ डालकर, मलोही, पोगले विधि से।

पूजा : प्रतिदिन बेठर व गुग्गुल धूप से। मेले-त्योहारों के अवसर पर विशेष पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ जो 1976 में गूर खानदान के लेसराम नेगी ने मलाणा में कार्य करते हुए बनाया था। यही रथ अब टिपरी गाँव में है। इसके शिखर पर छत्र शोभित है।

मोहरे : आठ। एक अष्टधातु का तथा सात चाँदी के।

मेले-त्योहार : जमलू देवता के सभी देऊघरों में एक जैसे त्योहार मनाए जाते हैं। टिपरी में दो फागली त्योहारों का आयोजन होता है। एक आमला एकादशी के दिन तथा दूसरा नए संवत् के प्रथम वीरवार को। आमला एकादशी के दिन देवता के सभी चिह्न खंडा, कटार, धड़छ, घंटी, सांकल, आरी आदि देवता के थड़े पर रखे जाते हैं और साथ वाले दूसरे थड़े पर गूर बैठकर लोगों की पूछ का उत्तर देता है। प्रथम फागली संन्यासी मानी जाती है और दूसरी महामाई की। भादों की संक्रांति को देवता के जन्मदिवस का आयोजन, जो पाँच दिन तक चलता है और लोग देवता के साथ-साथ दिशा पूजन, योगिनी और महामाई की पूजा भी करते हैं। मार्गशीर्ष के तीन प्रविष्टे को देवता सौह में निकलता है और पाँच प्रविष्टे तक मेला लगता है। लोग देवता को धूप देते हैं।

जनश्रुति : कदाचित् जमलू देवता ने घूमते हुए टिपरी गाँव को अपनी तपःस्थली बनाया क्योंकि तब वह एकांत स्थान था और वहाँ कोई बस्ती न थी। तदुपरांत परशुराम ने कुल्लू के धरमौर, टिपरी, जलूग्राँ, चन्सारी और जगतसुख में पाँच ब्राह्मण परिवारों को बसाया जो वहाँ महामाई और जमलू की पूजा करते रहे। कालांतर में देवता सराज घाटी का भ्रमण करने के उपरांत पुनः टिपरी आया और एक शिला पर बैठ गया। उसके बैठते ही मधुमक्खियों का गण समीप ही एक पत्थर के नीचे आ बैठा। गण को देखकर गाँववाले बहुत खुश हुए। इसी बीच किसी व्यक्ति को खेल आई और उसने देवता के वहाँ आने की बात कह कर बताया कि प्रातः होने से पूर्व जितने क्षेत्र में मकड़ी जाला बनाएगी, वही देवता का स्थान होगा। अगले दिन जिस स्थान पर जाला बना था वहीं जमलू देवता का मंदिर और थड़ा बनाया गया। मधुमक्खियों के रूप में साथ आई योगिनी और महामाई जिस पत्थर के नीचे बैठी थीं, वह आज भी वहाँ विद्यमान है।

जमलू

गाँव : तलाईटी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : मलाणा।

मंदिर : तलाईटी।

स्थापत्य : सीमेंट व काष्ठ से नया बना एक मंज़िल का मंदिर।

शाखा मंदिर : बारह देऊघरे (देवगृह)।

अधिकार क्षेत्र : ज़िला कुल्लू की खराहल फाटी।

प्रबंध : पुजारी द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'पोगले' और 'मलोही' डाल कर।

पूजा : प्रतिदिन बेठर और गुग्गुल धूप से।

रथ : करड़ू।



मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : भाद्रपद मास की संक्रांति को देवता के निमित्त मेला लगता है। इस दिन प्रातः विधि-विधान से पूजा करने के उपरांत देवता को करड़ू में बैठाकर मंदिर से कुछ दूर मेला-स्थल पर लाया जाता है। जमलू देवता को चर्मरोगों को दूर करनेवाला माना जाता है। श्रद्धालुओं की मन्नतें पूरी होने पर वे देवता के पास चाँदी के घोड़े चढ़ाते हैं क्योंकि देवता का प्रतीक चिह्न घोड़ा माना जाता है।

जनश्रुति : किसी समय चंसारी गाँव के होछू नामक व्यक्ति की तीन पत्नियाँ थीं। उनमें से दो पत्नियाँ दलव्याणी खानदान से लाई गई थीं और एक पत्नी मणिकर्ण घाटी में स्थित धरमौर गाँव से थी। तीन पत्नियाँ होने के बावजूद उसकी कोई संतान नहीं थी। एक बार उसका धरमौर गाँववाला ससुर जमलू देवता की शुद्धि के लिए पाठ करने मलाणा जा रहा था। वह भी अपने ससुर के साथ मलाणा चला गया। वहाँ पाठ करने के बाद देवता के कारदार ने पहले ससुर को दक्षिणा दी और जब दामाद को दक्षिणा देने लगा तो जठाली को देव-खेल आई। उसने कहा, 'मैं तुझे दक्षिणा के साथ पुत्र प्राप्ति का वर भी देता हूँ।'

देव कृपा से एक वर्ष के भीतर उसके घर पुत्र उत्पन्न हुआ। तब से वह प्रतिवर्ष श्रावणी मेले में पैदल मलाणा आने लगा। ऐसा वह लगातार 85 वर्ष की आयु तक करता रहा। बुढ़ापे के कारण फिर उसे इतनी लम्बी यात्रा पैदल करना कठिन हो गया। तब उसने एक बार जमलू देवता से क्षमा माँगते हुए कहा कि वह अब नहीं आ सकेगा। अतः जब उसका बेटा बड़ा होकर चल कर आने योग्य होगा तो वही यहाँ आएगा। उसी समय गूर को देवखेल आई और बोला-तुम्हें आने की आवश्यकता नहीं, मैं ही तुम्हारे पास आता हूँ।' होछू ने गूर के आगे पल्ला फैलाया तो गूर ने 'जेठी और कोन्ही घंटी' उसके पल्ले में डाल दी। देवता को प्रणाम करके उसने घर की ओर प्रस्थान किया और चंसारी गाँव में पहुँच कर जमलू देवता की स्थापना कर उसे अपना कुल देवता माना। बाद में यह परिवार खूब फला-फूला और इनमें से एक परिवार तलाईटी गाँव में जा बसा। इस परिवार ने वहाँ अपने कुलज की स्थापना कर बाद में मंदिर का निर्माण किया। अपने चमत्कारों के कारण देवता क्षेत्र के अन्य लोगों द्वारा भी पूजा जाता है।

जमलू

गाँव : तोस, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : मलाणा।

मंदिर एवं भंडार : तोस।

स्थापत्य : काठ-कुणी विधि का काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का पुरातन मंदिर। इसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है। शिखर पर बदोर स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : तोस।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, छठाली और बारी की समिति।

न्याय प्रणाली : देव-रथ से, गूर द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ।

मोहरे : आठ।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष के चार प्रविष्टे को शौयरी जाच मनाई जाती है, जिसमें देवता गाँव के प्रत्येक घर में जाकर धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : किसी समय तोस गाँव का एक पुहाल अपनी

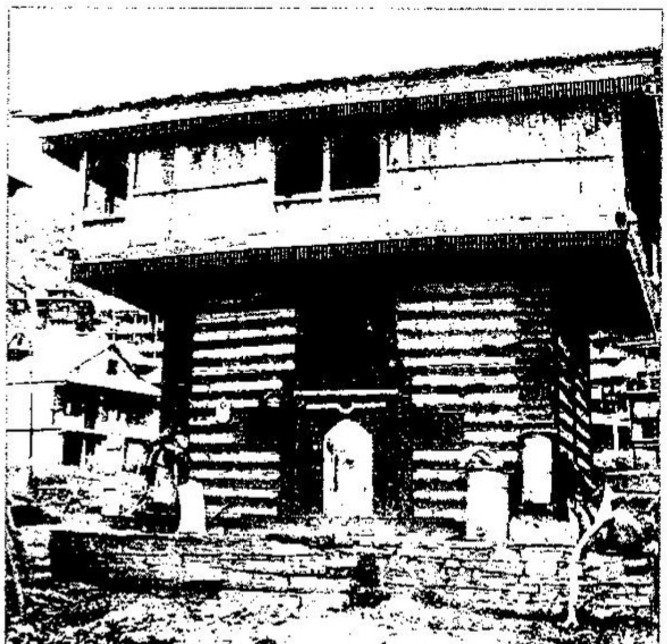
भेड़-बकरियों को चराने के लिए मलाणा के चरागाहों में ले गया। सर्दियों में वहाँ से लौटते समय वह अपने साथ तोस वृक्ष की एक लकड़ी भी ले आया। गाँव आकर उसने वह लकड़ी घर में रखी तो लकड़ी स्वतः बोल पड़ी कि वह जमलू देवता है और तोस में ही बसना चाहता है। यह बात उसने गाँववालों को बताई, तो उन्होंने उसे देवता जमलू मानकर पूजना आरम्भ किया।

जमलू

गाँव : दरपोइण, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : मौढ़ाबाड़ी।
मंदिर : दरपोइण।
भंडार : गाँव चकनाणी में काठकुणी शैली में बना तीन मंज़िला भवन।
स्थापत्य : वर्ष 1988 में पैगोड़ा शैली में निर्मित मंदिर एक पहाड़ी पर स्थित है।
अधिकार क्षेत्र : पीज़ तथा शिल्हानाला पंचायत के सभी गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, गूर, कठियाला, बांठ, पालसरा, नंबरदार की समिति।
न्याय प्रणाली : रथ द्वारा। रथ को उठाने के बाद प्रश्न पूछने पर यह हाँ या नहीं का उत्तर देता है।
पूजा : केवल विशेष अवसरों पर।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ।
मोहरे : नौ। मुख्य मोहरा वर्ष 2008 से पूर्व रजत निर्मित था। अब इसे सोने का बनाया गया है। यह रथ की गोदी में लगता है।
मेले-त्योहार : श्रावण मास के प्रथम सप्ताह के वीरवार या रविवार को शाऊणी जाच, फाल्गुन मास में फागली, मार्गशीर्ष में मौक्खशरा रा उच्छ्व मनाया जाता है।
जनश्रुति : मौढ़ाबाड़ी नामक स्थान में कुछ ग्वाल बाल दिन के समय देवता का खेल करते हुए लकड़ी की तलवार से बकरे की बलि देने का अभिनय किया करते थे। एक दिन इस अभिनय में सचमुच बकरे का सिर कट कर धड़ से अलग हो गया और जब उन्होंने उसके सिर को धड़ से जोड़ा तो वह पुनः जीवित हो उठा। अगले दिन बच्चों ने पुनः वही खेल खेला तो बकरे का सिर तो कट गया, लेकिन दोबारा धड़ से नहीं जुड़ा। बच्चों ने घर पहुँच कर यह घटना गाँववासियों को सुनाई तो उन्होंने घटना-स्थल पर जाकर देखा कि बकरा चर रहा था। लोग आश्चर्यचकित हुए, तभी एक व्यक्ति को देऊखेल आई और उसने बताया कि वह जमलू देवता है। तब प्रजाजनों ने मौढ़ाबाड़ी में ढलानदार छतवाले खुले मंदिर का निर्माण कर इसमें पिंडी रूप में देवता की स्थापना की। कुछ समय बाद देवता की शक्ति से प्रभावित होकर लोगों ने मौढ़ाबाड़ी से थोड़ी दूर दरपोइण गाँव में इसका मंदिर तथा गाँव चकनाणी में भंडार बनाकर इसे विधिपूर्वक पूजना आरम्भ किया।

जमलू

गाँव : मलाणा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : मलाणा।
स्थापत्य : देवता जमलू का स्थान मलाणा गाँव के मध्य है। देव प्रांगण की लम्बाई लगभग 100 फुट तथा चौड़ाई



70 फुट है। इसके बायीं ओर काष्ठ-प्रस्तर का काठकुणी विधि से कोट शैली में निर्मित भंडार है, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। इसमें दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, जैसे अनाज़, कंबल, दोहड़ू, सेले इत्यादि रखे जाते हैं। दूसरी मंज़िल में एक तरफ चौड़ा बरामदा है, जिसके तख़्तों पर लम्बे कोट व दो कानोंवाली टोपियाँ पहने घुड़सवार उत्कीर्णित हैं। इससे पचास मीटर की दूरी पर दो मंज़िल का एक अन्य भंडार है, जो लगभग 60 फुट लम्बा व 20 फुट चौड़ा है। इसमें देवता का खंडा व वाद्ययंत्र रखे जाते हैं। इसके भीतर केवल विशेष अवसरों पर ही प्रवेश किया जाता है। प्रांगण के पश्चिमी छोर पर देवता का दो मंज़िल का 'मौढ़' है, जिसमें तीन ओर दीवारें हैं और पूर्व की ओर यह खुला है। इसकी धरातल मंज़िल में रसोई है तथा ऊपर की मंज़िल ठहरने हेतु प्रयुक्त होती है। प्रांगण की पूर्व दिशा में लगभग ढाई फुट ऊँचा, 30 फुट लम्बा और 20 फुट चौड़ा चबूतरा है। इसके ऊपर की ओर 8ग10 फुट का एक अन्य चबूतरा है। दोनों पर पत्थर के बड़े-बड़े चक्के बिछे हैं। ऊपर के चबूतरे पर 'ज्येष्ठांग' के सदस्य व नीचे के चबूतरे पर 'कनिष्ठांग' के सदस्य बैठते हैं। देव-प्रांगण का शेष भाग देऊचारा (देव कार्यवाही) तथा नाटी के लिए प्रयुक्त होता है।

शाखा मंदिर : कुलंग, करज़ां, जगतसुख, बड़ाग्रां, धारा, छानी, जाणा, शौरन, रुमसू, शाँगचर, चौकी, पीज़, तलाईटी, रशोल तथा छत्तीस उपदेवगृह।

अधिकार क्षेत्र : मलाणा गाँव की सौरा बेहड़, जिसमें लगभग सौ परिवार आते हैं, सम्पूर्ण कुल्लू ज़िला।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी तथा अन्य देऊलू।

न्याय प्रणाली : गाँव के सभी मुकद्दमे कोर्ट में न जाकर ज्येष्ठांग में निर्णीत होते हैं। निर्णय देने से पूर्व दोनों पक्षों की बात सुनी जाती है। ज्येष्ठांग उनसे पूछताछ करने के बाद दो सदस्यों को कनिष्ठांग से बातचीत करने के लिए नियुक्त करता है। ये सदस्य मुकद्दमे का सारांश कनिष्ठांग के समक्ष सुनाते हैं। वहाँ विचार-विमर्श के बाद फैसला ज्येष्ठांग को बताया जाता है। उस पर गौर करके ज्येष्ठांग अंतिम फैसला सुनाता है। फैसले को लागू करवाने का कार्य 'पोगलदार' करते हैं। अगर इस स्तर पर फैसला न हो पाए तो देवता के समक्ष मुकद्दमा पेश किया जाता है, जिसके लिए वादी-प्रतिवादी को शुल्क के रूप में सात रुपए जमा करवाने होते हैं। दोनों पक्षों को अपनी बात सुनाने का अधिकार होता है। फिर न्याय करने के लिए समान आयु के दो स्वस्थ बकरे लाए जाते हैं, जिनकी पिछली टाँगों से चमड़ी छीलकर उस स्थान पर स्थानीय विषैली बूटी *आहण* का लेप लगाया जाता है और उन्हें खूँटे से बाँध दिया जाता है। विष के प्रभाव से जिस पक्ष का बकरा मर जाता है उसे ही दोषी माना जाता है।

पूजा : नित्य पूजा की प्रथा नहीं है। केवल विशेष अवसरों पर ही प्रातः-सायं पुजारी द्वारा पूजा की जाती है।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, इसके स्थान पर प्रतीक चिह्न के रूप में रजत निर्मित घोड़े हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति से गाँव की सभी कुँवारी लड़कियाँ मंदिर के प्रांगण में जमलू देवता की महानता, वीरता और ज्ञान का गुणगान करनेवाले गीत गाती हैं। ये गीत पूरे महीने सायं पाँच-छह बजे के करीब गाये जाते हैं। मास के अंत में कन्याएँ प्रत्येक घर से चावल, आटा और दालें एकत्र करके वैशाख की संक्रांति को सहभोज का आयोजन करती हैं। सभी गाँववालों को भोजन खिलाया जाता है।

ज्येष्ठ मास की संक्रांति को *कापू साजा* होता है। इस दिन को जमलू देवता के जन्मदिन के रूप में मनाया जाता है। सूर्योदय के समय सभी ग्रामवासी देव-प्रांगण में एकत्र होते हैं। एक पोगलदार बकरा लाता है। देवता द्वारा बकरा स्वीकार किए जाने पर उस बकरे को वाद्यों की ध्वनि के साथ गाँव की पश्चिमी दिशा में उस धार तक ले जाया जाता है, जहाँ से जमलू ने बाणासुर को प्रथम बार ललकारा था। वहाँ पहुँचकर गूर अपने ऊपर के वस्त्र उतार कर अर्धनग्नावस्था में देवघंटी से बकरे का स्पर्श करता है। तत्पश्चात् पोगलदार बकरे को काटकर उसके

टुकड़े-टुकड़े करके चारों दिशाओं में फेंकते हैं।

श्रावण मास के अंतिम दिन *शाउण जात्र* आरम्भ होती है। इस दिन अन्य गाँवों के लगभग चार-पाँच हज़ार लोग देवता की चाकरी के लिए आते हैं। इस अवसर पर देवता के लगभग पचास निशान बड़े भंडार से जुलूस के रूप में प्रांगण में लाए जाते हैं। लोग देवता को भेंट स्वरूप रुपए व चाँदी के घोड़े देते हैं।

आश्विन मास के शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को मलाणा से जमलू घंटी-धड़छ के रूप में कुल्लू दशहरे को आता है। इस अवसर पर घंटी-धड़छ सुलतानपुर के सामने डोभी 'देऊघरे' में रखे जाते हैं और मुहल्लावाले दिन पुजारी, कारदार आदि ढालपुर आकर रघुनाथ के दरबार में हाज़िरी देते हैं। फाल्गुन मास में प्रथम शुक्रवार से *फागली उत्सव* आरम्भ होता है और तीन दिनों तक मनाया जाता है। इसमें देवता के सभी निशानों के साथ अकबर द्वारा दिया गया सोने का घोड़ा तथा मूर्ति भी प्रांगण में रखे जाते हैं। इस मेले में महिलाएँ नृत्य करती हैं, पुरुष दर्शक होते हैं।

जनश्रुति : जमलू देवता मलाणा और गेपंग दो भाई थे। एक बार वे घूमते हुए तिब्बत से नीचे आए। गेपंग तो लाहुल चला गया और जमलू अपनी तपस्या से भगवान् शंकर को प्रसन्न कर के हामटा पहुँचा। उसके साथ उसके चार अनुयायी-अजिमल, गिरमल, थिरमल और सिंहमल भी थे। वहाँ सबने एक टाँग पर खड़े होकर बारह वर्ष तक महामाई की तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर माता ने वर माँगने के लिए कहा। जमलू ने देवी से अठारह शक्तियों को पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप में भेजने का आग्रह किया। देवी के तथास्तु कहने पर जमलू ने उन अठारह शक्तियों को एक करड़ू में डाला और चंद्रखणी पर्वत पर पहुँचा। उसी समय भयंकर आँधी आई और करड़ू में अवस्थित शक्तियाँ उड़कर कुल्लू जनपद के विभिन्न स्थानों पर स्थापित हो गईं। कुछ समय चंद्रखणी पर तपस्या करने के उपरांत जमलू देवता मलाणा की ओर उतरा, जहाँ राक्षस राज बाणासुर का निवास था। मलाणा के प्राकृतिक सौंदर्य से प्रभावित होकर उसने वहीं रहने का निश्चय किया और उपयुक्त स्थान पर तप करने लगा। बाणासुर को जब इस बात का पता चला तो क्रोध में देवता उसे कभी चकोर तो कभी मोनाल के रूप में दिखाई देने लगा। उसने मन ही मन उसे मारने का निश्चय किया। उसने तेल से भरी कड़ाही में पक्षी को डाल दिया। सारी रात कड़ाही के नीचे आग जलती रही, परंतु पक्षी को आँच तक न आई। अंत में बाणासुर ने हार मानकर उस स्थान को छोड़ने का निर्णय लिया, परन्तु जाते-जाते जमलू देवता से वचन ले लिया कि वहीं की बोली और खान-पान मलाणा में उसकी निशानी के रूप में कायम रहें।

देवी धमेसरी जो कन्या के रूप में चंद्रखणी से जमलू के साथ आई थी, बाणासुर के पीछे-पीछे बाणा पखोड़ा नामक स्थान तक गई और वहाँ उसे कील दिया, ताकि वह वापिस न आ सके। तदुपरांत धमेसरी देवी और जमलू देवता ने मलाणा को दो भागों-धारा बेहड़ और सौरा बेहड़ में बाँटा। जमलू देवता ने धारा बेहड़ भागासिद्ध के नाम से विख्यात धमेसरी देवी को दे दिया और सौरा बेहड़ अपने पास रखा।

जमलू

गाँव : शिल्हाग्राँ, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : शिल्हाग्राँ में देऊरी नामक स्थान।
मंदिर : शिल्हाग्राँ।



भंडार : देवता के पुजारी के घर में।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में निर्मित द्विछतीय मंदिर गाँव के अंतिम छोर पर है। पुराने मंदिर के ढह जाने के कारण गाँववासियों ने वर्ष 1998 में इस नए मंदिर का निर्माण किया है, जो लगभग बारह फुट वर्गाकार है। इसकी छतें स्लेटों से आच्छादित हैं और शिखर पर त्रिशूल शोभित हैं। छत को सहारा देने के लिए मंदिर के चारों ओर काष्ठ-स्तम्भ लगाए गए हैं। प्रवेशद्वार पूर्वाभिमुख है। इसके साथ दीवारों में चारों ओर काष्ठ-निर्मित ग्यारह घोड़े जड़े हैं। मंदिर परिसर में पश्चिम की ओर लगभग दो बिस्वा भूमि में देवता की 'सौह' है, जिसमें मेले-त्योहारों के अवसर पर देवता अपनी प्रजा को दर्शन देने के लिए निकलता है।

अधिकार क्षेत्र : शिल्हाग्राँ।

प्रबंध : ग्रामीणों की पंजीकृत समिति।

न्याय प्रणाली : कारकुनों द्वारा, 'मलोही' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से; परन्तु विशेष उत्सवों पर जमलू के प्रतीक सत्तर घोड़ों की घी व धूप से पूजा की जाती है। ये सभी घोड़े रजत-निर्मित हैं। प्राचीन काल में इनकी संख्या लगभग तीन सौ थी। उत्सवों के अवसर पर इन घोड़ों को पंक्तिबद्ध रखकर इन्हें पूजा जाता है। तदुपरांत देवता की कुंढी (करंड) को रेशमी वस्त्रों से सजाकर, इसमें देवता के मुख्य निशान घुंडी-धरछ (घंटी-धूपदान) व घोड़ों को रखा जाता है। कुंढी को देवता का पुजारी ही उठाता है।

रथ : नहीं, कुंढी है, जो नगाल (बाँस प्रजाति का पौधा) से बनाई जाती है और इसे सिर पर उठाया जाता है।

मोहरे : 70 घोड़े।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *बिरशू* मेला होता है। इस अवसर पर देवता कुंढी में विराजकर अपने मूलस्थान देऊरी थल जाता है, जहाँ मेला लगता है। पुजारी के घर में ही रात्रि-विश्राम करता है। भाद्रपद मास की संक्रांति को भी मेला लगता है।

जनश्रुति : प्राचीन समय में मलाणा गाँव की किसी स्त्री का विवाह शिल्हाग्राँ के शेल वंशीय कौऊलू नामक पुजारी से हुआ था। वह जमलू देवता की अनन्य भक्त थी। विवाहोपरांत जब वह शिल्हाग्राँ आई तो अपने इष्ट देवता को भी साथ ले आई। तभी से यहाँ जमलू देवता की स्थापना है।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार लगघाटी के घलियाणा गाँव में बद्री पुरोहित रहता था। वह जमलू का भक्त था। शिल्हू और रूह राजपूतों के साठ-साठ परिवार उसके यजमान थे। बड़ी यजमानी के कारण उसे यहाँ का गढ़िया कहा जाता था। डुमणू पौजिया नाम का व्यक्ति जो पौजम में रहता था, का बद्री पुरोहित के साथ झगड़ा रहता था। तब देवता ने इनसे मिलकर रहने का वचन लिया, लेकिन फिर भी इनकी शत्रुता कम न हुई। इससे तंग आकर बद्री पुरोहित अपने जमूल देवता को लेकर और उसके कुछ शिल्हू यजमान देवता के निशान लेकर वहाँ से चले गए। शिल्हू राजपूतों को अपने रहने के लिए शिल्हाग्राँ स्थान अच्छा लगा। उन्होंने वहाँ जमलू देवता की स्थापना करके अपना निवास बनाया।

जांबद

गाँव : शांगणा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : शांगणा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर है। इसकी छत स्लेटों से आच्छादित है तथा शिखर पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : केवल शांगणा।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी, छटाली की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। हर संक्रांति, पूर्णमासी तथा अमावस्या के अतिरिक्त मेले-त्योहारों में जब रथ सजा होता है तो सुबह-शाम पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास में देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : कदाचित् शांगणा गाँव के एक बुजुर्ग को भालू मिला जो देखते ही देखते अंतर्धान होकर मूर्ति रूप में प्रकट हुआ। उसके आगे बुजुर्ग ने नतमस्तक होकर पूछा कि आप कौन हैं? पिंडी ने बताया कि वह सुग्रीव का मंत्री जामवंत है और यदि उसे इस गाँव में स्थापित किया जाए तो वह सबके कष्ट दूर करेगा। तब गाँववासियों ने मंदिर व रथ बना कर इसे देवता रूप में पूजना आरम्भ किया।

जीव नारायण

गाँव : जाणा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जाणा।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का



मंदिर जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है। प्रवेशद्वार पूर्व की ओर है। तीसरी मंज़िल में आवरणयुक्त चौतरफा बरामदा है। यहीं समीप में देवता का सिंहासन है, जो विशाल चपटी चट्टान है।

अधिकार क्षेत्र : नथाण।

प्रबंध : चार कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदार के माध्यम से, देव रथ द्वारा व 'मलोही' डाल कर।

पूजा : केवल उत्सव एवं त्योहारों के दिन ही पुजारी 'घोंडी' बजाते हुए तथा 'धड़छ' में बेठर धूप जलाकर देवता की पूजा करता है।

रथ : दो अर्गलाओं पर उठाया जानेवाला फेटा रथ, जिसके अग्रभाग में मोहरे सजाए जाते हैं।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में *शाउणी जौग*। इसके लिए मास के किसी भी रविवार का दिन निश्चित किया जाता है। फाल्गुन में *फागली* भी रविवार के दिन ही मनाई जाती है। इसे देवता का बड़ा त्योहार माना जाता है।

जनश्रुति : जीव नारायण को देवताओं का गुरु वृहस्पति माना जाता है। यह नथाण गाँववालों का कुल देवता है। कुल्लू में नथाण नाम के दो गाँव हैं। जब ऊपर के नथाण में आबादी ज़्यादा हो गई तो वहाँ से कुछ परिवार निचले नथाण में आकर बस गए। यहाँ आकर उन्होंने अपने कुलदेवता जीव नारायण की स्थापना की। आसपास के क्षेत्र में इस देवता को संतानदाता के रूप में मान्यता प्राप्त है, अतः निःसंतान दम्पती यहाँ संतान के लिए मनौती करते हैं और संतान हो जाने पर इच्छित भेंट चढ़ाने आते हैं।

जुआणू महादेव

गाँव : नेऊली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नेऊली।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में निर्मित डेढ़



मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। छत के शिखर पर तीन कलशयुक्त 'बदोर' है। मंदिर परिसर में भोट-भोटली, शिवलिंग और नंदी की प्राचीन प्रस्तर मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। ढाई मंज़िल के देव-भंडार में मोहरे, आभूषण आदि रखे जाते हैं।

शाखा मंदिर : गाँव देहुगरा, तरांबली।

अधिकार क्षेत्र : गाँव जुआणी, देहुगरा, तरांबली, किंजा, नाली, देऊधार, धरमोट, वरादा, जगोट, मौहल, खड़ी बाग तथा बाहर बाग।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।

रथ : खड़ा, जिसे दो व्यक्ति उठाते हैं।

मोहरे : चौबीस।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में *नया संवत्* का उत्सव, वैशाख, श्रावण तथा भाद्रपद मास की संक्रांतियों को मुख्य मोहरे सहित देवता का रथ मंदिर से बाहर निकलता है। 23-24 वैशाख को देवता मौहल मेले में पधारता है, जहाँ उसके इस मेले में देवता ब्रह्मा भी आते हैं। पौष की अमावस्या को *दियाली,* जिसमें दो दलों द्वारा गूण (रस्सा) खींचा जाता है। पहले जुआणी में काहिका भी होता था, परन्तु नेऊली राणी के यहाँ आने के बाद *काहिका* बंद कर दिया गया।

जनश्रुति : भारथा के अनुसार देवता काशी से बनारस, हरिद्वार, बैजनाथ और फिर काँगड़ा पहुँचा। मार्ग में जलन्धरासुर का वध किया। काँगड़ा से महादेव कुल्लू, सयाल, लरांकेलो और काईस होते हुए जुआणी आया, जहाँ गद्दी और भोट रहते थे। गद्दियों को भोट बहुत तंग करते थे। यह देखकर महादेव ने भोटों को अपनी शक्ति से मार गिराया और जो बचे थे उन्हें भगा दिया। कृतज्ञता स्वरूप गद्दियों ने महादेव की पूजा आरम्भ की। जुआणी गाँव के नाम से देवता जुआणू महादेव कहलाया। कालान्तर में जब नेऊली राणी इस गाँव में आई तो इसका नाम बदलकर नेऊली पड़ा।

जौड़ा नारायण

गाँव : कशाधा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : कशाधा।

मंदिर : कशाधा की निहाणी सौह।

भंडार : कशाधा, जरी गाँव।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित देशज शैली का डेढ़ मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं।



शाखा मंदिर : गाँव जरी, टटारधी।

अधिकार क्षेत्र : कशाधा, जरी, शांगचर, टटारधी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। जब रथ शृंगारा होता है, केवल तभी प्रातः-सायं पूजा होती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : कुल इक्कीस, जिनमें से रथ पर केवल अठारह मोहरे लगते हैं।

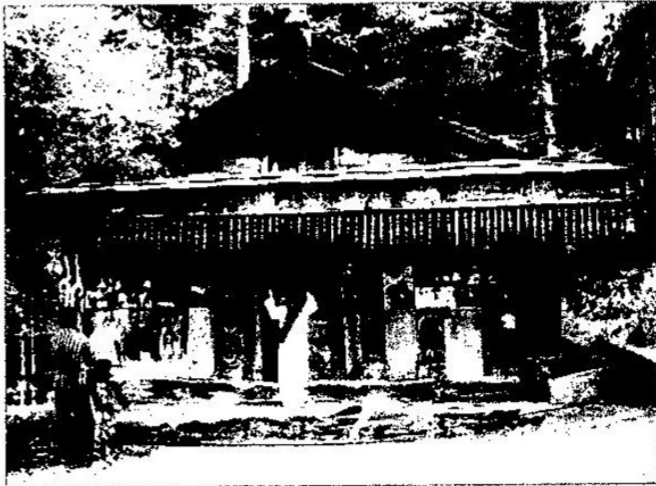
मेले-त्योहार : चार वैशाख को निहाणी सौह में मुख्य मेला लगता है। श्रावण की संक्रांति को देवता धूप ग्रहण करने घर-घर जाता है। माघ मास के 20 प्रविष्टे को *फागली* उत्सव मनाया जाता है। देवता की आज्ञा से काईली बण में *गैणी जात्रा* का आयोजन किया जाता है।

जनश्रुति : जौड़ा नारायण को कशाधा गाँव में छमाहण से आया माना जाता है। कशाधा के किसी व्यक्ति को स्वप्न आया कि देवता जौड़ा नारायण गाँव के निहाणी

नामक स्थान पर शिला रूप में विराजमान है। यदि गाँव वाले उसकी आराधना करेंगे तो वह हर प्रकार से उनकी सहायता व रक्षा करेगा। उसने स्वप्न की बात ग्रामवासियों को बताई तो उन्होंने निहाणी में देवता की स्थापना करके, बाद में देवता के निमित्त मंदिर तथा रथ, मोहरों का निर्माण किया।

जौड़ा नारायण

गाँव : पीणी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : कशाधा गाँव की निहाणी सौह।
मंदिर एवं भंडार : पीणी गाँव का कजिहारी स्थान।



स्थापत्य : स्लेट युक्त ढलानदार छतवाला पहाड़ी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर, जिसके शिखर पर 'बदोर' स्थापित है। छत के चारों ओर लकड़ी से बनी सुन्दर झालर वायु-वेग से आपस में बजने पर मधुर ध्वनि उत्पन्न करती है। मंदिर में लगे काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी की गई है।
अधिकार क्षेत्र : पीणी फाटी।
प्रबंध : पीणी की देवी भागा सिद्ध के कारदार द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'पोगले' व 'मलोही' डालकर।
पूजा : बेठर व गुग्गुल धूप से प्रतिदिन।
रथ : फेटा।
मोहरे : तेरह, जिनमें से ग्यारह मोहरे ही रथ पर सज्जित होते हैं।
मेले-त्योहार : आषाढ़, श्रावण व भाद्रपद मास की संक्रांतियाँ, मार्गशीर्ष मास में *पुन्नू*, फाल्गुन में *फागली* मेला। इन सभी मेले-त्योहारों के अवसर पर सर्वप्रथम 'विष' को सम्मान दिया जाता है, तत्पश्चात् अन्य कार्यवाही होती है। इसके पीछे लोक कथा है कि किसी समय पीणी गाँव में राक्षस राज्य करते थे, जिन्होंने यहाँ विष का प्रसार किया। गाँव की बावली के पास प्रतिदिन एक स्वर्णांकुर निकलता था और लोभवश जो भी उसे अपने घर ले जाता, उसके घर की प्रत्येक वस्तु विषाक्त हो जाती। इस प्रकार यह विष गाँव के अन्न-जल दोनों में व्याप्त हो गया, जिसके प्रयोग से कई लोग मर गए। जब जौड़ा नारायण को इस बात का पता चला तो उसने इसको समाप्त करने के लिए अपनी दिव्य-शक्ति का प्रयोग किया और सारे विष को एक स्थान पर इकट्ठा कर उसे निष्प्रभाव कर दिया। इससे पहले विष ने देवता से वचन लिया कि उसकी भी पूजा हो। उसी के अनुरूप आज भी यहाँ विष को पूजा जाता है।
जनश्रुति : कुल्लू ज़िला के पीणी गाँव में हरि-हर भगवान् विष्णु जौड़ा नारायण के नाम से विराजमान हैं। इस स्थान पर इनकी उत्पत्ति के सम्बंध में किम्वदंती है कि कदाचित् कशाधा गाँव के निहाणी सौह (देव प्राँगण) में मेला चल रहा था। वहाँ खूब चहल-पहल थी। लोग नृत्य कर रहे थे। सामने के फाट (चरागाह) से एक गड़रिया यह दृश्य देख रहा था। थोड़ी देर बाद वह बरबस ही उस ओर खिंचा चला आया और नृत्य कर रहे लोगों में सबसे आगे नाचने लगा। नर्तकों को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने उसे पंक्ति में सबसे पीछे ले जाने की योजना बनाई। सभी नर्तक बारी-बारी से उसके आगे आते गए और वह सबसे पीछे रह गया। उसे यह बात बड़ी लज्जाजनक लगी और व्यथित होकर वह वहाँ से दूर जाकर एक शिला के सहारे बैठ गया।

कुछ समय बाद उसे वह शिला हिलती प्रतीत हुई। उसने इसे अपना भ्रम जाना, लेकिन शिला पुनः

हिली तो उसे आभास होने लगा कि यह कोई दिव्यशक्ति है। उसने शिला से कहा कि यदि वह निश्चय ही कोई देवरूप है तो उसके कोट के भीतर पीठ में आ जाए। उसके ऐसा कहते ही शिला उसकी पीठ से चिपक गई और गड़रिया चुपचाप वहाँ से निकल कर पार्वती नदी के पार पीणी गाँव पहुँच गया। वहाँ की देवी भागासिद्ध ने देवता को कजिहारी नामक स्थान दिया। गड़रिए ने वहाँ के लोगों की सहायता से मंदिर का निर्माण कर उसमें शिला-रूपी जौड़ा नारायण की स्थापना की।

ज्वाला माता

गाँव : फोजल, **तहसील** : कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : फोजल गाँव में पोली री सेर।

भंडार : फोजल में।

स्थापत्य : देवी का मुख्य मंदिर फोजल गाँव के पास *पोली*



री सेर (कृषि भूमि) में है। पहाड़ी व पैगोड़ा की समन्वित शैली में निर्मित क्रमवद्ध चार ढलवाँ छतों वाला यह विशाल एवं भव्य मंदिर काष्ठकला का अनुपम उदाहरण है। इसे कुछ वर्ष पहले ही बनाया गया है। छतों पर पतले स्लेट बिछे हैं। छत के चारों ओर लकड़ी की शारिकानुमा झालर लगी है। मंदिर के गर्भगृह में ज्वाला माता की प्रस्तर-निर्मित प्राचीन प्रतिमा स्थापित है।

पैगोड़ा शैली के नवनिर्मित शाखा मंदिर में माता ज्वाला की संगमरमर की आदमकद मूर्ति स्थापित है। इस त्रिछतीय मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर उकेरे गए धार्मिक घटनाओं से सम्बंधित चित्र दर्शनीय हैं।

शाखा मंदिर : फोजल गाँव के मध्य।

अधिकार क्षेत्र : फोजल, भुलंग, झाकड़ी संगा, धारा व धरोगी गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, भंडारी व काईथ की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, 'गैटी, पोगै, मलोही' के माध्यम से।

पूजा : दोनों मंदिरों में प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा की जाती है। बेठर धूप जलाया जाता है। विशेष उत्सवों पर जब देवी का रथ सजाया जाता है तो उसकी भी पूजा की जाती है और वाद्ययंत्र बजाए जाते हैं।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिस पर रजत निर्मित छह छत्र सुशोभित हैं।

मोहरे : बारह। इनमें दस रजत के तथा दो पीतल के हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *जेठा बिरशू* उत्सव मनाया जाता है, जो तीन दिनों तक चलता है। ज्येष्ठ मास की संक्रांति को दो दिन तक *कापू मेला* लगता है। यह घाटी के प्रमुख मेलों में से एक है। इसे मनाने के पीछे घटना-कथा है कि जब देवी की कृपा से फोजल गाँव में जल आया तो लोगों ने धान की रोपाई करने के बाद उत्सव मनाया। तब से यहाँ मेला लगता है। संक्रांति को देवी के मोहरे इसी *पोली री सेर* के मंदिर में लाए जाते हैं और देवकार्य सम्पन्न किया जाता है।

दूसरे दिन देवी के द्वारा एक राक्षसी को दिए वर के अनुसार उसके नाम का मेला लगता है। वह राक्षसी काली नाग का विवाह प्रस्ताव लेकर देवी के पास आई थी और देवी ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया था। आषाढ़ की संक्रांति को *कजेली* उत्सव मनाया जाता है। इन तीनों मेले-उत्सवों पर 'शांद', 'देऊखेल' और नाटी के कार्यक्रम आयोजित होते हैं।

जनश्रुति : किसी समय अरदार जोत पर स्वर्ग से पाँच शक्तियाँ उतरीं, जिनमें चार देवता थे और एक देवी ज्वाला। वहाँ उतर कर सर्वप्रथम उन्होंने *शांद* यज्ञ का आयोजन किया। वहीं पास में उन्हें एक मेढ़ा चरता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने यज्ञ में उसकी बलि देनी चाही। परन्तु देवी ज्वाला, जो उसकी बलि से सहमत नहीं थी, क्रोध में उस मेढ़े पर सवार होकर द्रुत गति से वहाँ से निकल कर डोभी से होती हुई ग्राहण नामक गाँव के पास एक गुफा में चली गई। लम्बे अंतराल के बाद देवी ग्राहण की गुफा से गुप्त मार्ग द्वारा फोजल पहुँची। वहाँ उसने देखा कि जहाँ धान के खेत हैं वहाँ जल की कमी के कारण उपज अच्छी नहीं हो रही है। जल को कालीचांग नामक स्थान पर कालीनाग ने रोक रखा था। देवी ने गाँववालों की सहायता के लिए कालीनाग से पानी छोड़ने की विनती की, परन्तु वह देवी से विवाह करने की शर्त पर ही पानी छोड़ने के लिए सहमत हुआ। देवी ने उससे कहा कि यदि वह जुए में उसे हरा देगा तो वह उससे विवाह कर लेगी। दोनों कालीचांग में जुआ खेलने लगे। उधर देवी ने कौवों और चिड़ियों को नहर बनाने के लिए लगा रखा था और अपने दुपट्टे को पोली री सेर के अंतिम छोर तक फैला रखा था। जुआ खेलते-खेलते जब काफी समय बीत गया तो देवी ने अपना दुपट्टा खींच लिया और उसे गीला महसूस किया। तत्काल ही देवी ने जुआ खेलना छोड़कर कालीनाग से कहा, *कालिया नागा-पोली रा सेरटू रोहिदा लागा!* अर्थात् पोली की सेर में पानी पहुँच चुका है। इतना कहते ही देवी वहाँ से भाग कर फोजल पहुँच गई। पानी की समस्या हल होने से वहाँ के लोग अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने *पोली री सेर* में ही देवी की स्थापना की और उसकी पूजा-अर्चना करने लगे। कालांतर में देवी की मान्यता का अन्य गाँवों में भी विस्तार हुआ।

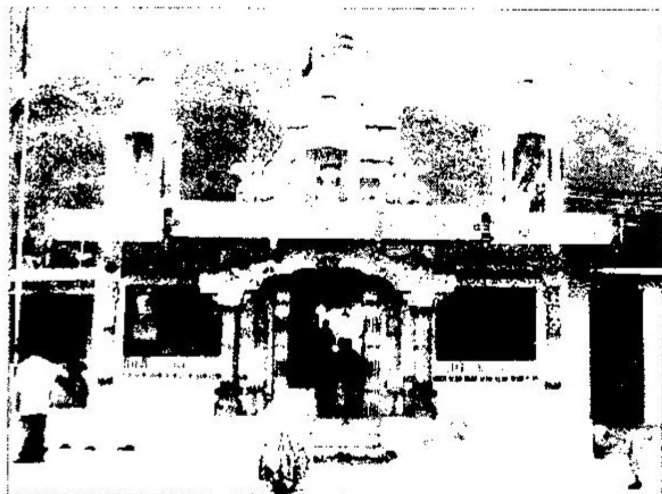
ज्वालामुखी

गाँव : शमशी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : डेहरी आगे।

मंदिर एवं भंडार : शमशी।

स्थापत्य : सीमेंट व काष्ठ निर्मित एक मंज़िल का मंदिर आधुनिक शैली का है, जिसके ऊपर बने तीन शिखरों पर



कलश व सामने की ओर कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ सुशोभित हैं। गर्भगृह में सिंहवाहिनी देवी की संगमरमर की अष्टभुज-मूर्ति है। संगमरमरयुक्त प्रांगण में एक तथा मंदिर के मुख्य द्वार पर दो सिंह स्थापित हैं। मंदिर के साथ ही प्राचीन शिव मंदिर है। कुछ ही दूरी पर थान देवता का प्राचीन मंदिर है, जहाँ पर देवी ज्वालामुखी हर संक्रांति को हाज़िरी लगाती है।

अधिकार क्षेत्र : सेरी बेहड़, तेगू बेहड़, शमशी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से देवी द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : दो अर्गलाओं व रजत निर्मित छह छत्रों से युक्त खड़ा रथ। अर्गलाओं के अग्रभाग पर रजत के नक्काशीदार खोल जड़ित हैं।

मोहरे : कुल चौदह, जिनमें से एक मोहरा स्वर्ण का व शेष चाँदी के हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में *बिरशू*, श्रावण की संक्रांति व मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को देवी अपने प्रजाजनों के घर

जाकर उनकी समस्याओं का समाधान करती है, फाल्गुन मास की संक्रांति को देवी *भूंतर मेले* में सम्मिलित होती है।

जनश्रुति : देवी ज्वालामुखी शमशी का मूल स्थान डेहरी-आगे है। वहाँ से जब कुछ व्यक्ति शमशी आकर बस गए तो वे वहाँ भी ज्वालामुखी को अपनी कुलदेवी के रूप में पूजते रहे। कालांतर में देवी की शक्ति से प्रभावित होकर क्षेत्र के अन्य लोग भी इसे मानने लगे और इसकी आराधक प्रजा का पर्याप्त विस्तार हुआ।

तौठ : बारोबारी

गाँव : धार्ठ, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : मथाण।

मंदिर एवं भंडार : धार्ठ।

स्थापत्य : ढलानदार छतवाला कंकरीट व लकड़ी से



निर्मित दो मंज़िल का भंडार, जिसकी ऊपरी मंज़िल में चारों ओर लकड़ी का बरामदा है। इसका कुछ भाग लकड़ी के तख्तों से आधा बंद किया गया है तथा कुछ भाग खुला है। भंडार के बाहर घड़े हुए पत्थरों की चारदीवारी है, जिसके ऊपर नुकीले सरिये लगे हैं। मुख्य द्वार पर भी लोहे का फाटक है, जिसके स्तम्भों और शिखर पर कलश स्थापित हैं। भंडार को बिजली महादेव के तौठ का स्थान माना जाता है और इसी के साथ यहाँ अन्न भी रखा जाता है।

शाखा मंदिर : भ्रैण, ज़िया, तरांवली, ओलड़, वंदल, हलैणी, धार्ठ, चंसारी, पेच्छा, थर्कू आदि अनेक स्थान।

अधिकार क्षेत्र : फाटी खराहल व फाटी कशावरी के गाँव।

प्रबंध : बिजली महादेव की कार्यकारिणी समिति।

न्याय प्रणाली : बिजली महादेव के गूर द्वारा, 'पोगले' और 'मलोही' डाल कर।

पूजा : गुग्गुल धूप से।

मोहरे : केवल रजत निर्मित तौठ (पात्र विशेष) तथा चाँदी के घुँघरू।

जनश्रुति : तौठ रजत निर्मित एक पात्र विशेष है, जिसमें बिजली महादेव के निमित्त प्रजा द्वारा दिया गया नई फसल का अन्न एकत्र किया जाता है। इसे विष्णुरूप भी कहते हैं। यह तौठ पहले भ्रैण गाँव के भंडार की पाँचवीं मंज़िल में रखा जाता था। जब भी नई फसल आती तो अन्न एकत्र करने के लिए तौठ को ले जाने से पूर्व इसकी पूजा की जाती थी। पूजा का कार्य नारायण-विष्णु नामक ठाकुर किया करते थे। अन्न एकत्र करने के लिए जोगणू नामक व्यक्ति तौठ को लेकर घर-घर जाया करता था। एक बार फसल आने पर जोगणू और नारायण विष्णु ने अन्न एकत्र करने के लिए दिन निश्चित किया। नारायण विष्णु ने स्नान आदि करके तौठ की पूजा की और जोगणू का इंतज़ार करने लगा, परन्तु उस दिन वह नहीं आया। नारायण विष्णु को उस पर बड़ा क्रोध आया, क्योंकि तौठ को पाँचवीं मंज़िल से ऊन के कच्चे धागे से बाँध कर नीचे खड़े जोगणू को देना पड़ता था और इससे पूर्व विधि-विधान से शिव और विष्णु की पूजा भी करनी पड़ती थी। अगली प्रातः जोगणू ने पिछले दिन न आने का कारण नारायण विष्णु को बताया और तौठ लेने के लिए नीचे खड़े होकर अपनी चादर फैलाई। नारायण विष्णु ने रोष के कारण, ऊन से बंधे तौठ को पाँचवीं मंज़िल से ज़ोर से झटका देकर नीचे छोड़ा तो धागा बीच में ही टूट गया और तौठ चादर के बजाए नीचे गिर गया, जिस कारण उसमें निशान पड़ गया। यह देखकर जोगणू बड़ा नाराज़ हुआ और तौठ

को उठाकर फाटी खराहल चला गया। वहाँ पर अनाज इकट्ठा करते समय सभी लोगों के पास उसने इस बात की चर्चा की। इसी बीच एक दिन भ्रेण-कठार के गिरने का समाचार मिला और इसे देवता का नाराज़ होना माना गया। तब बिजली महादेव की कार्यकारिणी ने धार्ठ गाँव में सभी प्रजाजनों को बुलाकर वहाँ देवता का भंडार बनाने का निर्णय लिया। देवता की अनुमति मिल जाने पर धार्ठ में भंडार बनाकर जोगणू को भी वहीं रहने के लिए स्थान दिया गया।

त्रिजुगी नारायण

गाँव : पिछला ग्रामंग, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पिछला ग्रामंग।

स्थापत्य : साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर। ऊपर



जाने के लिए धरातल मंज़िल में दो अलग द्वार बने हैं। इनमें से एक ओर का द्वार बंद रहता है। इसमें नीचे से लेकर सबसे ऊपर की मंज़िल तक देवता का भंडार है। इस द्वार को तभी खोला जाता है जब मेले के दौरान देवता के भंडार से कोई सामान निकालना हो। दूसरी ओर का द्वार चलने-फिरने के लिए खुला रहता है। इस ओर तीसरी मंज़िल में पज़ियारा के रहने का स्थान है। इसमें चौतरफा बरामदा है। मंदिर की छत नीचे लकड़ी के तख्तों और ऊपर तराशी हुई स्लेटों से ढकी है।

शाखा मंदिर : एक मंदिर गाँव के साथ देवदार के जंगल में, जहाँ देवता का पिंडा (पिंडी) है तथा दूसरा गाँव से थोड़ा नीचे जहाँ देव-सौह है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव ग्रामंग, सगोचक दोघरी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : 'मलोही' डाल कर।

पूजा : मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर 'घोंडी-धड़छ' से पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : दो, वर्गाकार। एक बड़ा और दूसरा छोटा। दोनों ही रथ सिर पर उठाए जाते हैं।

मोहरे : एक रजत व एक स्वर्ण निर्मित। रथ के शीर्ष पर निचली ओर चाँदी का और ऊपर सोने का छत्र सजाया जाता है।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में *शाउण जाच* होती है। इस दिन देवता का छोटा रथ निकलता है। दिन में सबसे पहले देवता का रथ देवदार के जंगल में स्थित शाखा मंदिर (डेहरा) में जाता है। वहाँ केवल 'छोदा', 'पूछ', मटमान (बलि व भेंट) आदि होते हैं। उसके बाद रथ गाँव के नीचे स्थित शाखा मंदिर में जाता है। यहाँ देवता की सौह है। इसमें देवता का स्वागत-सत्कार होता है तथा मेला लगता है। देवता दो रात यहीं ठहरता है, तीसरे दिन वापिस मंढार (मंदिर) में आता है।

मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को *मुंघर पुन्नू* होता है। इसमें रथ नहीं निकलता है। देवता की केवल 'कोंडी' दोनों शाखा मंदिरों (डेहरा) में जाती है। गाँव के नीचे स्थित डेहरे वाली सौह में मेला लगता है। देवता एक रात वहीं ठहरता है और दूसरे दिन वापिस मंढार (मंदिर) में आता है।

माघ मास की संक्रांति को भी देवता की केवल कोंडी निकलती है।

फाल्गुन मास में *फागली* होती है। मेले से पहली रात को देवता के गूर मंदिर से बाहर रहकर उपवास रखते हैं। अगले दिन देवता की कार्यवाही पूर्ण होने के बाद वे शाम को उपवास खोलते हैं। इन दिनों देवता का बड़ा रथ

निकलता है। रथ पहले देवदार के जंगल में स्थित शाखा मंदिर में जाता है। वहाँ 'देऊखेल', 'हुलकी' आदि नहीं होती, केवल 'छोदा', 'पूछ', 'मटमान' ही होते हैं। उसके बाद रथ दूसरे शाखा मंदिर में जाता है। वहाँ सौह में मेला तथा अन्य देव कार्रवाई होती है। एक रात देवता वहीं ठहरता है फिर अगले दिन वापिस अपने मंढार में आता है।

जनश्रुति : त्रिजुगी नारायण को अठारह करड़ू में से एक माना जाता है। भारथा के अनुसार देवता पहले मैदानी क्षेत्र में विराजमान था। वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में धर्मयुद्ध छिड़ गया, जिससे गऊ माता को अपमानित होना पड़ा। इससे पीड़ित होकर देवता पहाड़ों की ओर चल पड़ा। वह सर्वप्रथम चम्बा पहुँचा और वहाँ गद्दी का वेश धारण कर कुगती जोत गया। जोत पर ढाई घड़ी विश्राम करके मराहड़ा प्रदेश को गया, जहाँ उस समय 'ठारह करड़ू' का सम्मेलन हो रहा था। इसमें भाग लेने के उपरांत पाशाकोट के देवता पंचाली नारायण के साथ चलते-चलते वह मलाह पहुँचा और वहीं रहने लगा। वहाँ देवदार के पौधे उगाए। फिर मधुमक्खी का रूप धारण करके लगघाटी की सरी जोत पर गया। वहाँ से वह अपने 'हारियानों' और कारकुनों की तलाश में समाण गाँव पहुँचा। वहाँ भी देवदार का जंगल उगाया। समाण से वह देहुरी ग्रामंग चला गया, जहाँ उसे एक स्थान पर *धौज़ा-परौली* अर्थात् दयार वृक्ष का एक विशाल स्तम्भ दिखाई दिया। देवता ने उसके इर्द-गिर्द ढाई चक्कर लगाकर उस स्थान पर अधिकार कर लिया।

जब उस स्थान के स्वामी वहाँ रोपाई करने आए तो देवता ने उन्हें नाग के रूप में अपने दर्शन दिए। इससे डर कर वे वहाँ से पीछे हट गए और अपनी भूमि माँगने लगे। परन्तु देवता ने उन्हें वह स्थान वापिस न दिया। इसके बदले में जब देवता का बड़ा मेला उस स्थान पर लगा तो सबसे आगे नाचने का अधिकार उन्हें दिया गया। देवता वहाँ से एक बार गड़रियों के साथ ग्रामंग नाले के पीछे आया और अपनी शक्ति से गायों का दूध सुखाकर उनकी भेड़-बकरियों को छुपा दिया, जिससे गड़रिये रोने लगे। उन्हें दुःखी देखकर शाम के समय देवता ने गायों और भेड़-बकरियों को नाले के पार पहुँचा दिया और स्वयं नरायंडी नामक स्थान पर जाकर पिंडी रूप में परिवर्तित हो गया। गड़रियों ने जब ग्रामंग जाकर सारी घटना लोगों को बताई तो उन्होंने इसे किसी दैवी-शक्ति का चमत्कार मानकर देवता के निमित्त गाँव में डेहरे का निर्माण किया और उसे पूजने लगे। देव-कृपा से जब लोगों की कामनाएँ पूर्ण होने लगीं तो देवता आसपास के क्षेत्र में भी प्रसिद्ध हो गया।

थान देवता

गाँव : तरांबली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : तरांबली।

स्थापत्य : देशज शैली में निर्मित एक कक्षीय साधारण



मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेटें बिछी हैं। शिखर पर 'बदोर' लगा है। मंदिर के भीतर थान देवता की पत्थर की पिंडी स्थापित है।

शाखा मंदिर एवं भंडार : पिरड़ी।

अधिकार क्षेत्र : तरांबली, पिरड़ी।

प्रबंध : देवता के कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से तथा 'पोगले' और 'मलोही' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : फेटा, जो थान देवता के पिरड़ी स्थित भंडार में ही

रहता है।

मोहरे : अष्टधातु का एक।

मेले-त्योहार : श्रावण मास की संक्रांति को *शाहनू जाच* व कार्तिक मास में *दशहरा*।

जनश्रुति : देवता को शिव का रूप मानकर स्थान देवता के तौर पर पूजा जाता है। यह लिंग रूप में यहाँ स्थापित है। किसी समय यहाँ देवता का मोहरा भी हुआ करता था, जो तरांबली गाँव के ही छाज परिवार के किसी व्यक्ति को खेत में खुदाई करते हुए मिला था। वह उसे उठाकर अपने घर ले आया और देवता समझ कर प्रतिदिन उसकी पूजा करने लगा। जब से उसने मोहरे को पूजना आरम्भ किया, उसके घर में सुख-समृद्धि आई।

एक बार पिरड़ी से उसका कोई सम्बंधी कुछ दिनों के लिए उसके घर आया। उसने देखा कि पूजा के बाद वह मोहरे को पत्थर के एक छोटे से मंदिर में रख देता है। उसे यह बात अच्छी नहीं लगी और वापिस जाते समय देवता की प्रेरणा से उसने चुपके से वह मोहरा वहाँ से उठाकर पिरड़ी पहुँचा दिया। तरांबली का छाज परिवार मोहरे को ढूँढता रहा, परन्तु वह उन्हें नहीं मिला। कुछ समय पश्चात् पिरड़ी से पुनः वह व्यक्ति उनके घर आया और देवता को वहाँ से ले जाने की बात की। थान देवता की पिरड़ी जाने की इच्छा समझ कर उसने पिरड़ीवाले व्यक्ति से केवल इतना ही कहा कि जब भी देवता का कोई त्योहार हो तो उसे तरांबली अवश्य ले आना। तब से तरांबली में लगनेवाले दो दिवसीय मेले में थान देवता रथ पर सज्जित होकर आता है।

थान देवता

गाँव : नाँगचा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : नाँगचा।

स्थापत्य : आरम्भ में मंदिर लघु आकार का था, जिसे स्थानीय भाषा में 'डेहरी' कहा जाता है। परन्तु अब उसके स्थान पर नया मंदिर बनाया गया है।



शाखा मंदिर : गाँव उशलीधार व काहला।

अधिकार क्षेत्र : नाँगचा, सटेहड़, उशलीधार, काहला।

प्रबंध : तीन कारदारों की अध्यक्षता में समिति, जिसमें नौ सदस्य हैं।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ डाल कर।

पूजा : विशेष उत्सवों के अवसर पर ही देववाद्यों की ध्वनि के साथ पंचोपचार विधि से पूजा-अर्चना की जाती है। चाँदी के धड़छ में बेठर धूप जलाया जाता है।

रथ : फेटा।

मोहरे : आठ चाँदी के तथा एक अष्टधातु का।

मेले-त्योहार : देव परिसर में प्रतिवर्ष वैशाख के 14-15 प्रविष्टे को *बिरशू* उत्सव का आयोजन।

जनश्रुति : देवभारथा के अनुसार देवता दिल्ली से सर्वप्रथम सुकेत पहुँचा। वहाँ से वह फुटाखौल, जंजैहली होता हुआ ढालपुर आया। ढालपुर से भेखली, काहला, नेरामाटी और उशलीधार में रुकते हुए, अंत में नाँगचा पहुँचा और वहाँ के लोगों को चमत्कार दिखाते हुए उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा। इससे प्रभावित होकर उन्होंने देवता के निमित्त एक छोटी-सी डेहरी बनाई, परन्तु कालांतर में उसी स्थान पर भव्य मंदिर बनाकर उसके गर्भगृह में देव-प्रतीक के रूप में एक त्रिशूल की स्थापना की गई। थान देवता को पाताल देवता और छत्रपाल भी कहा जाता है।

थान देवता : क्षेत्रपाल

गाँव : भुट्ठी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : भुट्ठी में कोल्हू आगे।
मंदिर एवं भंडार : भुट्ठी के नड़ाधी नामक स्थान में।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर। यह तीन बिस्वा भूमि पर है। इसके साथ एक बिस्वा में सौह है। मंदिर की दो मंज़िलों में केवल दीवारें खड़ी हैं। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है, जो लकड़ी के तख़्तों से बंद किया गया है। मंदिर में केवल एक द्वार है। इसी से प्रवेश करके अंदर से मंदिर की सभी मंज़िलों में जा सकते हैं। इसकी छत पौट (अनघड़े पत्थर) से ढकी है। देवता का भंडार मंदिर की सबसे ऊपर की मंज़िल (टाला़) में है। रथ, मोहरे तथा वाद्ययंत्र यहीं रखे जाते हैं, लेकिन चमड़े से मढ़े वाद्य दराघ, ढोल आदि मंदिर के साथ बने दूसरे स्थान पर रखे जाते हैं।

शाखा मंदिर : भुट्ठी में काठकुणी शैली का डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर वर्ष 1973 में दो बिस्वा भूमि पर बना है। यहाँ देवता का पिंडा (पिंडी) है तथा गाँव घलियाणा में डेढ़ मंज़िल का ढलानदार छतवाला मंदिर, जिस पर 'बदोर' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : ब्राह्मण पंचायत के दो गाँव-भुट्ठी एवं रोपड़ी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

रथ : फेटा, आंगू नामक लकड़ी का बना, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाता है।

मोहरे : नौ रजत निर्मित, चार अष्टधातु के, कुल तेरह।

मेले-त्योहार : चैत्रमास की शुक्ल प्रतिपदा को गाँव भुट्ठी की धोचक सौह में एक दिवसीय मेला, बैसाख मास की संक्रांति को भुट्ठी शाखा मंदिर की सौह में *बिरशू* मनाया जाता है। उस रात देवता उसी मंदिर में रहता है और अगले दिन वहीं से गाँव घलियाणा के शाखा मंदिर में आता है। वहाँ 'हुलकी', 'देऊखेल', 'पूछ' आदि सारी कार्रवाई के बाद रात को देवता वहीं मंदिर में ठहरता है और अगले दिन वापिस अपने भुट्ठी मंदिर में आता है। बैसाख मास में ही भुट्ठी की धोचक सौह में 'सलाहर' होता है। यह मेला कतरूसी नारायण-जठाणी और थान देवता का साझा होता है, श्रावण मास में भुट्ठी के शाखा मंदिर की सौह में एक दिन का *सूहणू काहिका* होता है, भाद्रपद मास में एक दिवसीय *शनोहली मेला* होता है, आश्विन मास में भुट्ठी शाखा मंदिर की सौह में *शौयरी* मनाई जाती है, हर तीसरे वर्ष देवता तारापुर कोठी का फेरा लगाता है। यह अधिकार इसे कतरूसी नारायण-जठाणी ने दिया है। फेरे के दौरान हर परिवार की ओर से देवता को अनाज और भेंट चढ़ाई जाती है।

जनश्रुति : किसी समय भुट्ठी गाँव के लिहृणू खानदान की स्त्री माधवी के घर नड़ाधी में एक साधु आया। उसने माधवी से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। उस स्त्री ने साधु को कहा कि इसके बदले में उसे खलियान में सूखने के लिए रखे अनाज की पूरे दिन रखवाली करनी होगी। साधु इसके लिए राज़ी हो गया। स्त्री उसे कार्य सौंप कर स्वयं *कोल्हू आगे* के खेत में काम करने चली गई। साधु उसके अनाज की पहरेदारी करने लगा। एक चींटी आई और अनाज का दाना उठा कर जाने लगी। साधु ने उसे दाना ले जाने से मना किया, लेकिन चींटी नहीं मानी। तब साधु ने उसका पेट बाँध कर उसे शाप दिया कि आज से तुम अन्न तो इकट्ठा करती रहोगी, लेकिन इसे कम से

कम ही ग्रहण कर पाओगी। यह कह कर साधु वहाँ से चला गया। इसी बीच माधवी को खेत में निराई करते हुए एक मोहरा मिला। वह उसे घर लाई। रात को उसे स्वप्न हुआ कि वह मोहरा उसी थान देवता का है, जो साधु के भेस में उससे स्थान माँगने आया था। उसकी स्थापना वहीं की जाए जहाँ अनाज सूखने के लिए रखा था। अतः लोगों ने भुट्ठी गाँव के नड़ाधी नामक स्थान पर मंदिर का निर्माण करके इसे पूजना आरम्भ कर दिया।

थान देवता

गाँव : शिम, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : शिम।
भंडार : गाँव शिम में साढ़े तीन मंज़िल का भंडार है।



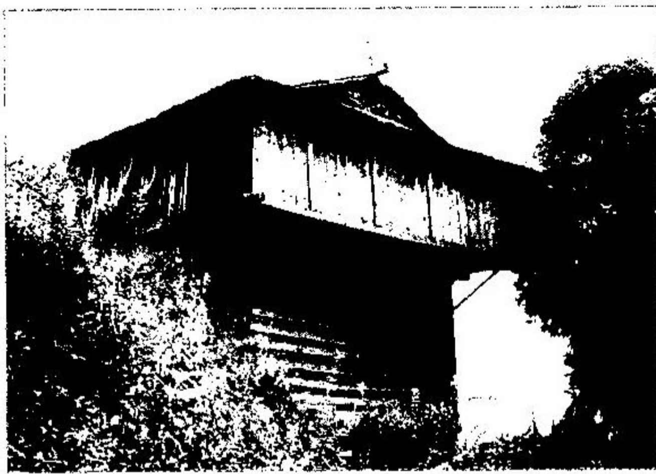
स्थापत्य : काठकुणी शैली का एक मंज़िल का वर्तमान मंदिर गाँव के किनारे एक टीले पर प्राचीन मंदिर के स्थान पर बनाया गया है। यह मंदिर उतनी ही भूमि पर है जितने पर पुराना मंदिर निर्मित था। इसके अंदर की *मघिरी* (गर्भगृह) को यथावत् रखा गया है जिसमें अष्टधातु की प्राचीन प्रतिमा स्थापित है। स्लेटों से ढकी मंदिर की छत के शीर्ष पर 'बदोर' लगा है। छत ढलवाँ शैली की है, जिसके ऊपर एक अन्य लघु छत जोड़ी गई है। मंदिर में काष्ठ कलाकृतियाँ हैं तथा इसकी छत से झालरें लटकी हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव डोभी, शिम, डोहलू नाला।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला की समिति।
न्याय प्रणाली : किसी के साथ अन्याय होने पर वह अपने विरोधी को लेकर देवता के मंदिर में जाता है। देवता के कारकुन उन दोनों को देव-प्रांगण में बुलाकर थौई पांधे (चबूतरे पर) खड़ा करते हैं। तब वे देवता का आह्वान कर दोनों में से एक को दोषी साबित करने का आग्रह करते हैं। जो दोषी होता है, वह स्वतः ही काँपने लगता है और वह उसी अवस्था में अपना दोष स्वीकार करके देवता से क्षमा माँगता है। देवता के कारकुन अपराध के अनुसार उसके लिए दंड निर्धारित करते हैं। बड़ा अपराध होने पर देवता स्वयं भी दंड देता है।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, केवल विशेष अवसरों पर, जब देवता का रथ सजा होता है तब प्रातः व सायं 'घोंडी-धड़छ' द्वारा पारम्परिक तरीके से देवरथ की पूजा होती है। इस समय सभी देव-वाद्ययंत्र भी बजाए जाते हैं।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिसके शीर्ष पर कलश और कलगी सजे होते हैं, जबकि अन्य देवताओं के रथों में प्रायः कलश या फिर कलगी ही लगी होती है।
मोहरे : एक मलेघा (मुख्य) मोहरा जो शिम गाँव के पछाडू खानदान की स्त्री को खेत में मिला था। माना जाता है कि इस मोहरे में देवता की समस्त शक्तियाँ समाहित हैं। अतः 'घाट' पड़ने पर भी देवता की अनुमति के बिना इसे नहीं बदला जाता। इस मोहरे के अतिरिक्त कुछ अन्य मोहरे भी हैं।
मेले- त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को एक दिवसीय *जेठा बिरशू* होता है। इसमें 'देऊ-खेल' के अतिरिक्त अन्य देऊ-कार (देव कार्यक्रम) भी होते हैं। काप-कापड़ी की कार्रवाई भी निभाई जाती है, जिसमें देवता के सभी वाद्ययंत्रों की विशेष धुनों पर देवरथ के साथ गूर लंगड़ाते हुए देवस्थान की परिक्रमा करता है। बैसाख मास के सात प्रविष्टे को दो दिवसीय *खनाणी मेला* लगता है। इसमें देऊ-कार के अतिरिक्त देऊ-खेल भी होती है।

जनश्रुति : किसी समय शिम गाँव के पछाड़ू खानदान की एक स्त्री अपने बाग में निराई कर रही थी। निराई करते हुए उसकी किल्लण (निराई करने का हत्थी युक्त एक उपकरण) अचानक किसी वस्तु से टकराई, जिससे आवाज़ आई *आयाह दादी*। यह सुनकर वहाँ थोड़ी और खुदाई करने पर उसे एक मोहरा मिला। घर आकर उसने वह मोहरा अनाज की कोठड़ (बक्सा) में रख दिया। सुबह उठ कर उसने देखा कि कोठड़ अन्न से भरपूर थी और मोहरा कोठड़ के ऊपर था। परिवार वालों ने इस चमत्कार के बारे में गाँववासियों से बात की। तब उन्होंने ग्राम देवता के रूप में स्वीकार कर इसे पूजना आरम्भ किया। लोगों की मन्नतें पूर्ण होने और उन्हें सुख-समृद्धि की प्राप्ति के कारण इसकी मान्यता आस-पास के क्षेत्र में भी हो गई। अतः इसकी 'हार' में अन्य गाँव भी जुड़ गए।

थिरमल

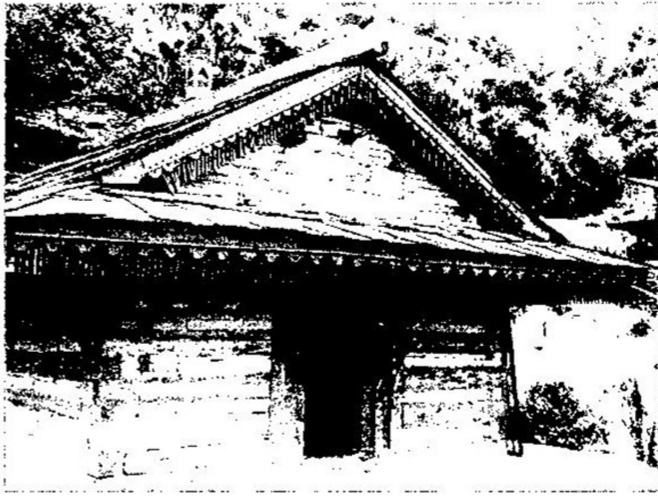
गाँव : धारा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : धारा।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर गाँव धारा में जंगल के मध्य स्थित है।
शाखा मंदिर : तंदला, सोईस।
अधिकार क्षेत्र : गाँव घौट, तंदला, धारा, शरन, उखनू के अलावा काईस गाँव के कुछ परिवार।
प्रबंध : कारदार, छटेरा, पालसरा व खटयाल की समिति।
न्याय प्रणाली : 'गुले' लगाकर, 'पोगले' डालकर।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। प्रत्येक मास की संक्रांति, पंद्रह तथा बीस प्रविष्टे और मेले-त्योहारों के अवसर पर ही धड़छ में बेठर धूप जलाकर 'घोंडी' बजाते हुए देवता की पूजा की जाती है।
रथ : पालकी रथ, जिसे एक व्यक्ति उठाता है।
मोहरे : दो। इनमें से एक मोहरा देवता का अपना है तथा दूसरा मोहरा इसके सहायक देवता बनाक्षी का है।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में मनाया जानेवाला सात दिवसीय *फागली* मुख्य त्योहार है। इसमें सात दिन तक प्रजा के प्रत्येक परिवार में से एक-एक व्यक्ति का मंदिर में रहना अनिवार्य है। प्रथम दिन सजी पालकी में देवता गाँव से आधा किलोमीटर दूर नरायंडी नामक स्थान पर जाता है, जहाँ इसकी पूजा होती है। उस वर्ष जिनके पुत्र हुए हों, वे देवता को भेडू की बलि चढ़ाते हैं। सत्तू, सूर तथा मांस का भोग बाँटा जाता है। शाम के समय देवता वापिस लौट आता है। जिन लोगों ने मनौती की होती है, पूर्ण होने पर वे देवता को घर पर आमंत्रित करते हैं। इसमें देवता के वाद्ययंत्र ही जाते हैं। श्रावण मास में खीर का भोग बाँटा जाता है। शुद्धि व शक्ति संचरण के लिए वर्ष में एक बार देवता तीर्थयात्रा पर मणिकर्ण जाता है। कुछ वर्षों के अंतराल में *काहिका* भी होता है।
जनश्रुति : तिब्बत से स्पीति के रास्ते देवता थिरमल अपने अन्य भाइयों सहित गुरु जमलू के साथ चंद्रखणी पर्वत पर आया। वहाँ अपने तप के बल से देवी महामाई से शक्ति प्राप्त कर धारा गाँव पहुँचा। देवता ने धारा-वासियों को अलौकिक शक्ति से प्रभावित कर के अपना स्थान बनाया और लोगों का इष्ट बना।

दशमी वारदा

गाँव : काईस, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : काईस।



स्थापत्य : ज़िला मुख्यालय से नौ-दस किलोमीटर की दूरी पर कुल्लू-मनाली के मध्य व्यास के बायें तट पर सड़क के किनारे लकड़ी-पत्थर से काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल के 'डेहरे' के भीतर सिंहवाहिनी देवी की संगमरमर की मूर्ति स्थापित है। माता की प्रस्तर निर्मित मूल प्रतिमा के खंडित हो जाने पर वर्ष 1992-93 में इस मूर्ति को स्थापित किया गया।

शाखा मंदिर : गाहर, तंदला, उखलू।

अधिकार क्षेत्र : सात 'हार'। इसमें निम्न गाँव आते हैं-तंदला, धारा, शरन, उखलू, घौट, काईस, सेऊबाग, चजोगा, बनोगी, फाड़मेहा तथा गाहर।

प्रबंध : कारदार मुख्य प्रबंधक है, जिसकी सहायता के लिए अन्य सदस्य होते हैं। प्रत्येक गाँव का एक प्रतिनिधि रहता है, जिनका चुनाव देवी की स्वीकृति से गाँववाले करते हैं।

न्याय प्रणाली : गूर तथा कारदार द्वारा 'पोगले' डालकर व 'गुले' लगाकर।

पूजा : यूँ तो प्रतिदिन होती है, परन्तु मुख्य पूजा मास के पंद्रहवें, बीसवें प्रविष्टे तथा संक्रांति को प्रातःकाल में होती है। रथ निकलने पर प्रातः-सायं पूजा की जाती है, जिसमें बेठर और गुग्गुल धूप का प्रयोग होता है। स्तुति के बोल केवल पुजारी ही जानता है।

रथ : देवदार की लकड़ी से बना दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके शिखर पर छह छत्र सुशोभित हैं। एक करडू, जिसे सिर पर उठाया जाता है। मोहरों को कठार (भंडार) से 'डेहरे' तक लाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

मोहरे : रजत निर्मित बीस। समय-समय पर इन्हें सुनार से ठीक करवाया जाता है। इसे धार बैठाना कहा जाता है।

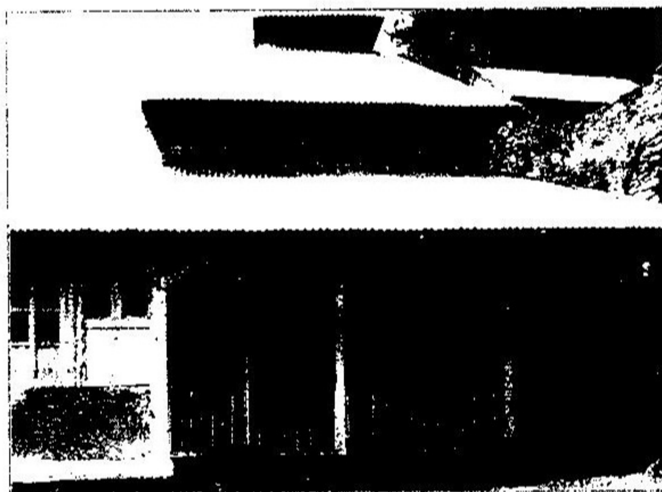
मेले-त्योहार : चैत्र मास में *कोन्हा बिरशू*, वैशाख मास में *बड़ा बिरशू*, जिसमें देवी का रथ मंदिर से सौह में आता है और 'देऊली' होती है। इस मेले में बनोगी, तंदला और धारा के देवता सम्मिलित होते हैं। आषाढ़ मास में *शाड़नू उत्सव*, जिसमें देवी और उसका सहायक देवता बणींडू देऊ अपने क्षेत्र गाँव काईस में एक निर्धारित स्थान की परिक्रमा करते हैं। इसके वाद बाथला नामक स्थान पर 'देऊई' होती है, जिसमें घौट गाँव की नड़ जाति की स्त्रियाँ नृत्य करती हैं। इसके बाद देवी मंदिर में विराजती है। श्रावण में माता के मंदिर में देऊली होती है, जिसके बाद गूर के माध्यम से देवी सभी लोगों को अभिमंत्रित सरसों बाँटती है। इसे लोग अपने घर की छतों पर फेंकते हैं, मान्यता है कि इससे भूत-प्रेतों से रक्षा होती है। पाँच-दस साल के अंतराल में *छोटा काहिका* और अस्सी-नब्बे साल के बाद *बड़ा काहिका* आयोजित किया जाता है। *बड़ा काहिका* का आयोजन राऊगी के देवता रोमणू नाग द्वारा किया जाता है, क्योंकि दशमी वारदा अपने डेहरे में ही रहती है। इसमें कुल्लू के राजा भी सम्मिलित होते हैं। महल से 'ढाल' आती है। डेहरे के पास एक लम्बा स्तम्भ लगाया जाता है, जिसे ढ़ोज (ध्वज) कहते हैं। यह दयार का पूरा वृक्ष होता है, जो धारा गाँव के जंगल से लाया जाता है।

जनश्रुति : प्राचीनकाल में किसी गाँव में तोंदू नाम का व्यक्ति रहता था। उसकी पत्नी का नाम भोटली था। संतान सुख से वंचित होने के कारण वे अत्यंत दुःखी रहते थे। एक दिन तोंदू को स्वप्न में एक साधु ने दर्शन देकर कहा कि वह अपने गाँव का नाम तंदला रखे और गाँव के पीछे अमुक स्थान पर दबे हुए देवी के मोहरे को घर लाकर प्रतिदिन उसकी पूजा करे तो उसे अवश्य संतान की प्राप्ति होगी। साधु के निर्देशानुसार तोंदू उस मोहरे को अपने घर

ले आया और उसकी पूजा करने लगा, जिससे उसके घर पुत्र पैदा हुआ। इससे उपकृत होकर उसने तंदला में मंदिर बनवाकर उसमें देवी की स्थापना की। बाद में देवी ने काईस को अपना मुख्य स्थान बनाया। कहते हैं कि आज जहाँ माता का भंडार है, वहाँ राणाओं का गढ़ था और प्रजा उनके आतंक से दुःखी थी। देवी ने उनका नाश कर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया। ख्याति फैलने पर देवी को अन्य गाँवों के लोग भी मानने लगे। देवी दशमी वारदा कई परिवारों की कुलदेवी है और पहला बेटा होने पर उसके मुंडन के लिए वे परिवार यहाँ आते हैं।

दशमी वारदा

गाँव : गाहर, **तहसील :** कुल्लू।



मूल स्थान : गाँव काईस।

मंदिर एवं भंडार : गाहर।

स्थापत्य : टीन से छाई तीन ढलवाँ छतोंवाला मंदिर।

शाखा मंदिर : गाँव तंदला।

अधिकार क्षेत्र : गाँव काईस, तंदला, गाहर, सेऊबाग।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'मलोही' व 'पोगले' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर, गुग्गुल धूप व दीप से।

रथ : फेटा।

मोहरे : रजत निर्मित बीस।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में गाहर में *बिरशू* मेला, मार्गशीर्ष मास में *शौइरी* त्योहार।

जनश्रुति : यह देवी दश महाविद्याओं में दसवीं विद्या कमलात्मिका मानी जाती है। देवी भारथा में वर्णन आता है कि *सरगा न चूड़ी, धौरती न पन्नी* यानी स्वर्ग से आई और धरती पर पली। इसका मूल स्थान काईस में है। गाहर गाँव में इसकी उत्पत्ति के सम्बंध में बताते हैं कि एक बार किसी लड़की को खेत में एक मोहरा मिला। उसके परिवारवालों ने उसे माश की आधी भरी कोठड़ (बॉक्स) में रखा। अगले दिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह कोठड़ माश से लबालब भर गयी थी। इस बारे में पूछताछ करने पर पता चला कि यह देवी दशमी वारदा है। इसे भागासिद्ध देवी की बड़ी बहन माना जाता है। कहते हैं कि दशमी वारदा ने भागासिद्ध को 10 वर्षों तक पीठ में उठाकर घुमाया और पाला है। आज भी जब देवी भागासिद्ध मनाली की यात्रा पर जाती है तो देवी दशमी वारदा इसे रूमटू सौह तक छोड़ने जाती है।

दुर्गा माता

गाँव : बंदरोल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : बंदरोल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित 8x6 फुट का एक मंज़िल का मंदिर जिसकी ढलवाँ छत पर लगे बदोर पर लोहे के त्रिशूलों से युक्त तीन कलश हैं। बदोर के अगले भाग यानी पूर्व की ओर एक लोहे की चिड़िया बनाई गई है। मंदिर के भीतर कोई मूर्ति नहीं है, केवल माता की पालकी रखी जाती है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव जोल तथा बंदरोल।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी तथा भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं।

रथ : अखरोट की लकड़ी की पालकी।

मोहरे : आठ। चार चाँदी के तथा चार पीतल के।

मेले-त्योहार : वर्ष में दो मेले लगते हैं। भादों मास में *ब्रौती* मेला जो गौहरी देऊ के मंदिर के पास लगता है। मार्गशीर्ष पूर्णिमा को *मंघर पुन्नू।* दोनों मेलों में देवी की पालकी पूरे वाद्ययंत्रों के साथ निकलती है।

जनश्रुति : दुर्गा माता बंदरोल वासियों की इष्ट देवी है। प्राचीनकाल में यह गुमेरे वंश के किसी व्यक्ति के घर में प्रकट हुई थी। उस वंश के समाप्त होने पर अब दूसरे वंश के लोग देवी की पूजा करते हैं।

दुर्गा माता

गाँव : बैंची, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बैंची।



स्थापत्य : अनुमानतः उन्नीसवीं शताब्दी में काष्ठ प्रस्तर से निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर 8x8 फुट के चबूतरे पर बनाया गया है। 'बदोर' युक्त ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। बदोर पर काष्ठ के तीन कलश स्थापित हैं, जिन पर क्रमशः लोहे का मोर, त्रिशूल तथा पीतल का छत्र लगे हैं। मंदिर के पूर्व की ओर देवदार का ध्वज लगा है। भीतर देवी की दो मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिनमें से प्रस्तर की लगभग एक फुट ऊँची प्राचीन मूर्ति व दूसरी संगमरमर की जो ऊँचाई में लगभग तीन फुट है।

अधिकार क्षेत्र : बैंची।

प्रबंध : कारदार व पुजारी द्वारा।

न्याय प्रणाली : देवी द्वारा अपने गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन दोनों समय घंटी-धड़छ से।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, केवल घंटी व धड़छ हैं, जो कारदार के पास रखे जाते हैं। इनका प्रयोग पूजा के समय किया जाता है।

मेले-त्योहार : केवल *रामनवमी* का त्योहार मनाया जाता है।

जनश्रुति : 1920 ई. के लगभग जब इस क्षेत्र में महामारी फैली, उस समय बैंची के लुहार परसु नकटा को एक दिन देऊखेल आई और उसने बताया कि दुर्गा माता यहाँ के लोगों की महामारी से रक्षा करने हेतु आई है। गाँववालों ने मनौती की कि यदि वे महामारी से बच गए तो सदा देवी को पूजते रहेंगे। देवी की कृपा से वहाँ महामारी का प्रकोप समाप्त हुआ और तब से बैंची गाँव में माता की पूजा आरम्भ हुई। गाँव शिरढ़ के नेगी फिरदास ने भी माँ से अपने गाँव की रक्षा हेतु प्रार्थना की और वांछित फल प्राप्त होने पर उसने माँ के मंदिर के लिए बैंची में चार बिस्वा भूमि दान की, जिस पर मंदिर का निर्माण किया गया।

नाग देवता

गाँव : माहिष, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : माहूट।



मंदिर : माहिष।
भंडार : कोट-आगै।
स्थापत्य : वृक्षों से घिरा काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का एक मंज़िल का मंदिर जिसके आगे खुला बरामदा है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। बरामदे के बाहर ऊपर की ओर लगे काष्ठ में नागों की आकृतियाँ बनी हैं।
शाखा मंदिर : लारीकोट, पुईद।
अधिकार क्षेत्र : लारीकोट, माहिष, भ्रैण, फाटी खराहल, कशावरी।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन 'घोंडी-धड़छ' व वाद्ययंत्रों के साथ।
रथ : नहीं है।
मेले-त्योहार : माहिष गाँव में देवता की केवल पूजा की जाती है, मेले-त्योहार माहूट धार में मनाए जाते हैं।
जनश्रुति : कदाचित् भगवान् शिव धौलाधार पर्वत पर तपस्या में लीन थे। उसी समय उनके किसी भक्त ने उन्हें पुकारा। भगवान् शिव को ध्यान में बैठा देख नाग देवता मन ही मन उनका आशीर्वाद लेकर भक्त की रक्षा के लिए चल पड़ा और भुबू जोत होकर फाटी खराहल के थरमाहण नामक स्थान में जाकर उसने शिव भक्त को तंग कर रहे दैत्य का वध किया और फिर मथाण में बिजली महादेव में जाकर लीन हो गया। उन्हीं दिनों मथाणी ब्राह्मण और दाड़ूथाची ब्राह्मण में कुछ भूमि-विवाद था। दोनों का मुकद्दमा पुरानी रियासत नगर में था। मुकद्दमे की सुनवाई वाले दिन मथाणी ब्राह्मण घरवालों से यह कहकर चल पड़ा कि 'यदि मैं हारा तो कुकड़ी सेरी में पलाल को आग लगा कर उसमें अपनी जान दे दूँगा। वहाँ धुआँ देखकर तुम गाँव में आग लगा देना।' यह खबर किसी तरह दाड़ूथाची के ब्राह्मण को मिल गई। मथाणी ब्राह्मण मुकद्दमा जीत गया, परन्तु दाड़ूथाच के ब्राह्मण ने नगर से चल कर पहले ही कुकड़ी सेरी में पलाल इकट्ठा करके आग लगा दी।

मथाणी ब्राह्मण के परिवारवालों ने धुआँ देखा तो गाँव में आग लगा दी। नाग देवता इसे सहन न कर सका, वह बिजली महादेव से आज्ञा ले कर वहाँ से चला गया और शलाधरा नामक स्थान में पहुँचा, जहाँ राणाओं का शासन था। उन्होंने नाग को वहाँ रहने की अनुमति नहीं दी। तब नाग देवता बिजली महादेव के बिल्कुल सामने महादेव की धार माहूट में चला गया, जहाँ भगवान् शंकर ने अपनी 'जेठी-हार' लारीकोट देवता को दे दी। लारीकोट का ब्राह्मण ही नाग देवता के पूजा-पाठ का कार्य करता था। एक बार घर में अशौच होने के कारण वह देव-पूजा नहीं कर सका। अतः उसने पूजा का सारा कार्य चंसारी गाँव के ब्राह्मण को सौंपा। उसे भी कभी मौसम खराबी या अन्य कारणों से माहूट पहुँचना मुश्किल होता था। नाग देवता से उसका समाधान पूछने पर देवता ने कहा कि माहिष गाँव में भी उसका स्थान है, वहीं उसकी पूजा की जाए, परन्तु विशेष त्योहार-उत्सव में पूजा माहूट में ही की जाए। तब ब्राह्मण ने माहिष में ही नाग देवता की पूजा आरम्भ की तथा कुछ वर्ष बाद लोगों ने वहाँ मंदिर का निर्माण किया।

नारायण

गाँव : कमांद, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : गाँव मुथल।
मंदिर : कमांद के नरैंडी नामक स्थान पर।
भंडार : पड़ासर देऊ, कमांद के भंडार में ही नारायण



देवता का भंडार है।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बने एक मंज़िल के ढलानदार छतवाले पुराने मंदिर के जीर्ण-शीर्ण होने के कारण उसके स्थान पर उसी स्वरूप में नए मंदिर का निर्माण किया गया है।

अधिकार क्षेत्र : खड़ीहार फाटी के गाँव करेरी, मुथल, थलोगी, पधर, कमांद, सिलंग।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर, छत्र के इशारे तथा 'पोगले' द्वारा।

पूजा : हर संक्रांति की सुबह और मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर प्रातः-सायं 'धड़छ' में धूप जलाकर घंटी बजाते हुए पंचोपचार विधि से पूजा होती है। पुजारी तथा प्रजाजन शंख वादन व देवस्तुति करते हैं। घी-दूध का प्रसाद चढ़ाया जाता है।

रथ : देवता का केवल रजत निर्मित छत्र है। इसे मेले व यात्रा के दौरान कहार द्वारा सिर पर उठाया जाता है।

मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : नारायण यहाँ का मूल देवता है और पड़ासर देऊ, कमांद इसका सहयोगी देवता है। अतः ये दोनों देवता साथ-साथ ही रहते हैं और इनके मेले-त्योहार भी इकट्ठे मनाए जाते हैं। केवल चैत्र संक्रांति को नारायण देवता का छत्र अकेला निकलता है। इस दिन छत्र को नरैंडी स्थित मंदिर में ले जाया जाता है। वहाँ पूजा-अर्चना के बाद 'हारियान' पूरे वर्ष के कार्यक्रमों के बारे में देवता से विचार-विमर्श करते हैं, फिर भोज का आयोजन होता है। मेले-त्योहार के लिए देखें- पड़ासर देऊ कमांद।

जनश्रुति : नारायण मुथल गाँव वासियों का कुल देवता था। एकांतप्रिय होने के कारण एक बार गाँव में शोरगुल होने से वह वहाँ से चला गया और कमांद गाँव के नीचे पहुँचा। यहाँ उसे मुर्गे की बाँग सुनाई दी। इसे सुनकर उसने वह स्थान भी छोड़ दिया और कमांद के घने जंगल में नरैंडी नामक स्थान को अपना निवास बनाया।

नारायण

गाँव : जनाहल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : चौहार घाटी।

मंदिर : जनाहल।

भंडार : जनाहल गाँव के गौहरी देऊ के भंडार में।

स्थापत्य : चारों ओर को ढलानदार छतवाला तीन दीवारों का खुला मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : शिलीराजगिरी पंचायत के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला, बांठ की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : पर्व के दिन प्रातः-सायं तथा हर संक्रांति को केवल प्रातः काल में ही। इसके अतिरिक्त प्रत्येक मास के प्रथम वीरवार अथवा रविवार को प्रातः समय पूजा होती है।

रथ : फेटा, जिसके अग्रभाग में तीन पंक्तियों में तीन-तीन रजत निर्मित मोहरे लगाए जाते हैं तथा मुख्य मोहरा रथ की गोदी में लगता है।



मोहरे : एक मुख्य मोहरा नारायण का है। शेष रजत निर्मित नौ मोहरे गौहरी देऊ, गाँव जनाहल के साथ साझे हैं।

मेले-त्योहार : शुचिता प्रिय होने के कारण देवता अपने मंदिर के अलावा कहीं भी नहीं जाता। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को होनेवाले पर्व पर रथ को सजा कर देऊखेल होती है। शाम को पूजा के बाद रथ से मोहरे उतारकर भंडार में रख दिए जाते हैं।

जनश्रुति : किसी समय चौहार घाटी के कुछ निवासी बसने के उद्देश्य से जनाहल गाँव आए तो अपने कुल देवता नारायण को भी साथ ले आए। उस समय वहाँ देवता गौहरी देऊ (वीरनाथ) का वास था, अतः वे कुल देवता नारायण के साथ-साथ वीरनाथ को भी पूजने लगे। नारायण के चमत्कारों से प्रभावित होकर उनके निमित्त समस्त गाँववासियों ने एक मंदिर का निर्माण करके नारायण को कुल-देवता और वीरनाथ को स्थान देवता के रूप में पूजना आरम्भ किया।

नारायण

गाँव : नरहाच, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नरहाच।

स्थापत्य : काठकुणी शैली का चालीस वर्ग फुट में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर गाँव से दूर नरायंडी वन के मध्य है जो काष्ठकला का सुन्दर नमूना है। मंदिर की ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। परिसर के कुछ भाग में संगमरमर तथा शेष में सादा पत्थर बिछाए गए हैं। साथ ही एक बड़ा 'मौढ़' है, जहाँ मेले-उत्सवों के समय 'चरू' बनाया जाता है।



अधिकार क्षेत्र : गाँव माछंग, तीरंग और नरहाच।

प्रबंध : देवता के चार कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : कारदारों से फैसला न होने पर गूर द्वारा देव-रथ के माध्यम तथा 'मलोही' विधि से। इनमें से रथ द्वारा किए गए न्याय को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

पूजा : केवल भादों में पूरा मास पूजा की जाती है, प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। इसके अतिरिक्त मेले-उत्सवों के अवसर पर पुजारी 'घोंडी-धड़छ' के साथ देवता की पूजा करता है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : भादों मास की संक्रांति को *शनौहली* उत्सव, जिसमें शाम के समय देवता के निमित्त अनेक बलियाँ दी जाती हैं और उसका 'चरू' बनाकर सब में बाँटा जाता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में देवता का कशु नारायण से मिलन होता है, तत्पश्चात् उत्सव की समाप्ति होती है। भादों के शुक्लपक्ष की तृतीया या पंचमी को *फुँगणी* मेला होता है जिसमें देवता योगिनियों के स्वागत के लिए मंदिर से बाहर निकलता है। इस मेले में बनोगी गाँव का कशु नारायण भी सम्मिलित होता है, किन्तु उसका रथ नहीं आता, प्रतीक रूप में मात्र 'घोंडी-धड़छ' ही लाए जाते हैं। इस अवसर पर नारायण देवता नरहाच के सारे हारियान सम्मिलित होते हैं। मार्गशीर्ष में *महिणा* मेला, जिसमें देवता अपनी प्रजा से मिलता है। आठ-दस वर्षों के पश्चात् देवता गाँव की परिक्रमा के लिए जाता है और वापिस लौटने पर *'ज़ौग'* का आयोजन होता है।

जनश्रुति : किसी समय नरहाच गाँव के राणा ने वहाँ आतंक फैला रखा था। उसके अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए लोगों ने प्रभु से प्रार्थना की। तब उससे छुटकारा दिलाने के लिए एक साधारण मनुष्य के रूप में यहाँ

नारायण प्रकट हुए और लोहे की बनी एक भारी वज़न की गदा से उस राणा का संहार किया। तत्पश्चात् एक वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया। देवता की शक्ति को मानकर वहाँ के लोगों ने उस स्थान पर मंदिर का निर्माण किया। यहाँ आज भी मंदिर में स्थापित उस वृक्ष के मूल भाग की देवता के रूप में पूजा होती है।

नारायण

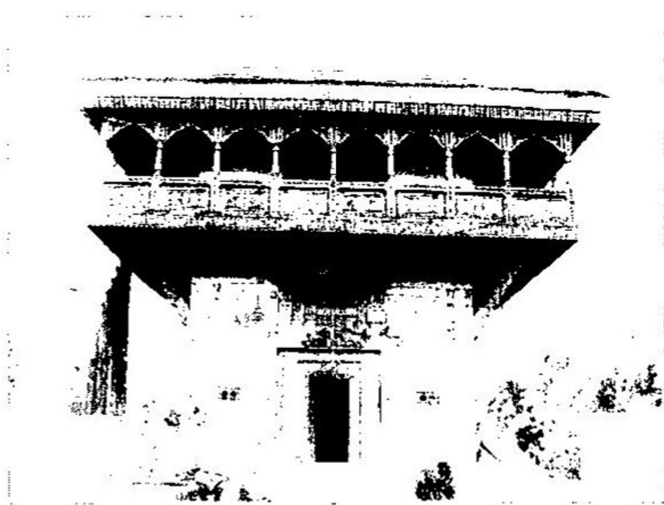
गाँव : पुलगा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पुलगा।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव पुलगा, तुलगा और कालगा।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, छटाली की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर व पुजारी द्वारा।
पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पंचोपचार विधि से।
रथ : करड़।
मोहरे : केवल एक।
मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास में देवता अपनी हार में घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है।
जनश्रुति : कदाचित् एक गड़रिया पुलगा गाँव के पीछे जंगल में भेड़ें चरा रहा था। उसे देवदार के पेड़ के नीचे अष्टधातु की एक मूर्ति मिली। वह उसे अपने गाँव में लाया। गाँववासियों ने प्रार्थना की कि यदि वह देवता है तो किसी व्यक्ति में प्रवेश करके अपना परिचय दे अन्यथा वे उसे पार्वती नदी में बहा देंगे। तब देवशक्ति ने एक व्यक्ति में प्रवेश कर बताया कि वह नारायण देवता है और इस गाँव में रहना चाहता है। लोगों ने वहाँ उसकी स्थापना करके उसे पूजना आरम्भ किया।

नारायण

गाँव : बड़ी शिल्ह, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बड़ी शिल्ह।
स्थापत्य : गाँव के नीचे की ओर प्राचीन मंदिर को उखाड़ कर वर्ष 1985 में काष्ठ-प्रस्तर से नए मंदिर का निर्माण किया गया है। इसके भीतर भगवान् नारायण की चतुर्भुज मूर्ति स्थापित है, जिसके कानों में कुंडल दर्शाये गए हैं। भंडार गाँव के मध्य स्थित है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी शिल्हीहार जिसमें आठ गाँव आते हैं।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : देवता द्वारा।
पूजा : केवल मेले-त्योहारों के अवसर पर।
रथ : अखरोट की लकड़ी का बना फेटा रथ, जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।
मोहरे : बारह। नौ रजत निर्मित तथा तीन पीतल के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को फागली जिसमें 'हारका' होता है और गूर देव-भारथा तथा बर्शोहा सुनाता है। वैशाख मास के नवरात्रों में एक दिन का मेला लगता है जिसमें फुगणियाँ भी सम्मिलित होती हैं। इसमें देवता रथ पर सज्जित होकर निकलता है। नारायण देवता काली नाग शिरढ़ के काहिका मेले में सम्मिलित होता है। मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को *मंघर पुन्नू*। इस दिन भी हारका होता है। तत्पश्चात् मंदिर के कपाट फाल्गुन मास तक बंद हो जाते हैं।
जनश्रुति : फाटी शिल्हीहार में देवता को प्राचीनकाल से ही पूजा जाता रहा है। ऐसी मान्यता है कि देवता के प्राचीन मंदिर-स्थान पर किसी समय ग्लेशियर आने से देवता सहित सब कुछ नष्ट हो गया था, बाद में लोगों ने मंदिर, मूर्ति तथा नए रथ का निर्माण किया। नारायण देवता अपने प्राचीन स्थल पर जाकर आज भी बार-बार शीश नवाता है।

नारायण

गाँव : मेहा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : मेहा।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का



यह मंदिर गाँव के बिल्कुल बाहर दक्षिण दिशा में एक ऊँचे व मनोरम स्थल पर स्थित है। लगभग दो दशक पूर्व निर्मित यह मंदिर भले ही बहुत पुराना नहीं है, लेकिन इसमें काष्ठ पर उकेरे गए देवी-देवताओं के तथा अन्य चित्र दर्शनीय हैं। छत के साथ लटकीं काष्ठ की झालरें सुंदर हैं।

शाखा मंदिर : गाँव भाट मेहा।

अधिकार क्षेत्र : गाँव मेहा, भाट मेहा, भुजणु, गुआड़, थौलगण।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से, 'मलोही, पांगे, गैटी तथा पूछ' से हर विवाद को निपटाया जाता है।

पूजा : मंदिर में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। देवरथ की पूजा तभी होती है जब विशेष अवसर पर रथ को सजाया गया होता है। तब पुजारी द्वारा 'घोंडी-धड़छ' के साथ प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा की जाती है। पूजा में केवल बेठर धूप का ही प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम जल के छींटे देकर मोहरों को कुंकुम का टीका लगाया जाता है। इसके पश्चात् अक्षत व पुष्प चढ़ाकर वंदना की जाती है। पुजारी दायें हाथ से घोंडी बजाते हुए बायें हाथ से धड़छ को बायीं से दायीं ओर गोल घुमा कर पूजा करता है। इस अवसर पर चंवर तथा मोरछला भी झुलाया जाता है।

रथ : दो अर्गलाओं युक्त फेटा। शीर्ष पर शीश फूल।

मोहरे : तेरह। इनमें से चार अष्ट-धातु के तथा नौ रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : भादों मास की संक्रांति को दो दिवसीय *शाऊणी जाच* होती है। इस अवसर पर गुआड़ा गाँव तक रथ यात्रा निकलती है। वहाँ देवता की कई रस्में निभाई जाती हैं। सर्वप्रथम छड़ी के साथ 'देऊ-खेल' होती है। यह इसकी विशेषता है, क्योंकि क्षेत्र के अन्य किसी भी देवता के समक्ष छड़ी से देऊखेल नहीं होती। फाल्गुन मास में दो दिवसीय *फागली* मनाई जाती है। यहाँ अधिकांश स्थानों में फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी को *फागली* मनाई जाती है, किन्तु मेहा गाँव में इतना तय है कि फागली तो फाल्गुन मास में होगी, परन्तु तिथि का निर्धारण देवता द्वारा किया जाएगा। इस अवसर पर देवता को विशेष तौर पर सुरा का भोग लगाया जाता है।

जनश्रुति : हुरंग नारायण, दराल से सम्बंधित जनश्रुति के अनुसार पाँच देवी-देवता अपनी मान्यता स्थापित करने के लिए जब भिन्न-भिन्न दिशाओं में निकले तो नारायण देवता को अपने लिए मेहा नामक स्थान उचित लगा। यहाँ *सौरा बौगयै* में एक मोहरे के रूप में वह भूमि से प्रकट हुआ तो खेत में काम करती हुई एक स्त्री को मिला। उस स्त्री ने वह मोहरा घर लाकर अन्न की एक कोठड़ में रख दिया। उसके बाद घर में अन्न की वृद्धि देखकर उसने इसे देवशक्ति के रूप में पूजना आरम्भ किया। धीरे-धीरे देवता ने अनेक चमत्कार दिखाकर पहले ग्रामदेवता तथा कालांतर में क्षेत्र-देवता के रूप में अपनी मान्यता स्थापित की।

नारायण

गाँव : लोट, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : गाँव कमांद।

मंदिर एवं भंडार : लोट।

स्थापत्य : तख्तों से ढकी छत वाले काष्ठ-प्रस्तर निर्मित स्थानीय शैली के मंदिर का अग्रभाग खुला है।

शाखा मंदिर : कमांद से लोट गाँव के रास्ते में शताणग तथा मारगन सेरी नामक स्थान में। मेले के दौरान देवता इन दोनों ही मंदिरों में जाता है।



अधिकार क्षेत्र : पूरी बाराहार पंचायत।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, पालसरा, कठियाला, बांठ तथा निशानबरदार की समिति।

न्याय प्रणाली : लड्डू तथा पोगले डालकर, गूर के माध्यम से, देवरथ द्वारा। देवरथ प्रक्रिया में रथ को कंधे पर उठाकर प्रश्न पूछे जाते हैं और रथ हाँ या ना में उत्तर देता है।

पूजा : जब देवता बाहर निकलता है तो प्रातः-सायं पारम्परिक तरीके से पूजा होती है। इसके अतिरिक्त हर संक्रांति के दिन भंडार में केवल प्रातः एक समय ही पूजा होती है। यदि वीरवार या रविवार को संक्रांति आए तो मास में केवल एक दिन पूजा होती है अन्यथा जेठे वीरवार या रविवार में से जो पहले आता है, उस दिन भी पूजा होती है।

रथ : पुराना रथ छत्र आकृति का है, जिसे सिर पर उठाया जाता है। रजत निर्मित इस छत्र के चारों किनारों पर लघु छत्र शोभित होते हैं। अब देवता का दूसरा खड़ा रथ भी बनाया गया है। इसके चारों ओर चाँदी के दो-दो मोहरे सजाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त रथ के अग्रभाग में मुख्य मोहरा लगता है। शीर्ष भाग में चाँदी का छत्र शोभायमान होता है।

मोहरे : एक मुख्य मोहरा तथा आठ रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* उत्सव, श्रावण मास में *शाउणी* जाच।

जनश्रुति : कमांद गाँव से लोट गाँव में ब्याही एक स्त्री किसी समय पड़ासर देऊ के कमांदी पोर (कमांद का पर्व) अवसर पर अपने मायके आई हुई थी। उसे देव कार्रवाई सम्पन्न होने से पूर्व ही भूख लग गई और उसने अपने मायकेवालों से भोजन माँगा। उन्होंने उसे देव कार्रवाई के बीच में खाना देने से इनकार कर दिया और कहा कि तुम्हारा अपना देवता तो है नहीं, हमारे देवता का भी अपमान कर रही हो। तब वह स्त्री पानी लाने के बहाने घर से निकली और नारायण देव कमांद मंदिर से पिंडी को किलटे में डालकर अपने गाँव की ओर चल पड़ी। रास्ते में उसने शताणग तथा मारगन सेरी नामक स्थान में विश्राम किया। दोनों स्थानों से किलटा न उठने पर स्त्री ने देवता से साथ चलने की विनती की। लोट पहुँचने पर उस स्त्री को खेल आई और कहा कि शताणग और मारगन सेरी में भी उसके स्थान बनाए जाएँ। तब लोगों ने लोट गाँव के साथ इन दोनों स्थानों में भी मंदिर का निर्माण किया।

नेऊली राणी

गाँव : नेऊली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नेऊली।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेटें बिछी हैं। मंदिर निर्माण में लगी लकड़ी पर सुन्दर नक्काशी की गई है।



परिसर में एक तालाब है। साथ ही सराय बनी है।

अधिकार क्षेत्र : नेऊली।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, जठेरा, कठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता से 'पूछ' डालकर, जिसका समाधान देवता गूर के माध्यम से करता है।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से पुजारी द्वारा।

रथ : पालकी।

मोहरे : केवल एक मूर्ति।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* उत्सव।

जनश्रुति : नेऊली रानी का सम्बंध कुल्लू के राजवंश से रहा है। किसी समय कुल्लू के राजा का दूसरा विवाह जम्मू की राजकुमारी से हुआ, जिसके साथ दहेज में कुछ दासियाँ भी आईं। विवाह के कुछ ही समय बाद किसी ने ईर्ष्यावश राजा से शिकायत की कि रानी चरित्रहीन है। यह सुनकर बिना छानबीन किए ही राजा ने रानी को ज़िन्दा दफनाने के आदेश दिए और उसकी सभी दासियों को भी मरवा दिया। ऐसा जघन्य अपराध करने के कारण राजा के साथ अनोखी घटनाएँ घटने लगीं। इस सम्बंध में पंडित से पूछने पर ज्ञात हुआ कि राजा को रानी की हत्या करने का दोष लगा है। यदि वह उसकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे तो उसे इस दोष से मुक्ति मिल सकती है।

पंडित के कथनानुसार राजा ने रानी की मूर्ति बनवाकर धारा गाँव में स्थापित की। कुछ समय पश्चात् जुआणी गाँव में रानी ने मंदिर बनाने का दृष्टांत दिया। मंदिर बनाने पर वहाँ जलस्रोत निकला, जिस कारण जुआणी के स्थान पर वहाँ का नाम नेऊली रखा गया। गाँववासी रानी को देवी के रूप में पूजने लगे और राजा ने रानी के नाम 500 बीघा भूमि का पट्टा दिया।

अन्य सूचना : जब मणिकर्ण में 'धौज़' लगती थी तो रानी की मूर्ति को पालकी में सजाकर तीर्थयात्रा के लिए वहाँ ले जाया जाता था। 'धौज़' पौष मास की *पूर्णिमा* को लगती थी। वर्ष 1946 के इस उत्सव में जब रानी मणिकर्ण गई तो पहाड़ों पर बर्फ़ पड़ने के कारण वापिस आना कठिन हुआ। तब साथ गए लोगों ने देवी से कहा कि जंगल के रास्ते जाना खतरे से खाली नहीं है, परन्तु देवी महल से होकर नहीं जाना चाहती थी। अतः कठिनाइयाँ झेलते हुए वे वन मार्ग से ही लौटे। वर्ष 1963 में जब राजा भगवत सिंह मणिकर्ण गए तो नेऊली रानी से कुल्लू के रास्ते आने की प्रार्थना की। पाप-मुक्ति हेतु 'छिद्रा' किया गया। तब रानी कुल्लू राजा के महल से होकर पहली बार नेऊली आई।

नैना भगवती : नागिन

गाँव : मणिकर्ण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : मणिकर्ण।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से मेरु संयोजन शैली में निर्मित मंदिर जिसके काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : मणिकर्ण, बरेऊना, शांगणा, क्याणी, झीरी बेहड़, शशकड़, बलारगा, चोझ और गोझ।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।

पूजा : नित्य प्रति पंचोपचार विधि से।

रथ : दो अर्गलाओं से उठाया जाने वाला फेटा रथ।

मोहरे : सोलह। इनमें से तेरह रजत निर्मित तथा तीन अष्टधातु के हैं।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू*

मनाया जाता है। इस दिन देवी घर-घर जाकर धूप ग्रहण करती है, ज्येष्ठ मास में जौ की फसल आने पर *सलाहर* नामक पर्व मनाया जाता है, श्रावण व आश्विन मास की संक्रांति को देवी धूप ग्रहण करती है, फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष से पाँच दिवसीय *फागली* मेले का आयोजन होता है। इसमें पहले दिन जागरा, दूसरे दिन देव वाणी तथा अगले तीन दिन देव कार्यवाही के साथ नाटी का आयोजन होता है।

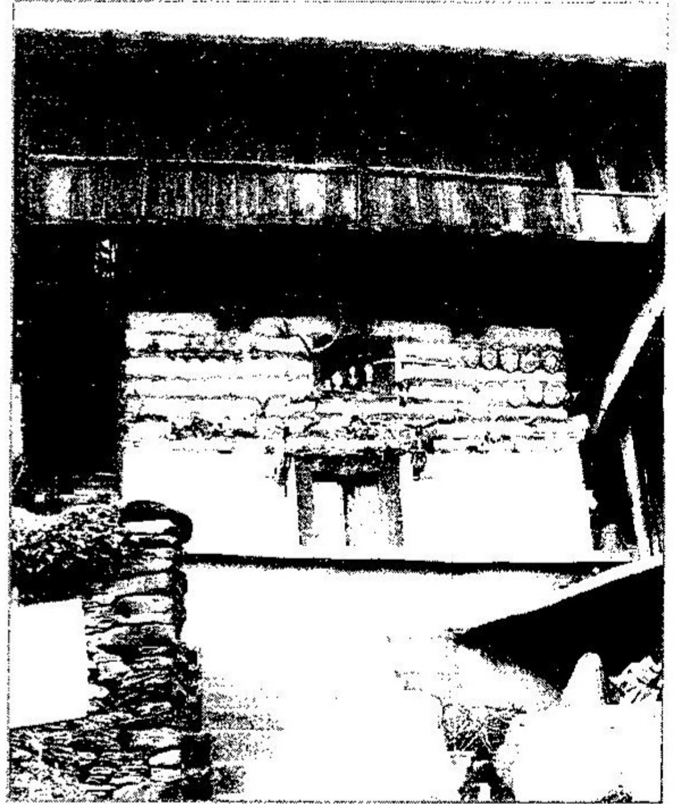
जनश्रुति : किसी समय मणिकर्ण में नौड़ परिवार में एक बुढ़िया और उसका गूँगा बेटा रहते थे। गूँगा प्रतिदिन ब्रह्मगंगा के उस पार शाँगणा गाँव की सुआरग नाम की सेरी में पशु चराने के लिए ले जाया करता था। वहाँ चार गड्ढों वाली एक चट्टान थी। गूँगे की एक गाय दोपहर के समय वहाँ जाती और चारों गड्ढों को अपने दूध से भर आती थी। तब एक नागिन आ कर उस दूध को पी जाती थी। एक दिन गूँगे को बहुत भूख लगी और वह एक गड्ढे से दूध पीने लगा। अचानक एक नाग ने आकर उसकी जीभ डस दी। डसते ही गूँगे को खेल आई और वह दौड़ता हुआ गोझ गाँव में पहुँचा और उसने बोलना शुरू कर दिया। उसी दिन बुढ़िया को सुआरग सेरी के एक खेत में काम करते हुए चार छोटे-छोटे मोहरे मिले। उन्हें घर लाकर उसने चीणी (सावाँ की प्रजाति का अन्न) की कोठरी में रखा। तब गूँगे को घर में न देख कर उसे ढूँढते-ढूँढते वह गोझ गाँव पहुँची। वहाँ गूँगे को बोलते हुए देख कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोल रहा था कि गाँव में नैना भगवती मोहरे के रूप में प्रकट हुई है, उसे मान्यता दी जाए। तब गाँववासियों ने बुढ़िया को मिले मोहरों को देवी रूप में पूजना आरम्भ किया।

पंचाली नारायण

गाँव : ग्रामग, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : ग्रामग।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का



किलानुमा मंदिर। इसकी छत पौट (अनघड़े पत्थर) से ढकी है। मंदिर की तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है, जो लकड़ी के तख्तों से बंद किया गया है। मंदिर की धरातल मंज़िल में देवता के वाद्ययंत्र रखे जाते हैं, उससे ऊपर की मंज़िल, जिसे *उघण* कहते हैं, उसमें देवता का अन्न भंडार है। तीसरी मंज़िल में पज़ियारा के रहने का स्थान है। सबसे ऊपर की आधी मंज़िल, जिसे *टाला* कहते हैं, उसमें देवता का चिड़ग (रथ का ढाँचा) व छत्र आदि रखे जाते हैं।

शाखा मंदिर : गाँव रुजग में, ग्रामग गाँव के नीचे ठेहर सेरी में, रुजग गाँव से लगभग 300 मीटर दूर कछंडी आगे। इन मंदिरों में देवता केवल मेलों के दौरान जाता है, अन्य दिनों में देवता ग्रामग के मंदिर में ही रहता है।

अधिकार क्षेत्र : पूरी चौपाड़सा पंचायत।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर, मंढारी, पज़ियारा की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर और कारदार के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है, केवल मेले-त्योहारों के अवसर पर पज़ियारा द्वारा 'घोंडी-धड़छ' से पारम्परिक पूजा की जाती है।

रथ : भेखल का बना, जिसे एक व्यक्ति अपने सिर पर उठाता है।

मोहरे : रजत निर्मित केवल एक छत्र।

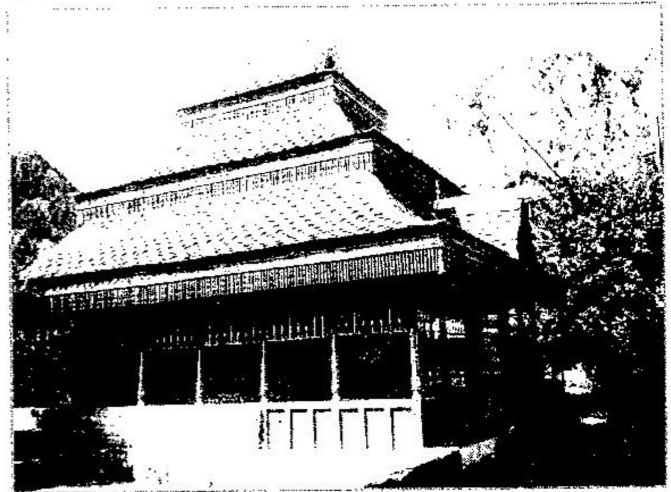
मेले-त्योहार : श्रावण मास में *शाऊण जाच*, फाल्गुन मास में *फागली*, मार्गशीर्ष मास में *पुनू* होता है। चालीस वर्षों के बाद पंचाली देवता का *काहिका* मनाया जाता है।

जनश्रुति : पंचाली नारायण के चार भाई और दो बहनें थीं। ये सभी भाई-बहन वर्तमान कुल्लू मुख्यालय से 15 किलोमीटर दूर माशण गाँव के ठेलरू-आगे नामक स्थान पर रहते थे। इस क्षेत्र के आसपास अनेक हिरण स्वच्छंद विचरण करते थे। एक बार पंचाली नारायण अपने किसी भाई के साथ शिकार करने गया। उसके भाई ने हिरण समझ कर ग़लती से एक बछड़े को मार दिया। उसने बछड़े का कलेजा निकाल कर उसके दो बराबर हिस्से करके एक हिस्सा पंचाली नारायण को दे दिया और एक अपने पास रख लिया। पंचाली ने तो मांस खा लिया, लेकिन स्वयं उसने उसे अपने कोट की बाजू में छिपा लिया। जब पंचाली इसे खा चुका तो उसके भाई ने उसे क्षुद्र कह कर साथ चलने से मना कर दिया। तब पंचाली साँप का रूप धारण कर माशण के नीचे पानी के कुएँ में रहने लगा। एक दिन कोई स्त्री वहाँ पानी पीने के लिए आई। कुएँ में साँप को देख कर उसने चाँदी की बुमणी (पट्टू को शरीर में लपेट कर उसके सिरों को कंधों पर जोड़नेवाली सूई) से उसे बींध दिया। तब वह लकड़ी बन कर वहाँ से चला गया और ग्रामग गाँव में रहने लगा। अब वह आधी रात को धरती पर मकान का चित्र बनाता और लोग जिनके वहाँ खेत थे, प्रातः उस चित्र पर चल कर उसे खराब कर देते। लेकिन जो भी उसे खराब करता, उसका वंश नष्ट हो जाता था। अंत में वहाँ केवल एक परिवार के पति-पत्नी ही बचे। देवता ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वह पंचाली नारायण है और उसे रहने के लिए स्थान दिया जाए। तब उन्होंने देवता के लिए ग्रामग गाँव में वह स्थान दे दिया, जहाँ आज देवता का मंदिर है।

पंचासन

गाँव : मतेउड़ा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : मतेउड़ा।



स्थापत्य : काठकुणी विधि से पैगोड़ा शैली में निर्मित 20x22 फुट का तीन छतों वाला मंदिर, जिस पर स्लेटों का आच्छादन है।

अधिकार क्षेत्र : मतेउड़ा।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, नीहर और छटियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा नहीं होती, वर्ष की प्रत्येक संक्रांति तथा विशेष अवसरों पर जब देवी मंदिर से बाहर निकली हो तो प्रातः-सायं नियमित रूप से पूजा होती है।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, केवल लोहे का एक गुर्ज तथा घोंडी-धड़छ हैं।

मेले-त्योहार : देवी का मूल त्योहार *फागली* है। चैत्र संक्रांति से एक दिन पूर्व देवी इसे काली नाग के साथ मनाती है। उसके बाद पूरे चैत्र मास में देवी के मंदिर प्रांगण में महिलाएँ बिरशू गीत गाती हैं।

जनश्रुति : पंचासन भगवती की उत्पत्ति मतेउड़ा गाँव के पीछे की ओर स्थित मद्रोणा नामक स्थान में हुई मानी जाती है। वहाँ से वह शौरा कोंढी क्षेत्र में गई और वहीं विचरण करती रही। कालांतर में उस मार्ग से गुज़रते हुए एक व्यक्ति को दर्शन देकर देवी ने कहा कि यदि वह उसकी पूजा-अर्चना करेगा तो सब प्रकार से वह उसकी रक्षा करेगी। उस व्यक्ति ने अपने गाँव मतेउड़ा आकर सारी घटना लोगों को सुनाई। उन्होंने मिलकर गाँव में देवी की स्थापना की। तब से देवी उनके हर कष्ट का निवारण करती है। जब भी गाँव पर कोई विपत्ति आती है तो लोग शौरा कोंढी के सरोवर में जाकर उसकी पूजा-आराधना करते हैं।

पंजवीर

गाँव : करेरी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : कोठी हरकंढी के हवाई-शियाह से ऊपर की पहाड़ी। यहाँ डेहरी में यह पिंडी रूप में स्थापित है।

मंदिर : करेरी।

भंडार : भंडारी के घर के टाले (सबसे ऊपर की मंज़िल) में।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर के जीर्ण-शीर्ण होने के कारण इसके स्थान पर चार वर्ष पूर्व नए मंदिर का निर्माण किया गया। काठकुणी शैली में बना एक मंज़िल का यह मंदिर चारों ओर को ढलानदार छतवाला है। शिखर पर बदोर स्थापित है।



शाखा मंदिर : बाराहार फाटी के गाँव खलियाणी में।

अधिकार क्षेत्र : करेरी और मुथल गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा समस्याओं का समाधान किया जाता है। 'लड्डू' व 'मलोही' भी डाली जाती है।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। मेले-त्योहारों के अवसर पर रथ के समक्ष पुजारी प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से पूजा करता है।

रथ : अंगू की लकड़ी का फेटा रथ।

मोहरे : पंद्रह।

मेले-त्योहार : प्रतिवर्ष बैसाख और श्रावण मास में एक-एक दिन का पर्व।

जनश्रुति : अज्ञातवास के दौरान पांडव जब हिमालय की ओर आए तो उन्होंने कुछ समय कुल्लू में भी बिताया। उनकी शक्ति से प्रभावित होकर लोगों ने यहाँ मंदिर का निर्माण कर उन्हें पंजवीर के रूप में पूजना आरम्भ किया।

पंजवीर

गाँव : खलयाणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खलयाणी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का मंदिर। इसकी ढलवाँ छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : लोट, खलयाणी व आसपास के कुछ हारियान।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देव रथ से, लाड़ू और पोगले विधि से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल प्रत्येक मास की संक्रांति को देवता की पूजा होती है। परन्तु विशेष अवसरों पर जब देवता रथ पर सज्जित होकर निकलता है, तब प्रातः-सायं रथ की पूजा होती है।

रथ : गुंबदाकार छत्र वाला खड़ा रथ, जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।

मोहरे : नौ। मुख्य अष्टधातु का व अन्य रजत के।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में पराशर देवता के पर्व के बाद पंजवीर का अपना पर्व होता है। श्रावण में शनौहली, 20 मार्गशीर्ष को पर्व।

जनश्रुति : लोट गाँव के जाँधरू वंश के कुछ लोग हरकंडी से किसी समय जब अपनी पुश्तैनी ज़मीन खलयाणी गाँव में आए तो इनके साथ देवता भी पिंडी रूप में आ गया। उन्होंने पंजवीर देवता को श्रद्धापूर्वक माना और उसकी कृपा से वे खूब फले-फूले।

पंजवीर

गाँव : गाहर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : कोटकंडी।

मंदिर एवं भंडार : गाहर।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक कक्ष का चारों ओर से खुला मंदिर जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से निर्मित है और उसके मध्य में मेरु बना है।

अधिकार क्षेत्र : गाहर।

प्रबंध : देवता के कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'पोगले' और 'मलोही' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर, गुग्गुल धूप व दीप से।

रथ व मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को *वीर पुजाई*, मन्नत पूरी होने पर देवता के निमित्त मेमने की बलि दी जाती है, जिसे *मान* कहते हैं।

जनश्रुति : ऐसी मान्यता है कि 'पंजवीर' पाँच पाण्डव हैं जो देवी दशमी वारदा से वीरता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कोटकंडी स्थान से मथाण और फिर सेऊ-बाग, काईस और धारा तक फैले गाहर गाँव आए, जहाँ देवी दशमी वारदा की प्रजा बसती है। यहाँ बहुत वर्ष पहले एक व्यक्ति को खेत में काम करते हुए एक शिला मिली और उसी समय आकाशवाणी हुई कि वे पंजवीर हैं। तब उस व्यक्ति ने दशमी वारदा की छोटी बहन देवी भागासिद्ध से इस बात की सत्यता के बारे में पूछा। देवी ने इस बात की पुष्टि करते हुए वहाँ के लोगों को उनकी पूजा-अर्चना करने का आदेश दिया। जहाँ यह शिला मिली थी, उस स्थान पर मंदिर बनवाया गया और जिस व्यक्ति को शिला मिली थी, उसी के वंशज आज भी यहाँ पूजा करते हैं।

पंजवीर

गाँव : तरांबली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : कोटकंडी।

मंदिर एवं भंडार : तरांबली।

स्थापत्य : काष्ठ व प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है।

अधिकार क्षेत्र : तरांबली गाँव।

प्रबंध : देवता के कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : 'मलोही' डालकर।

पूजा : छाज परिवार से नियुक्त पुजारी प्रतिदिन प्रातः व सायं धूप-दीप जलाकर पूजा करता है तथा संक्रांति व पूर्णमासी को पूरा छाज परिवार पूजा करता है।

मेले-त्योहार : *पंजभीखमी*, सभी *संक्रांतियाँ*।



जनश्रुति : एक बार कुल्लू के राजा ने भूंतर तथा दियार गाँव से ऊपर चोटी पर स्थित कोटकंढी नामक स्थान से दो चोरों को लाने के लिए तीन सिपाही भेजे। वे हथकड़ी पहना कर जब चोरों को ला रहे थे तो तरांवली पहुँच कर विश्राम करने के लिए छाज ब्राह्मण के घर में रुके। ब्राह्मण परिवार की मुखिया ने उनके लिए भोजन तैयार किया। सिपाहियों ने स्वयं भोजन करने से पूर्व चोरों को खाना खाने की अनुमति नहीं दी। तब गृह स्वामिनी ने सिपाहियों से कहा कि चोरों को हथकड़ी खोल कर भोजन ग्रहण करने दिया जाए। उसके कहने पर सिपाहियों ने चोरों की हथकड़ियाँ खोल कर उन्हें अपने साथ बैठाकर भोजन करवाया। खाने के उपरांत जब चोरों को पुनः हथकड़ियाँ पहनाई जाने लगी तो वे बार-बार खुलने लगीं। तब गृह स्वामिनी ने कहा कि वे चोर नहीं हो सकते।

उसी समय एक सिपाही में दैवी-शक्ति का प्रवेश हुआ। उसने बताया कि वह पंजवीर है और उसके साथ जोगिनी भी आई है। उसने दोनों चोरों को बेकसूर बताया और अपने रहने के लिए स्थान माँगा। तब ब्राह्मण परिवार की मुखिया ने देवता को छह बिस्वा ज़मीन दी, जहाँ देवता की स्थापना की गई। उसके साथ अलग डेहरे में जोगिनी भी स्थापित है। सिपाहियों ने कुल्लू पहुँचकर यह सारी घटना राजा को सुनाई। राजा ने इस गाँव में आकर देवता से क्षमा माँगकर वहाँ ताम्बे की परौल़ (मुख्य द्वार) बनवाई, जिस कारण इस देव स्थान का नाम तरांवली पड़ा।

पड़ासर देऊ : पराशर ऋषि

गाँव : कमांद, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : कमांद से लगभग एक कि.मी. ऊपर कड़ोण (देवदार का घना जंगल) में है।

भंडार : कमांद में काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा भवन है। इसमें देवता का रथ तथा साजो-सामान रहता है। इसके साथ एक अन्य भवन भी है, जिसमें अन्न का भंडारण होता है।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में बना लगभग पाँच सौ वर्ष पुराना मंदिर है। आरम्भ में इसकी पाँच छतें थीं, अब केवल तीन ही हैं। मंदिर में काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। मंदिर परिसर में पानी के तीन सौर (सरोवर) हैं। इनमें से एक सौर के साथ बनी डेहरी (छोटा मंदिर) में देवी सीता की स्थापना है। डेहरी के भीतर भी एक छोटा-सा तालाब है।

शाखा मंदिर : कमांद में भंडार के साथ डेढ़ मंज़िल का काठकुणी शैली में बना ढलानदार छतवाला मंदिर है। इसकी घमीरी (गर्भगृह) में देवता की पिंडी स्थापित है। यहाँ केवल पुजारी ही जा सकता है।

अधिकार क्षेत्र : खड़ीहार और बाराहार के सभी निवासियों के अतिरिक्त बल्ह, पीज़, बुआई और शिल्हानाल़ पंचायतों के अनेक परिवार भी इसे इष्ट देवता के रूप में मानते हैं।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, कठियाला, गूर, बजंत्री तथा अन्य निशानबरदारों द्वारा। इनके अतिरिक्त समय-समय पर हारियानों द्वारा भी प्रबंध व्यवस्था देखी जाती है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : हर संक्रांति की सुबह और मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर प्रातः-सायं 'धड़छ' में जड़ी धूप जलाकर



घंटी बजाते हुए पंचोपचार विधि से पूजा होती है। शंख तथा वाद्ययंत्रों की धुन पर देवस्तुति की जाती है। प्रथम भादों की शाम से 20 भादों की शाम तक कड़ोण मंदिर में सजीऊआ (घी का दीपक) जलाया जाता है। इन दिनों प्रतिदिन सुबह-शाम पूजा होती है।

रथ : अंगू की लकड़ी का बना खड़ा रथ, जिसे दो व्यक्ति अर्गलाओं पर उठाते हैं। रथ के शीर्ष पर रजत निर्मित छत्र सजा होता है। मुख्यतः सूरज पंखे, छड़ी, ध्वजा देवता के निशान हैं।

मोहरे : एक अष्टधातु का तथा आठ रजत निर्मित। इनमें से चाँदी के दो-दो मोहरे रथ के चारों तरफ और अष्टधातु का मोहरा अग्रभाग में लगता है।

मेले-त्योहार : बैसाख मास के प्रथम सप्ताह के रविवार या वीरवार में से जो भी पहले आए, उस दिन *बिरशू* मनाया जाता है। इसमें देवता पड़ासर तथा नारायण के रथ देवधुन के साथ कमांद गाँव से कड़ोण स्थान पर ले जाए जाते हैं। वहाँ देऊखेल, पूछ आदि देवकार्यों के बाद *भोज* दिया जाता है। शाम को देवता वापिस अपने भंडार में लौटता है। भंडार में जाने से पहले सौह में 'हुळकी' होती है।

भादों मास की संक्रांति से तुरंत पूर्व या पश्चात् पहले आने वाले वीरवार या रविवार को *शनौहली* त्योहार मनाया जाता है। इस अवसर पर *बिरशू* की तरह ही सारी कार्रवाई होती है।

पौष मास के अंतिम रविवार या वीरवार को कड़ोण मंदिर में *दियाळी* का पर्व मनाया जाता है, *दियाळी* के सातवें दिन *सद्दियाला* मनाया जाता है, इसके सात दिन बाद *कमांदी पोर* का आयोजन होता है। यह पर्व कमांद गाँव में देवता के भंडार में होता है। इस अवसर पर दिन के समय देवता के रथ को सजाया जाता है। रात को दो-तीन बजे मशालों और बाजे-गाजे के साथ गाँव का फेरा लगाया जाता है। फेरा पूरा होने पर सौह में जागरा (अलाव) जलाया जाता है। तब देवता का रथ 'सौह' में लाया जाता है। यहाँ 'देऊखेल' होती है। देऊखेल के बाद रथ को भंडार में रखा जाता है। दूसरे दिन गूर द्वारा बरशोहा (वर्षफल) सुनायी जाती है और शाम को 'हुळकी' के बाद पर्व समाप्त होता है।

जनश्रुति : किसी समय कमांद गाँव के लोग कड़ोण नामक स्थान पर पशु चराने के लिए जाया करते थे। एक बार ग्वालों को यहाँ कटे हुए पेड़ के सूखे तने से कराहने की आवाज़ सुनाई दी। वे डरकर अपने-अपने घर भाग गए। घर पहुँच कर उन्होंने यह बात अपने परिवारवालों को सुनाई। तब गाँववासियों ने घटना स्थल पर पहुँच कर देखा कि उस तने के चारों ओर देवदार के छोटे-छोटे पेड़ उग आए थे और वहीं आस-पास तीन सौर (सरोवर) भी फूट पड़े थे। सभी लोग आश्चर्यचकित होकर अलग-अलग अनुमान लगाने लगे। तभी एक व्यक्ति को खेल आई। उसने कहा कि वह देऊ पड़ासर है और लोगों की भलाई के लिए यहाँ प्रकट हुआ है। तब उस स्थान पर लोगों ने मंदिर का निर्माण कर उसमें देवता की स्थापना की।

पमेसरी

गाँव : परवी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : परवी।

स्थापत्य : गाँव के मध्य स्थित काष्ठ-प्रस्तर निर्मित


डेहरी

मंदिर पहाड़ी शैली का है। यही देवी का भंडार भी है। इस ढाई मंज़िला मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर की दूसरी मंज़िल में आभूषण आदि रखे जाते हैं। मंदिर के पीछे की ओर एक छोटी 'डेहरी' है, जिसपर काष्ठ कलश युक्त 'बदोर' लगा है। इसे पमेसरी का मूल स्थान माना जाता है।

अधिकार क्षेत्र : परबी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल मेले-त्योहारों के अवसर पर ही धूप से पूजा की जाती है।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : प्रथम वैशाख को *जेठा बिरशू,* जिसे *फागली मेला* के नाम से भी जाना जाता है। इस एक दिवसीय मेले में पूरे वाद्ययंत्रों के साथ पमेसरी देवी के आभूषण निकाले जाते हैं, जिन्हें पहनकर गूर में पमेसरी देवी की शक्ति का प्रवेश हो जाता है। उस समय वह सिर पर लाल दुपट्टा ओढ़ता है। श्रद्धालुओं के दुःखों को सुनकर उन्हें उससे मुक्ति का उपाय बताता है। देवी की भारथा सुनाता है। तत्पश्चात् लोग अपने-अपने घर जाकर लुगड़ी तथा सूर पीते-पिलाते हैं।

पाशकोट

गाँव : कमांद, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : कमांद।

मंदिर : कमांद गाँव के कड़ोण नामक स्थान में पड़ासर देऊ के मंदिर के पास एक चट्टान पर स्थापित।

अधिकार क्षेत्र : खड़ीहार फाटी के गाँव।

पूजा : वर्ष में केवल एक बार देवता के निमित्त बकरे की बलि दी जाती है।

जनश्रुति : किसी समय क्षेत्र में तूफान से हो रहे भारी नुकसान से चिंतित लोग इसका समाधान ढूँढ रहे थे। तब एक व्यक्ति में देवशक्ति का प्रवेश हुआ। उसने कहा-मैं पाशकोट देवता हूँ और कड़ोण में अमुक चट्टान में मेरा वास है। यदि मेरी पूजा करोगे तो मैं तूफान से इस क्षेत्र की रक्षा करूँगा। तब लोगों ने वर्ष में एक बार इस देवता की पूजा आरम्भ की। खड़ीहार फाटी के लोग इसे पड़ासर देऊ का सेवक मानते हैं।

पिरडी महादेव

गाँव : पिरडी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पिरडी।

स्थापत्य : सीमेंट व काष्ठ निर्मित आधुनिक शैली का मंदिर जिसके शिखर पर कलश शोभायमान है। भीतर संगमरमर की शिव मूर्ति तथा शिवलिंग और मंदिर परिसर में नंदी की मूर्ति स्थापित है।

शाखा मंदिर : तरांबली गाँव।

अधिकार क्षेत्र : टिकरा बावड़ी से सराच तक सारा क्षेत्र।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : कारकुन व देवता द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः पंचोपचार से व सायंकाल आरती।

रथ : फेटा रथ।

मोहरे : छब्बीस। इनमें बीस मोहरे बड़े, पाँच छोटे व एक मोहरा देवी पार्वती का है।



मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को *जेठा बिरशू,* वैशाख संक्रांति को *कोन्हा बिरशू,* श्रावण की संक्रांति को *पिरडी मेला,* मार्गशीर्ष पूर्णिमा को देवता द्वारा अपनी प्रजा क्षेत्र का दौरा।

जनश्रुति : पिरडी महादेव काशी से तरांबली और मथाण होते हुए इस स्थान पर आया है। इसे आदि शिव भी माना जाता है। अतः यह मथाण में प्रतिष्ठित बिजली महादेव का दादा कहलाता है। मंदिर परिसर में स्थित देवदार का उलटा वृक्ष बिजली महादेव का प्रतीक माना जाता है। कहते हैं बिजली महादेव ने जब देखा कि पिरडी महादेव के पास देवदार का वृक्ष, जिसे देवस्थल की शोभा माना जाता है, नहीं है तो उसने मथाण से एक वृक्ष पिरडी की ओर फेंका, जो वहाँ पर उलटा पड़ा। इसके बदले में पिरडी महादेव ने अपने निशान के रूप में कैंथ-वृक्ष मथाण में बिजली महादेव के परिसर की ओर फेंका, जो वहाँ सीधा पड़ा। ये निशान आज भी दोनों स्थलों पर यथा स्थिति मौजूद हैं।

पीऊंली नाग

गाँव : पटाहर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : पटाहर।

स्थापत्य : पुरातन मंदिर के स्थान पर वर्ष 2002 में काठकुणी शैली में तीन मंज़िल का नया मंदिर बनाया गया है, जिसकी दोनों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। छत के शिखर पर देवदार के 'बदोर' में लकड़ी के तीन कलश स्थापित हैं। मंदिर की पहली व तीसरी मंज़िल में दो-दो कक्ष हैं; जबकि बीच की मंज़िल में केवल एक कक्ष है। पहली मंज़िल के भीतरी कक्ष में पाषाण पिंडी स्थापित है और बाहरी कक्ष में रथ। दूसरी मंज़िल में देवता के पुराने रथ रखे जाते हैं। मंदिर से करीब 150 मीटर की दूरी पर देवता का एक छोटा स्थान है जहाँ उसके बाहृण (गण) अग्नि, पाताल व नमुण्डा रहते हैं। देवता का भंडार वर्तमान पुजारी के घर में है।

अधिकार क्षेत्र : पटाहर।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : अखरोट की लकड़ी से बने दो फेटे रथ, जिनके शीर्ष पर कलगी लगती है। इन्हें मेले के लिए बारी-बारी से अलंकृत किया जाता है।

मोहरे : नौ रजत निर्मित व पाँच अष्टधातु के।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में दो दिवसीय *जेठा बिरशू* जिसके प्रथम दिन 'देवचारा' होता है और दूसरी शाम को देवता गाँव की परिक्रमा कर रक्षा सूत्र बाँधता है। देवता को घर-घर धूप दर्शाया जाता है। वैशाख मास में सरसेई का तीन दिवसीय *जवाड़ी मेला,* जिसमें अन्य देवी-देवता भी सम्मिलित होते हैं, फाल्गुन मास में देवता के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में दो दिन का मेला लगता है।



पहली शाम को देवता के घंटी-धड़छ को पुजारी के घर से वाद्य यंत्रों सहित मंदिर में लाया जाता है। दूसरे दिन प्रातः देवता के मोहरे व आभूषण लाकर उन्हें रथ में सजाकर देवचारा की रस्म निभाई जाती है। शाम को प्रत्येक घर में देवता को 'धूप पिलाया' जाता है। तत्पश्चात् देवता का शृंगार उतारकर मोहरे व आभूषण करड़ू में रखकर पुजारी के घर ले जाए जाते हैं। जहाँ टाल़े (मकान की सबसे ऊपर की आधी मंज़िल) में रखी 'शाल़्ह' में उनका भंडारण किया जाता है।

जनश्रुति : गोशाल गाँव में एक 'भाँदल' में अठारह नागों का जन्म हुआ था। वहाँ से वे पटाहर के जंगल में गुआड़ा नामक स्थान पर आए। उनके पिता वासुकि नाग ने उन्हें पटाहर गाँव जाने का आदेश दिया तो पीऊंली नाग वहाँ पहुँचकर एक मोहरे में परिवर्तित हो गया। एक दिन गाँव की किसी स्त्री को खेत में काम करते समय वह मोहरा मिला। उसने उसे अपनी गाची (कमरबंद) में रख लिया। जब वह घर वापिस आ रही थी तो रास्ते में गाँव के बच्चे मिले जो देवता का रथ बनाकर खेल रहे थे। उस स्त्री ने वह मोहरा गाची से निकाल कर उनके रथ पर लगा दिया। जैसे ही मोहरा रथ पर लगा, उसी समय किसी बच्चे को 'देऊखेल' आई, उसने बताया कि वह पीऊंली नाग है और पटाहर में रहना चाहता है। बच्चों ने यह बात गाँव के बुजुर्गों को बताई तो उन सब ने देवता के निमित्त मंदिर का निर्माण कर देवता की वहाँ स्थापना की।

फलाणी नारायण

गाँव : फलाण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : ढुपकन गाँव का ढगेहड़ नामक स्थान।

मंदिर एवं भंडार : फलाण।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बने कोठीनुमा दो मंदिर। दोनों मंदिरों की दो-दो मंज़िलों में केवल दीवारें खड़ी हैं। तीसरी मंज़िल में चौतरफा बरामदा है और चौथी मंज़िल



आधी है, जिस पर छत पड़ी है। छत स्लेटों से ढकी है। इन दोनों मंदिरों में से नया मंदिर अभी खाली है और देवता का भंडार पुराने मंदिर की तीसरी मंज़िल में है।

शाखा मंदिर : दड़का व ढुपकन गाँवों में एक-एक तथा शिल्हाग्राँ में दो मंदिर हैं। इनमें से एक में देवता पिंडी रूप में स्थापित है और दूसरा खाली रहता है जहाँ देवता की सौह भी है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव लियाणी, फलाण, जिंदी, दड़का, ढुपकन, शिल्हाग्राँ।

प्रबंध : पारिवारिक सदस्यों की समिति।

न्याय प्रणाली : 'मल़ोही' डालकर।

पूजा : माघ मास में एक से सात प्रविष्टे तक देवता की पूजा पंचोपचार विधि से की जाती है।

रथ : सिर पर उठाया जाने वाला।

मोहरे : काष्ठ निर्मित चौकोर आकार का, जिसका ऊपरी भाग स्वर्ण और नीचे का भाग रजत से मढ़ा है।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में *शाउण जाच*। इस दिन देवता गाँव शिल्हाग्राँ में स्थित अपने शाखा मंदिर में

जाता है। यहाँ मटमान (बलि) दिया जाता है। इसके बाद देवता इसी गाँव में कुछ नीचे स्थित शाखा मंदिर में जाता है। यहाँ सौह में 'हुल़की', 'देऊ खेल', पूछ आदि सभी देव कार्रवाई की जाती है। इसके बाद देवता की ओर से सिड्डू तथा श्रद्धालुओं की ओर से 'भौती' दी जाती है। रात को देवता वहीं रहता है और अगले दिन वापिस गाँव फलाण के मंदिर में आता है। यहाँ हुल़की और देऊखेल के बाद देवता को मंदिर में स्थापित किया जाता है।

भाद्रपद मास में *नागा री जाच* लगती है। इस दिन गाँव शिल्हाग्राँ से ऊपर स्थित सौर (सरोवर) में नाग पूजा होती है। यहाँ केवल देवता के गूर, पज़ियारा आदि दो-चार कारकुन ही जाते हैं। वहाँ से वापिस आने के बाद फलाण सौह में मेला लगता है।

माघ मास की संक्रांति के प्रथम प्रविष्टे के दिन रथ को बरामदे में निकालते हैं। तब 'छोदा', पूछ होती है।

फाल्गुन मास में *फागली* होती है। देवता के रथ को सजाकर शिल्हाग्राँ के मंदिर में ले जाया जाता है, जहाँ देवता पिंडी रूप में स्थापित है। यहाँ मेला लगता है और देवता रात्रि विश्राम करता है। अगली प्रातः धारा पूजणी होती है। देवता का गूर, पज़ियार आदि सभी कारकुन गाँव फलाण और शिल्हाग्राँ के बीच के गाँव ल्याणी में स्थित माता लोहड़ी अच्छरी के मंदिर में जाते हैं। यहाँ गूर को घूंडा (गहनों से जड़ा दुपट्टा) ओढ़ाया जाता है। तब माँ से 'पूछ' डाली जाती है और लोग भेंट चढ़ाते हैं। उसके बाद शिल्हाग्राँ के मंदिर में वापिस आते हैं और शाम को फलाण मंदिर में आकर सौह में देऊखेल, हुल़की आदि के बाद देवता को मंदिर में स्थापित किया जाता है।

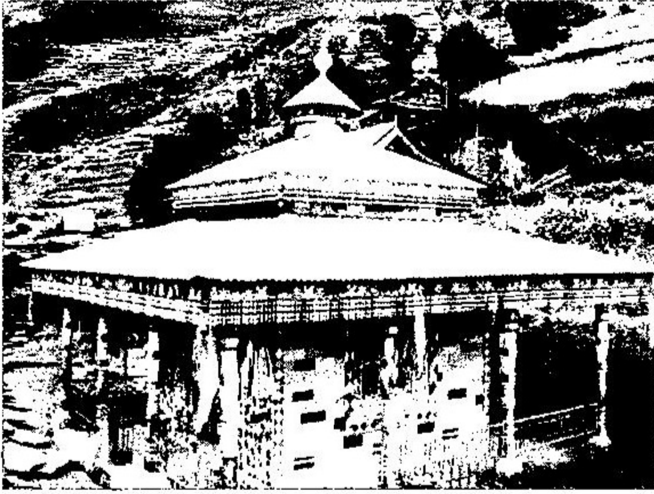
जनश्रुति : किसी समय ढुपकन गाँव का एक बढ़ई प्रतिदिन अपनी वस्तुएँ बेचने के लिए कुल्लू शहर जाता था। एक दिन जब सामान लेकर वह कुल्लू के लिए निकला तो मार्ग में उसे एक साधु मिला। उसने बढ़ई से कहा यदि आज तुम्हारा सामान दोगुने दामों में बिके तो तुम्हें मेरे कहे अनुसार काम करना होगा। जब वह शहर पहुँचा तो सचमुच उसका सारा सामान कुछ ही समय के भीतर दोगुने दामों में बिक गया। बढ़ई उस साधु को दिव्य शक्तियों से सम्पन्न जानकर शीघ्रता से उस स्थान की ओर चल पड़ा जहाँ उसे साधु के दर्शन हुए थे। वहाँ पहुँचकर बढ़ई ने साधु के चरण स्पर्श कर कहा-मुझे अपने सामान के दाम आज प्रतिदिन से दोगुने मिले हैं। अब आप जो कहेंगे, मैं करूँगा। साधु ने उसके हाथ में एक जलती हुई शौली (मशाल) दी और कहा कि जहाँ पर यह बुझ जाएगी उस स्थान पर मेरा और तुम्हारा निवास रहेगा। उसने वैसा ही किया और जब वह ढगेहड़ पहुँचा तो उसकी शौली बुझ गई। बढ़ई वहाँ उस साधु के लिए निवास बनाने लगा तो स्थानीय शिल्हू राजपूतों ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। तब साधु वेशधारी देवता ने बाघ का रूप धारण किया और मुँह में हड्डी लेकर शिल्हू राजपूतों के घरों में प्रवेश कर उन्हें भ्रष्ट कर दिया, जिससे राजपूतों को वह स्थान छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। वे ढगेहड़ से कुछ दूरी पर जाकर रहने लगे। यह स्थान अब शिल्हाग्राँ के नाम से जाना जाता है। देवता और बढ़ई ढगेहड़ में बस गए। समीप के लोगों को देवता के चमत्कारों के सम्बंध में पता चला तो वे उससे मन्नतें माँगने आने लगे। जब उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं तो देवता की ख्याति अन्य गाँवों तक भी फैली और कालांतर में फलाण गाँव के समीप ही कछौंटी नामक स्थान पर देवता पिंडी रूप में प्रकट हो गया। उसी रात गाँव के किसी व्यक्ति को स्वप्न में अपने प्रकट होने की सूचना भी दी। तब लोगों ने फलाण में मंदिर बनाकर वहाँ देवता की स्थापना की।

फुंगणी माता

गाँव : तिऊन, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : तिऊन।

स्थापत्य : एक कक्ष का मेरु संयोजन युक्त नवीन मंदिर। इसकी तीन छतें चद्दरों से ढकी हैं, जिसके बहिर्निसृत भाग



में काष्ठ निर्मित गिल्लियों की अवली शोभित है। मंदिर कक्ष के बाहर बने परिक्रमा पथ के चारों ओर खड़े स्तम्भों के निचले भाग में जंगला लगा है। इन्हीं स्तम्भों पर मंदिर की सबसे निचली छत पड़ी है।

अधिकार क्षेत्र : मूलतः तिऊन, समालंग, कड़ींगचा, समाणा, चलाह पाँच गाँव। इनके अतिरिक्त पूरी लगघाटी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। फाल्गुन मास में सात दिनों तक विशेष पूजा होती है।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं है। स्वर्ण व रजत मिश्रित धातु का धड़छ है।

मेले-त्योहार : आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में तिऊन से आठ कि.मी. दूर *फुंगण* नाम का मेला मनाया जाता है। इसे जेठा कार्ज कहा जाता है, फाल्गुन मास में *पौट घुहाड़* त्योहार मनाया जाता है, बैसाख मास के शुक्ल पक्ष में *नियासक* पर्व मनाया जाता है।

जनश्रुति : माता फुंगणी दिल्ली से माहूनाग टीला, फूटा खौल़, पिजौंडी होकर राम जोटक नामक स्थान पर पहुँची। वहाँ पांडव बड़ी धार (पहाड़) को समतल कर रहे थे। माता फुंगणी ने उन्हें इसे पूरा नहीं करने दिया और इस स्थान पर अपना सौर (सरोवर) बनाया। इसे फुंगण सौह कहते हैं। वहाँ से यह धर्मपान और गिड़गन पौट होकर तिऊन पहुँची और यहाँ अपना स्थान बनाया।

बणींडू देऊ

गाँव : काईस, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : काईस।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का 'डेहरा' जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट लगे हैं। इसमें देवता मेले-त्योहारों के अवसर पर आता है। देवता के मोहरे तथा अन्य सामान देवी दशमी वारदा, काईस के भंडार में रखा जाता था। वर्तमान में स्थानीय शैली में ढाई मंज़िल का भंडार बनाया जा रहा है, जिसके चारों ओर बरामदा है। इसकी ढलानदार छत भी स्लेटों से आच्छादित है।

अधिकार क्षेत्र : काईस, चचोगा, उखलू, शरन, गाहर, तंदला।

प्रबंध : कारदार, जठेरा, पालसरा, कठियाला तथा सात अन्य सदस्यों की समिति।

न्याय प्रणाली : 'गुले' लगाकर, 'पोगले' डालकर।

पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति तथा पंद्रह व बीस प्रविष्टे को 'बेठर' धूप जलाकर 'घोंडी' व 'दपोत' से देवता की पिंडी की पूजा होती है। चूरमे का भोग लगाया जाता है।

रथ : आरम्भ में देवता का रथ नहीं था, परन्तु लगभग दस वर्ष पूर्व दो अर्गलाओं से युक्त खड़े रथ का निर्माण किया गया जो सदैव देवी दशमी वारदा के साथ चलता है।

मोहरे : पहले एक पिंडी और एक वृक्ष ही इसके प्रतीक थे, परन्तु कालांतर में रजत के बीस मोहरे बनाए गए। देव प्रतीक वृक्ष के पास लोग आज भी लोहे की चिड़ियाँ चढ़ाते हैं।

मेले-त्योहार : पौष व भादों मास में देवता के निमित्त *भूंगड़ा* नामक त्योहार मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त यह देवी दशमी वारदा के सभी मेले-त्योहारों में सम्मिलित होता है।

जनश्रुति : पूर्व में यह एक राक्षस था, जो मनुष्यों की बलि लिया करता था। काईस और इसके आसपास का

सारा क्षेत्र इससे आतंकित था। इसके अत्याचारों से मुक्ति पाने हेतु लोगों ने देवी दशमी बारदा से प्रार्थना की तो देवी ने अपनी शक्ति से उसे अपने अधीन कर लिया। माँ के सान्निध्य में रहने से उसके आचरण में परिवर्तन आया और वह देवत्व प्राप्त कर देवी का सहायक बना। मान्यता है कि किसी भी समस्या के समाधान के लिए यदि इसे याद किया जाए तो यह अवश्य सहायता करता है।

बराधी वीर

गाँव : पीज़, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : पीज़ गाँव के पीछे सेर (कई लोगों के सामूहिक खेत) में।

भंडार : नैणा सेरी में रोहड़ी खानदान के एक परिवार में।

स्थापत्य : पुराने मंदिर के स्थान पर उसी स्वरूप में पंद्रह वर्ष पूर्व काष्ठ-प्रस्तर निर्मित तीन दीवारों के एक मंज़िल के मंदिर का निर्माण किया गया है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। छत पर बदोर लगा है। मंदिर के गर्भगृह में देवता पिंडा रूप में स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव नैणा सेरी के रोहड़ी खानदान का कुल देवता है। इनके अतिरिक्त पीज़ फाटी के कुछ अन्य गाँव भी इसे मानते हैं।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, बाँठ, कुठियाला की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, रथ द्वारा पूछ, लाड़ू, मलोही डालकर।

पूजा : जब देवता निकलता है तो प्रातः-सायं पारम्परिक तरीके से पूजा होती है। संक्रांति तथा इसके बाद पहले आने वाले वीरवार या रविवार को केवल प्रातः पूजा होती है।

रथ : आरंभ में देवता पिंडी रूप में स्थापित था। वर्ष 1995 में इसके रथ का निर्माण किया गया। चौकोर आकार का खड़ा रथ दो अर्गलाओं से युक्त है। इसके चारों भागों में दो-दो रजत निर्मित मोहरे तथा अग्रभाग में अष्टधातु का मुख्य मोहरा भी लगता है। रथ के शीर्ष पर चाँदी का छत्र शोभित होता है।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में जमलू देवता दरपोइण की शाऊणी जाच में शामिल होता है। मार्गशीर्ष मास में मुंघरपुन्नू पर्व होता है। इस अवसर पर रथ निकाला जाता है। इसकी केवल पूजा होती है। इस दिन मेला नहीं होता।

बालक महेश्वर

गाँव : बजौरा, **तहसील :** कुल्लू।



मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बजौरा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित, स्लेटों से ढकी छतवाले एक मंज़िल के पुरातन मंदिर के स्थान पर दो वर्ष पूर्व नए मंदिर का निर्माण किया गया है। पैगोड़ा शैली का यह मंदिर तीन छतोंवाला है। मंदिर में काष्ठ पर सुंदर नक्काशी हुई है। इसमें शिवलिंग स्थापित है तथा साथ ही धूनी भी है।

शाखा मंदिर : भूंतर, मौहल, बगीचा, रोपा।

अधिकार क्षेत्र : शमशी, टकोली, मौहल, बजौरा, कलैहली, शाढ़ाबाई, रोपा, हुरला।

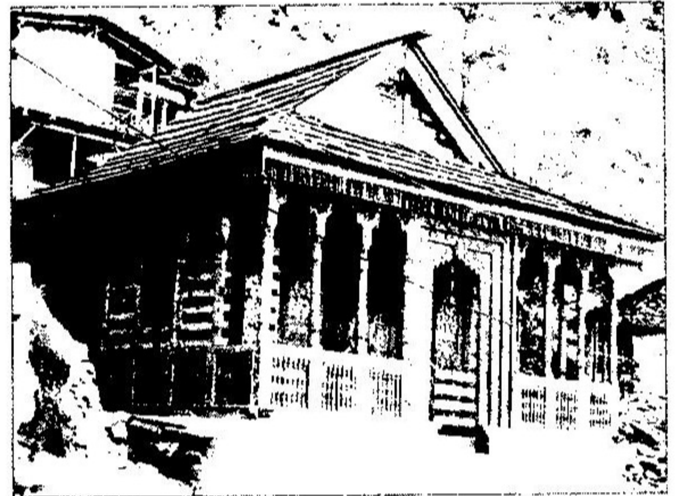
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : 'मरोहड़ी, पर्ची व प्रश्न' डालकर।

पूजा : संक्रांति, मेले-त्योहारों आदि के अवसर पर।
रथ : दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर छत्र शोभित होता है।
मोहरे : दस।
मेले-त्योहार : *टकोली मेला, भूंतर मेला* तथा ज्येष्ठ मास के 22-23 प्रविष्टे को *पीपल मेला*। यह मेला शीतला माता मंदिर भूंतर से दो किलोमीटर दूर दयार मार्ग पर पीपल आगे गाँव में मनाया जाता है।
जनश्रुति : कदाचित् कुल्लू-मंडी क्षेत्र में पशुओं की महामारी फैल गई, जिससे लोग अत्यंत चिंतित हुए। तब ज़िला मंडी के गाँव रोपा के किसी व्यक्ति को खेल आई। उसने कहा कि वह शिवजी का बाल-रूप है और बजौरा के अमुक स्थान पर पिंडी रूप में प्रकट हुआ है। उसकी पूजा-अर्चना की जाए तो पशु रोग समाप्त हो सकते हैं। तब लोगों ने देवता द्वारा बताए गए स्थान से पिंडी ढूँढकर उसकी आराधना आरम्भ की और कालांतर में यहाँ मंदिर का निर्माण करवाया गया।

बिजली महादेव

गाँव : चंसारी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : गाँव मथाण।
मंदिर : चंसारी।
भंडार : गाँव धाठै।
स्थापत्य : प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्ष 2008 में प्रस्तर की वर्गाकार चौकी पर काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर के 'बदोर' पर काष्ठ के तीन कलश सुशोभित हैं। छत के चारों ओर लकड़ी की सुन्दर झालर लगी है। मंदिर के चारों ओर खुला बरामदा है। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ पर किया गया नक्काशी का कार्य दर्शनीय है।
अधिकार क्षेत्र : फाटी खराहल व फाटी कशावरी के गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, 'मलोही' व 'पोगले' डालकर।



पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।
रथ : फेटा, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ होती हैं।
मोहरे : सोलह।
मेले-त्योहार : 18 वैशाख को *बिरशू मेला,* भाद्रपद मास में निश्चित तिथि को बिजली महादेव का *जन्मोत्सव*।
जनश्रुति : बिजली महादेव मथाण का प्रतिवर्ष डोल गाँव में मेला लगता था, लेकिन एक बार यह मेला हलैणी गाँव में लगा और देवता उस रात वहीं रुका। दूसरे दिन देवता जब डोल गाँव गया तो डोली ठाकुर, जिसने मेले का प्रबंध पहले दिन कर रखा था, देवता से बहुत नाराज़ हुआ और उसने देवता के कारिंदों से वाद-विवाद किया। इससे देवता रूठ कर अपने मूल स्थान मथाण को चल पड़ा। यह बात चंसारी गाँव के उन लोगों को अच्छी नहीं लगी जो डोल में मेला देखने आए थे। उन्होंने देवता से एक रात चंसारी में ही रुकने की प्रार्थना की। देवता उनकी याचना पर एक रात वहाँ रुक गया। तब लोगों ने देवता से अनुमति लेकर गाँव में मंदिर का निर्माण किया। मंदिर के लिए भूमि कलव्याणी और दलव्याणी ब्राह्मणों द्वारा दी गई।

बिजली महादेव

गाँव : तरांबली, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : मथाण गाँव।
मंदिर : तरांबली।



भंडार : गाँव धार्ठ।

स्थापत्य : लकड़ी व सीमेंट से बना एक कक्ष का मंदिर जिसके अग्रभाग में काष्ठ स्तम्भों पर आधारित खुला बरामदा है। इसकी चारों ओर को समतल तथा बीच में से ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है और शिखर पर 'बदोर' स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : फाटी खराहल व फाटी कशावरी।

प्रबंध : देवता के कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : कारदार के माध्यम से देवता द्वारा स्वयं।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ जो देवता के मूल स्थान मथाण में रहता है। प्राचीन समय से ही बिजली महादेव रथ पर सज्जित होकर तरांबली मंदिर आते हैं और वर्ष में सोलह दिन यहीं विराजते हैं। इन दिनों मंदिर में भारी भीड़ रहती है। लोगों के खाने-पीने की व्यवस्था तरांबली गाँव के लोग ही करते हैं। देवता के कारिंदे देवरथ के साथ रहते हैं। इसके अतिरिक्त यात्रा से लौटने पर भी देवता एक दिन के लिए इस मंदिर में विश्राम करता है।

मोहरे : सोलह।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में *बिरशू* मेला, जिसमें गाँव की स्त्रियाँ वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर बिरशू गीत गाती हैं और भगवान् शिव तथा नंदी की पूजा करती हैं।

बिजली महादेव

गाँव : मथाण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : मथाण।

भंडार : गनाखला, धार्ठ।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर की सूखी चिनाई से निर्मित विशिष्ट पहाड़ी शैली का आयताकार मंदिर। इसके गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है, जिसके चारों ओर संगमरमर बिछा है। मंदिर के द्वार पर सुन्दर चित्रकारी की गई है तथा ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। बिजली महादेव का तीन मंज़िल का कोटनुमा भंडार गनाखला गाँव में है। इसमें देवता के मोहरे और बहुमूल्य आभूषण आदि रहते हैं। यहीं पुजारी भी परिवार सहित रहता है जो इस स्थान पर त्रिकाल पूजा करने के साथ मथाण में भी पूजा करता है।

शाखा मंदिर : भ्रैण, ओलड़, ज़िया, तरांबली, बंदल, गनाखला, धार्ठ, हलैणी, चंसारी, पीणी आदि।

अधिकार क्षेत्र : फाटी खराहल और फाटी कशावरी के सभी गाँव तथा कुल्लू।

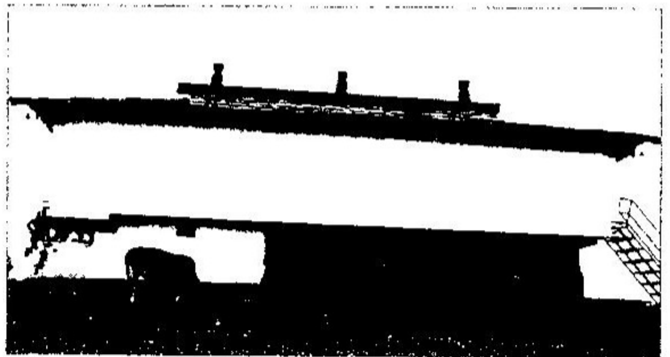
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदार की अध्यक्षता में प्रजा द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं 'बेठर' व गुग्गुल धूप से।

रथ : पाँच छत्रों से युक्त फेटा रथ, जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।

मोहरे : कुल चौबीस, जिनमें से तीन स्वर्ण के, चार अष्ट-धातु के तथा सत्रह रजत निर्मित हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में सज्जित होते हैं।



जनश्रुति : किसी समय ढनाली गाँव के लम्बरदार परिवार के पास एक लड़की आयी। उन्होंने उसे गाय की सेवा का काम सौंप दिया। कन्या गाय को चराने के लिए ढनाली फाट में ले जाती। जब भी गाय को कोई कष्ट होता तो वह रोने लगती। एक रात जब वह सोई हुई थी तो उसके माथे से तेज निकलने लगा, जिससे सारा कमरा प्रकाशित हो गया। उसके प्रकाश से लम्बरदार की नींद खुल गई। जैसे ही कन्या को पता चला कि लम्बरदार ने उसके माथे से निकलते प्रकाश को देख लिया है, वह वहाँ से भाग कर पड़ेई गाँव के साथ वाली बणी में जाकर अन्तर्धान हो गई और शिला रूप में प्रकट हुई। तब से पड़ेई के लोग उस शिला को पूजने लगे। बाद में लोगों ने पड़ेई में भी मंदिर बनाकर देवी की स्थापना की।

भागासिद्ध

गाँव : डुघीलग, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : डुघीलग।
भंडार : मंदिर में ही।
स्थापत्य : देवी का प्राचीन मंदिर देशज शैली में बना था, जिसके स्थान पर कुछ वर्ष पूर्व प्रस्तर व देवदार की लकड़ी से एक भव्य मंदिर का निर्माण किया गया है। इसकी दीवारों पर देवी-देवताओं की काष्ठ-कलाकृतियाँ हैं। मंदिर का मुख्य द्वार व प्रवेश द्वार विशेष आकर्षक हैं। पचीस फुट वर्गाकार परिसर में संगमरमर बिछा है, जिसके मध्य में पैंतीस फुट ऊँची पताका है। परिसर में माँ शेराँवाली के चित्र अंकित हैं।
शाखा मंदिर : छुरला गाँव के कटरेड़ी नामक स्थान पर।
प्रबंध : कारकुन की समिति द्वारा।
न्याय प्रणाली : 'मट मलोही' द्वारा। इसके पश्चात् आखिरी फैसला कारदार व कारकुनों के माध्यम से होता है।
पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।
रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ।
मोहरे : रजत निर्मित पंद्रह।

मेले-त्योहार : डुघीलग गाँव में *शनोहली* व *कटरेड़ी* तथा छुरला गाँव में *कटरेड़ी* मेले होते हैं। डुघीलग के उक्त दोनों मेलों के दौरान माता गाँव में ही अपने मंदिर से बाहर निकलकर 'सौह' में 'हुलकी' देती है। रात में 'साइतरंगा' होता है। गाँव तथा बाहर से आए सभी श्रद्धालु एक-दूसरे के हाथ पकड़कर मंदिर के सात फेरे लगाते हैं। इसमें माता का रथ तथा गूर पंक्ति के अंत



में चलते हैं। इस परिक्रमा का नेतृत्व नौड़ जाति का व्यक्ति करता है। इस दौरान देव-गीत गाए जाते हैं। इस मेले में कुगश (बिच्छूबूटी) से एक-दूसरे पर प्रहार करने का खेल खेला जाता है। इससे होनेवाली जलन को लोग देवी का आशीर्वाद मानते हैं। शाम को सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन भी होता है।

छुरला कटरेड़ी मेला प्रति वर्ष चैत्र मास में छुरला गाँव में जुटता है। मेले की पहली रात को देवी छुरला गाँव में आ कर कटरेड़ी स्थित अपने मंदिर में निवास करती है। अगली प्रातः मेले का आरम्भ होता है और हुलकी के बाद देवी पुनः मंदिर में विराजती है। यह मेला दो दिनों तक चलता है। मेले की समाप्ति के बाद देवी डुघीलग गाँव के लिए प्रस्थान करती है। रास्ते में कुफरीधार नामक स्थान में माता के सभी गूर 'भारथा' सुनाते हैं और 'बर्शोहा' देते हैं।

जनश्रुति : किसी समय डुघीलग क्षेत्र में राजा निधिचंद का शासन था। वह बहुत अत्याचारी और क्रूर राजा

मेले-त्योहार : एक-दो प्रविष्टे वैशाख को देव-रथ ज़िया के डेहरे में विरशू मनाने आता है। आषाढ़ की संक्रांति को *शाहनू मेला*, भाद्रपद मास की पूर्णिमा से सात दिवसीय मेला आरम्भ होता है। इस मेले में ग्राम गनाखला के भंडार से पुजारी देवता के 'निशान' को पीठ पर उठाकर और आभूषणों को एक पोटली में बाँध कर घंटा-ध्वनि के साथ रात्रि के समय बिजली महादेव के मूल मंदिर मथाण की ओर चल पड़ता है। मथाण में महादेव के सौर (तालाब) के पास पहुँच कर वादक व कारकुन वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ निशान को मंदिर में ले जाते हैं। मंदिर के प्रांगण में रथ को सजाया जाता है। तत्पश्चात् मेला आरंभ होता है। गूर देवता की भारथा सुनाता है।

जनश्रुति : किसी समय जलंधर दैत्य ने अपनी तपस्या के बल पर भगवान् शिव से वरदान के रूप में अग्नि बाण प्राप्त किया और उसका प्रयोग वह देवताओं पर करने लगा। इसकी शक्ति से उसने ब्रह्मा और विष्णु को भी हरा दिया। तब देवता भगवान् शिव से उसे मारने की प्रार्थना करने लगे। उस दैत्य की पूँछ जालंधर में और सिर कुल्लू में था। महादेव ने अपने गुर्ज से उसके सिर पर प्रहार कर उसे मार डाला। ऐसी मान्यता है कि जिस स्थान पर वह मरा, वहाँ एक लिंग प्रकट हुआ। दुष्ट शक्तियों के विनाश के लिए महादेव ने इन्द्र से कहा कि जब भी उसे ऐसी शक्तियों के पुनर्जीवित होने का आभास हो, वह आकाशीय बिजली गिरा दिया करे। तब से आज तक यह क्रम जारी है। हर दूसरे या तीसरे वर्ष बिजली गिरती है। इससे अन्यत्र हानि न हो, इसलिए महादेव उसे अपनी पिंडी पर धारण करते हैं, जिससे पिंडी खंडित हो जाती है। मंदिर का पुजारी इसके खंडित टुकड़ों को मक्खन से जोड़कर देवानुष्ठान करता है और कुछ ही दिनों में पिंडी अपने वास्तविक रूप में परिणत हो जाती है। बिजली को अपने ऊपर धारण करने के कारण शिव यहाँ बिजली महादेव के नाम से विख्यात हैं।

भटंती देवी

गाँव : पड़ेई, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : भूटान।

मंदिर एवं भंडार : पड़ेई।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर को उखाड़ कर 20 वर्ष पूर्व पैगोड़ा शैली में बनाया गया मंदिर ढाई मंज़िल का है; जिसके काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी की गई है।

शाखा मंदिर : पड़ेई वणी (जंगल), भयाली गाँव।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पड़ेई, रुमास, टापरू बाई, शारनी, दियांथला, जलूग्राँ, हंसी रा शौरन।



प्रबंध : कारदार के अधीनस्थ पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, देवी-रथ द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर व चूड़ी धूप से।

रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ जिसके शीर्ष पर छत्र लगता है।

मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : वैशाख, श्रावण तथा आश्विन संक्रांतियों को देवी के मुख्य उत्सव मनाए जाते हैं। इन तीनों महीनों की संक्रांतियों की पूर्व संध्या को माता का रथ बणी मंदिर में ले जाया जाता है। अगले दिन पड़ेई गाँव की महिलाएँ वहाँ धूप व फूल अर्पित करती हैं। आश्विन के चार प्रविष्टे को *पड़ेई-शौयरी* मेला मनाया जाता है। फाल्गुन संक्रांति को *फागली* का आयोजन होता है।

था। वह क्षेत्र के लोगों से कर के रूप में गाय का दूध लेता था। एक बार एक स्त्री, जिसने हाल ही में बच्चे को जन्म दिया था वह राजा के लिए दूध ले जा रही थी। रास्ते में उससे अचानक दूध गिर गया। राजा के भय से उसने अपने स्तनों से दूध निकाल कर उसकी पूर्ति कर दी। राजा को वह दूध बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने इस स्वाद का रहस्य जानने का आदेश दिया। पूरी जानकारी मिलने पर क्रूर राजा ने भविष्य में गाय के दूध के स्थान पर प्रसूता महिलाओं का दूध कर-रूप में लेने की घोषणा की। अत्याचार इतना बढ़ गया कि नवजात को मारा जाने लगा।

इस क्रूरता का अंत करने के लिए माता भागासिद्ध डुघीलग में प्रकट हुई और किसी दलित वर्ग के किसान को खेत में हल चलाते हुए भूमि से एक मोहरे के रूप में मिली। उसने उसे अन्न की आधी भरी कोठरी में रखा। दैवी-शक्ति से अगली प्रातः वह कोठरी अन्न से भर गई। इस घटना की चर्चा पूरे गाँव में होने लगी। सभी को जानने की उत्सुकता थी कि यह किस शक्ति का चमत्कार है। अचानक किसी व्यक्ति में देवी की शक्ति प्रकट हुई। उसने कहा कि वह देवी भागासिद्ध है, जो दुष्ट राजा का विनाश करने के लिए काईस के पीणी नामक स्थान से आकर यहाँ प्रकट हुई है।

जब राजा को इस बात का पता चला तो वह देवी के शक्ति-परीक्षण के लिए पीणी गया। अपने पराक्रम के घमंड में उसने देवी के गूर को ललकारा और लोहे की छड़ को वृत्त आकार देकर, उसे सीधा करने को कहा। गूर ने जब उसे पकड़ा तो दैवी शक्ति से वह छड़ साँप में परिवर्तित हो गई और साँप राजा का पीछा करता हुआ डुघीलग पहुँचा। यहाँ पहुँच कर राजा ने अपनी हार मानते हुए देवी से क्षमा माँगी और कहा-माँ! मैं आपकी शक्ति के आगे नतमस्तक होता हूँ और यह स्थान आपके लिए छोड़ता हूँ। यह कहकर वह वहाँ से दूसरे स्थान पर चला गया और देवी की इस स्थान में स्थापना हुई।

भागासिद्ध : धमेसरी देवी

गाँव : तलपीणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : तलपीणी।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से लकड़ी व पत्थर का देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का प्राचीन मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर कलशयुक्त वदोर स्थापित है। मंदिर के सामने पंद्रह फुट का पत्थर का प्रांगण है।

शाखा मंदिर : कसलादी से तलपीणी क्षेत्र के मध्य बाईस देऊघरे। इनमें से कुछ मंदिरों में देवी के सहायक देवता वास करते हैं।



अधिकार क्षेत्र : फाटी पीणी, फाटी खराहल, फाटी कशावरी तथा ऊझी परोल, लग परोल एवं कुल्लू।

प्रबंध : देवी के कारकुनों की समिति जिसे हारियानों द्वारा सहयोग दिया जाता है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पूछ डालकर, गुले तथा पोगले विधि से।

पूजा : पुजारी द्वारा प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर धूप के साथ।

रथ : देवदार की लकड़ी से बना दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ, जिसके शीर्ष पर दो छत्र सुशोभित हैं। इनमें से ऊपर का छत्र स्वर्ण का तथा नीचे वाला रजत का है। अर्गलाओं को चाँदी के पत्तर से मढ़ा गया है।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नया साजा* मनाया जाता है। इस दिन टिपरी गाँव का पुरोहित आकर नववर्ष का फलादेश सुनाता है। गूर जगती पर बैठ कर अपनी घंटी में चावल और गुड़ डालता है और दक्षिणा स्वरूप उन्हें पुरोहित की पत्री पर डाल देता है। उसके बाद 'पूछ' होती है। वैशाख संक्रांति को *कोन्हा बिरशू*, 12 वैशाख को *गोठी री जाच* मनाई जाती है जिसमें पंद्रह-सोलह 'पेहरू' (बलि पशु) भी काटे जाते हैं। जेठ की संक्रांति को 'पूछ' का कार्यक्रम होता है। श्रावण संक्रांति को देवी घर-घर जाकर धूप ग्रहण करती है। भाद्रपद संक्रांति को सभी निशान मंदिर व भंडार से बाहर निकाले जाते हैं और देवी का जन्मदिन मनाया जाता है। इसे *शाऊण जाच* कहते हैं जो सात दिन तक चलती है। इसमें 25 गूर देऊखेल करते हैं। यह जाच पाँच दिन तक तलपीणी में लगती है और छठे दिन देवी छलादी गाँव जाती है। सातवें दिन वापस लौटती है।

आश्विन संक्रांति के दिन मंदिर में काऊणी तथा धान का सलाहरा (भोग) बनाया जाता है। मंघर साजे को देवी धूप ग्रहण करती है तथा पूछ डाली जाती है। पौष साजे को पूछ के बाद कपाट बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : देवी के वर्तमान पुजारी के पूर्वज भेड़ें चराने चंद्रखणी फाट के अनेक स्थानों में जाते थे। एक बार उनमें से एक व्यक्ति भेड़ों को लेकर मलाणा के सामने के क्षेत्र बाड़ा पखोड़ा में गया। वहाँ उसे एक सुन्दर शिला मिली और वह मोहित होकर उससे खेलने में मग्न हो गया। थोड़ी देर बाद शिला से आवाज़ आई कि वह उसके साथ जाना चाहती है। पुहाल उसे लेकर चंद्रखणी होते हुए मार्ग में एक सरोवर के पास आराम करने बैठा और सोचने लगा कि कोई चमत्कार दिखाने पर ही शिला को वह देवी मानेगा। उसके ऐसा सोचते ही शिला में से एक चुहिया निकली और उसने सरोवर में छलाँग लगा दी। पानी में उसके जाते ही सर सूख गया और बाहर निकलते ही पुनः जलपूर्ण हो गया। उस समय से ही उस स्थान का नाम फुटा-सर पड़ा। यह चमत्कार देखकर पुहाल अपनी भेड़ें और शिलारूपी देवी को लेकर गाँव के समीप पहुँचा। गाँव में पिणसू नामक दैत्य का पहरा रहता था। वहीं कराणी माता जराहण (बिच्छू बूटी) के मध्य बैठकर तप कर रही थी। उसने अपनी दिव्य दृष्टि से जब देखा कि भागासिद्ध का आगमन हो रहा है तो उसने पिणसू दैत्य को इस भय से कि कहीं वह भागासिद्ध को तंग न करे, बिच्छू बूटी की सहायता से वहाँ से खदेड़ दिया और भागासिद्ध का स्वागत किया। देवी वहाँ ठाकुर-पुजारी के साथ बहुत खुश थी। तभी शाहिटा गाँववाले माता को अपने साथ ले जाने के लिए आए। देवी दुविधा में पड़ गई। तब पुजारी ने देवी को जाने से रोकते हुए वचन दिया कि वह मरते दम तक उसे किसी भी प्रकार की कमी नहीं आने देगा। तब से देवी वहीं है, परन्तु पूरी पीणी फाटी में देवी की मान्यता है और उसके निमित्त इस क्षेत्र में बाईस मंदिर बनाए गए हैं। देवी का पुजारी उसी वंश से होता है, जिसके साथ यह इस स्थान पर आई थी।

भागासिद्ध

गाँव : नरोगी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नरोगी।

स्थापत्य : डेढ़ मंज़िल का ढलानदार छतवाला पुराना मंदिर। इसके गर्भगृह में मूर्ति की स्थापना है परन्तु परम्परा के अनुसार उसे देखने का निषेध है। पुजारी भी आँख पर पट्टी बाँधकर देवी की पूजा करता है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव वीरनी, नरोगी, बरशोगी, रोपा सेरी, बाहभ्रा, तरैहण, खौलाआगे।

प्रबंध : प्रधान, सचिव व कोषाध्यक्ष की समिति।

न्याय प्रणाली : पर्ची और 'मरोहड़ी' डालकर, चावल, फूल, धड़छ द्वारा भी।



पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान है। देवी का पुजारी प्रातः स्नान करके, धोती पहनकर नंगे पैर पैदल जाकर माता की बावड़ी से झारी में जल भरकर लाता है। जल लाते समय रास्ते में वह न तो किसी से बात करता है और न ही किसी को छूता है। उस जल से सभी मोहरों का स्नान कराकर घंटी को धोकर, चंदन लगाता है। धड़छ में बेठर धूप जलाकर देवता को धूप देता है। रथ की पूजा तभी की जाती है, जब मेले-उत्सवों के अवसर पर देवी बाहर निकलती है।

रथ : छह छत्रों से अलंकृत फेटा रथ, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं।

मोहरे : एक अष्टधातु का और अठारह रजत निर्मित।

मेले-त्योहार : *वैशाखी, जन्माष्टमी, शाउणी संक्रांत* तथा *शौर बौरना*।

जनश्रुति : किसी समय नरोगी में ठाकुरों का शासन था। वहाँ नोरू नाम का एक अत्याचारी ठाकुर था, जिसके विनाश हेतु देवी वहाँ कन्या रूप में प्रकट हुई। जब ठाकुर ने उस रूपवती कन्या को देखा तो वह उस पर मुग्ध हो गया और उसने देवी पर कामुक दृष्टि डाली। इससे कुपित होकर उसने ठाकुर का सर्वनाश करके वहाँ के लोगों को उसके अत्याचार से मुक्ति दिलाई। कृतज्ञता स्वरूप लोगों ने गाँव में देवी के निमित्त मंदिर बनाया।

भागासिद्ध

गाँव : बरशोगी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : चंद्रखणी जोत।

मंदिर एवं भंडार : बरशोगी के घीयूनाली स्थान पर।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर के स्थान पर सात-आठ वर्ष पूर्व पैगोड़ा शैली का त्रिछतीय मंदिर बनाया गया है, जिसकी छतों पर पत्थर के स्लेट लगे हैं। गर्भगृह में अष्टधातु की मूर्ति स्थापित है और चार वर्ष पूर्व माँ की चार फुट ऊँची संगमरमर की मूर्ति की भी स्थापना की गई है।

शाखा मंदिर : गाँव नरोगी।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बरशोगी, खौलाआगे, रोपा सेरी, सेर जागली, बाहभ्रा।



प्रबंध : कारदार, पुजारी और गूर की समिति।
न्याय प्रणाली : 'घोंडी, धड़छ, पर्ची, फूल तथा 'मरोहड़ी' विधि से।
पूजा : प्रत्येक मास की संक्रांति व पूर्णिमा को पुजारी द्वारा घोंडी-धड़छ के साथ पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त विशेष त्योहारों के अवसर पर भी पूजा होती है। प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है।
रथ : नहीं है, केवल घंटी व धड़छ ही देवता के प्रतीक हैं।
मोहरे : संगमरमर व अष्टधातु की दो मूर्तियाँ।
मेले-त्योहार : *वैशाखी, शाऊण* तथा *फागुण* मेले लगते हैं।
जनश्रुति : एक समय पीणी के ठाकुर का अपनी प्रजा पर अत्याचार बढ़ा तो देवी ने उसके साठ परिवारों का नाश कर दिया। फिर वह नरोगी पहुँची और वहाँ के दुष्ट शासक नौर के ठाकुर का अंत किया। नरोगी से आकर देवी विश्राम करने हेतु बरशोगी गाँव के घीयूनाली नामक स्थान पर ठहरी और वहीं लुप्त हो गई। कालांतर में सन् 1850 ई. में गुलेर राजपरिवार के तुलसी राम सिंह को स्वप्न में माता के दर्शन हुए और देवी ने उससे अपने लिए स्थान माँगा। वह देवी के प्रतीक रूप में घोंडी और धड़छ लाया और अपने घर में ही देवी को पूजने लगा। उसी मकान के स्थान पर आज मंदिर बना है और गुलेर परिवार से ही पीढ़ी दर पीढ़ी देवी के पुजारी और गूर बनते आ रहे हैं। लोगों के भाग्य जगाने के कारण देवी भागासिद्ध के नाम से ख्यात है।

भारथा देवी

गाँव : गलछेत, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गलछेत।
स्थापत्य : देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर गाँव के ऊपरी भाग में स्थित है। इसमें धातु से बनी देवी की मूर्ति स्थापित है। मंदिर के साथ देव सौह भी है।
शाखा मंदिर : सजूणी।
अधिकार क्षेत्र : गाँव गलछेत और सजूणी।

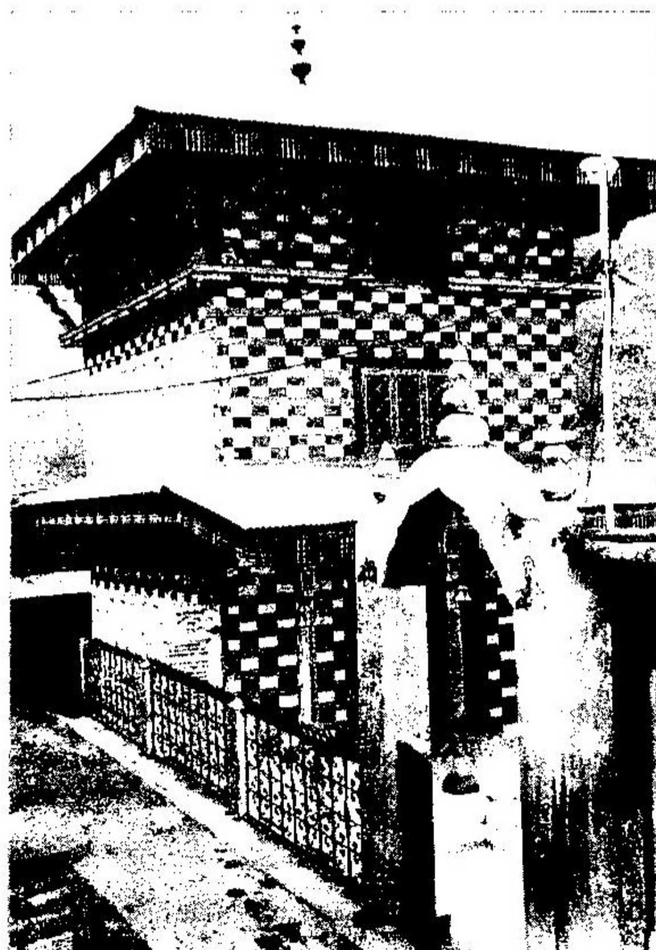


प्रबंध : कारदार, पुजारी, कठियाला, काईथ की समिति।
न्याय प्रणाली : 'पूछ, गैटी, पोगै, मलोही' द्वारा।
पूजा : मंदिर में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर जब देवरथ सजाया जाता है तब पुजारी देववाद्यों की धुन पर घंटी और 'धड़छ' से सुबह-शाम पारम्परिक विधि से पूजा करता है।
रथ : दो अर्गलाओं से उठाया जानेवाला अखरोट की लकड़ी से बना फेटा रथ। इसके शीर्ष पर रजत निर्मित तीन छत्र सुशोभित रहते हैं। तीन अन्य छत्र रथ के अग्रभाग पर लगाए जाते हैं, जिन्हें जानु कहते हैं।
मोहरे : ग्यारह चाँदी के और एक पीतल का।
मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की संक्रांति को तीन दिवसीय *कापू* मेला होता है। इस अवसर पर देव-मिलन, 'देव हुलकी' तथा 'देऊखेल' आदि कार्यक्रम होते हैं।
जनश्रुति : गलछेत गाँव में कोठा खानदान के टौलकू नामक व्यक्ति के पुत्र खुडु को एक बार खेत में खुदाई करते हुए मोहरा मिला। उसे घर लाकर उसने कोठड़ में रख दिया। रात को वह निश्चय करके सो गया कि सुबह ग्रामवासियों से इसकी स्थापना की बात करेगा। प्रातः उठकर जब वह कोठड़ के पास गया तो देखा कि मोहरा कोठड़ से निकल कर बाहर आ गया है। वह मोहरा लेकर घर से निकला और गाँव के लोगों को इसके चमत्कार की बात बताई। उसी क्षण खुडु में देव शक्ति का प्रवेश हुआ। उसने बताया कि वह भारथा देवी है और सभी के कल्याण

के लिए प्रकट हुई है। तब लोगों ने इसे ग्राम देवी के रूप में स्थापित कर खुडु को इसका गूर बना दिया। जनश्रुति के अनुसार एक बार कुल्लू में हैज़ा की महामारी फैल गई। बीमारी थमने का नाम नहीं ले रही थी। गाँव गलछेत के साथ लगता सजूणी गाँव भी इसकी चपेट में आ गया। तब बीमारी के आगे फैलने के भय से खुडु वंश के एक व्यक्ति ने सजूणी में फैली महामारी को रोकने के लिए देवी से प्रार्थना की, जिससे बीमारी एकदम रुक गई और गलछेत गाँव इससे बच गया। इस घटना के बाद सजूणी के लोग भी देवी के उपासक बन गए और उन्होंने अपने गाँव में देवी के मंदिर का निर्माण किया।

भालठी नारायण

गाँव : भालठा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : भालठा।
मंदिर : भालठा के देहरीधार नामक स्थान में।
भंडार : मंदिर में ही है।
स्थापत्य : वर्ष 1990 में काठकुणी शैली में बना यह मंदिर तीन मंज़िल का है। इसकी ढलानदार छत चादर से ढकी है। मंदिर की दूसरी मंज़िल में देवता का भंडार है। मंदिर के मुख्य द्वार पर सुन्दर नक्काशी हुई है। मंदिर के साथ एक बिस्वा भूमि में देवता की 'सौह' है, जहाँ 'देऊखेल' होती है।
शाखा मंदिर : गाँव खलाड़ानाला। यह मंदिर सीमेंट व तराशे पत्थरों से निर्मित है। मंदिर परिसर में माँ भागासिद्ध तथा महादेव के मंदिर भी हैं।
अधिकार क्षेत्र : छुरला, भालठा, खलाड़ानाला।
प्रबंध : हारियान (प्रजा) व कारकुन की समिति।
न्याय प्रणाली : रथ द्वारा तथा गूर के माध्यम से। इनके अतिरिक्त अक्षत द्वारा; जिसमें गूर घोंडी (घंटी) या धड़छ (धूपदान) को अक्षत पर रखता है। यदि इनमें विषम संख्या में अक्षत चिपक कर आएँ तो कार्य-सिद्धि मानी जाती है।



पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।
रथ : पहले सिर पर उठाया जानेवाला था, लेकिन अब दो अर्गलाओं वाला है।
मोहरे : नौ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का, शेष चाँदी के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* और श्रावण मास में *शाउण जाच* होती है। इन मेलों में भालठी नारायण गाँव भालठा में 'हुलकी' देने के बाद खलाड़ा गाँव में जाता है। वहाँ पूरे दिन ठहरने के पश्चात् शाम को वापिस अपने मंदिर में आ जाता है।
जनश्रुति : एक बार भालठा गाँव के समीप ढाढली सेरी नामक स्थान पर दलित वर्ग का एक कृषक अपनी पत्नी के साथ खेत में काम कर रहा था। शाम हो रही थी। अचानक हल के फाल में फँसकर एक मोहरा भूमि से बाहर निकल आया। कृषक उसकी परवाह किए बगैर हल चलाता रहा। उसकी पत्नी ने उसे कहा कि हल रोककर

देखें कि वह क्या है? कृषक खेत को जोतकर काम समाप्त करने की जल्दी में था। उसने कहा कि जो भी है अभी किलटे में रख दे, इसे बाद में देखेंगे। पूरा खेत जोत कर जब वे दोनों घर वापिस आए तो उन्होंने किलटे में मोहरे को देखा। उन्हें चिंता हुई कि इसे कहाँ रखा जाए? तब कृषक ने कहा कि मोहरे को घर की एक शहतीर के ऊपर रख दो। कृषक बहुत गरीब था, परन्तु जब से मोहरा उसके घर में आया तो उसका घर धन-धान्यपूर्ण हो गया।

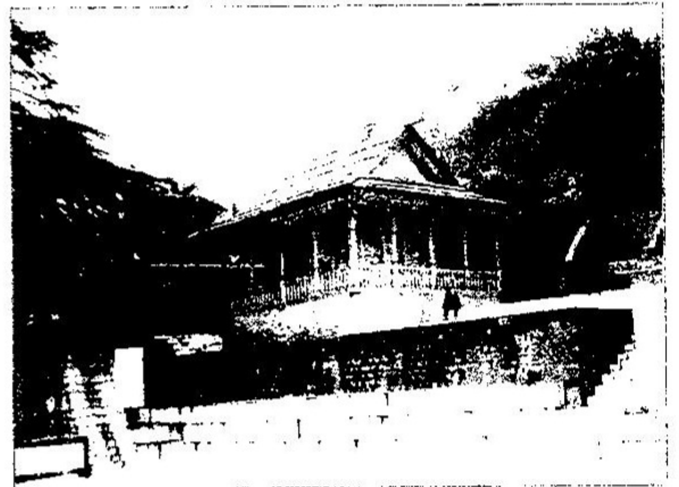
एक बार कृषक की पत्नी अपने गाँव में ही पज़्यारे बेहड़ में किसी की ओखली में काउणी (धान की एक किस्म-कंगनी) कूटने के लिए ले गई। वहाँ कोलथू नाम का पज़ियारा आया। काउणी देख कर उसने उस स्त्री से पूछा कि इतनी-सी काउणी से उसके परिवार का पेट कैसे भरेगा? उसने कोलथू को बताया कि इससे उसके पूरे परिवार का पेट भरने के बाद भी अन्न बच जाएगा। ऐसा कह कर उसने मुट्ठी भर काउणी कोलथू को भी दी। कोलथू ने उस रात वही काउणी पकाई। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके पूरे परिवार के खाने के पश्चात् भी काफी खाना बच गया। अगली प्रातः वह उस स्त्री के पास गया और इस चमत्कार के बारे में पूछा। तब उस स्त्री ने इसे खेत में मिले मोहरे की कृपा बताया। कोलथू ने उससे पूछा कि क्या वे उस मोहरे की पूजा करते हैं? स्त्री ने कहा कि वे उसकी पूजा नहीं करते, बल्कि उन्होंने तो वह मोहरा घर की शहतीर पर रखा हुआ है। यह सुनकर कोलथू ने उनसे वह मोहरा माँगा और उसकी पूजा-अर्चना शुरू की। संतान न होने के कारण कोलथू का वंश चलानेवाला कोई नहीं था, इसलिए उसने अपनी सारी सम्पत्ति देवता के नाम कर दी। धीरे-धीरे देवता की शक्ति से प्रभावित होकर ग्रामवासियों ने भाल़ठा गाँव में मंदिर का निर्माण कर इसे नारायण देवता के रूप में पूजना आरम्भ किया। गाँव के नाम पर यह *भाल़ठी नारायण* के नाम से प्रख्यात हुआ।

भुवनेश्वरी देवी

गाँव : पुईद, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पुईद।

स्थापत्य : पत्थर की वर्गाकार चौकी पर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का सुंदर मंदिर, जिसके चारों ओर खुला बरामदा है। इसमें काष्ठ स्तम्भ और जंगला लगा है। मंदिर का काष्ठ-कार्य दर्शनीय है। चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं और शिखर पर 'बदोर' लगा है, जिस पर काष्ठ-निर्मित तीन कलश शोभित हैं। छत के चारों ओर लकड़ी की झालरें लगी हैं। इस मंदिर से ऊपर की ओर नाग देवता तथा नारायण देवता के छोटे मंदिर तथा नीचे की ओर हनुमान मंदिर है। मंदिर



परिसर में टायल बिछाये गए हैं और साथ ही सराय और औषधालय भी है।

शाखा मंदिर : भेखली।

अधिकार क्षेत्र : गाँव घराकड़, पुईद, पोड़ू, शाड़, चझड़, शराऊगी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : 'गुले लगाना' विधि से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : खड़ा, जिसके शिखर पर छत्र सुशोभित है। इसे पुजारी के अतिरिक्त किसी द्वारा भी स्पर्श करना वर्जित है।

मोहरे : हैं, लेकिन इनके बारे सूचना देना प्रतिबंधित है।

मेले-त्योहार : वैशाख शुक्लाष्टमी को देवी के *जन्म दिवस* का आयोजन, आषाढ़ मास में *शारनू मेला,* कार्तिक मास में दशहरे के अवसर पर *माईण*। इनके अतिरिक्त मंदिर में यदि कोई विशेष कार्य, यथा-नव निर्माण, 'घाट', 'बदोर' लगाने, 'धौज़' लगाने आदि का काम करवाया गया हो तो *काहिका* का आयोजन किया जाता है। काहिका की रस्म गाँव शिम के थान देवता द्वारा संचालित की जाती है। सभी मेलों में देवी का रथ सूर्यास्त के बाद ही निकलता है और सारे कार्यक्रम भी तभी आरम्भ होते हैं।

जनश्रुति : भुवनेश्वरी देवी का मूल स्थान भेखली गाँव है। मान्यता है कि आज से लगभग 700 वर्ष पूर्व तत्कालीन राजा भादर सिंह के काल में देवी का कोई उपासक परिवार भेखली से पुईद आया तो उसने वहाँ भी देवी की स्थापना की। कालांतर में मंदिर का निर्माण किया गया। जिस परिवार के साथ देवी पुईद में आई थी, उसी परिवार का वंशज आज भी देवी का कारदार बनता है।

भेखली देवी

गाँव : भेखली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भेखली।

स्थापत्य : सुलतानपुर (कुल्लू) से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित भेखली गाँव में काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसका प्रवेशद्वार उत्तराभिमुख है। भेखल की लकड़ी का बना द्वार इतना छोटा है कि लोगों को झुककर भीतर प्रवेश करना पड़ता है। मंदिर की ढलानदार छत पत्थरों से ढकी है जिसके शिखर पर लगे 'बदोर' पर त्रिशूल युक्त लकड़ी के तीन कलश हैं। देवता का भंडार गाँव में ही काठकुणी शैली में बने एक अन्य भवन में है। यह साढ़े तीन मंज़िल का है, जिसका प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है। इसकी दो मंज़िलों में केवल दीवारें हैं, तीसरी मंज़िल में चारों ओर बरामदा है। इसी मंज़िल में देवता का सारा सामान रखा जाता है। इससे निचली मंज़िल में भंडारी के रहने का स्थान है।



शाखा मंदिर : गाँव सारी, जहाँ भेखली देवी और सारी नारायण सामूहिक रूप से रहते हैं।

अधिकार क्षेत्र : कोठी सारी के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदार के माध्यम से, 'मलोही' डालकर।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं वैदिक विधि से। गर्भगृह में पुजारी और राजकुल का मुखिया ही जा सकते हैं। प्रत्येक मंगलवार को मंदिर का द्वार देवी के दर्शनार्थ श्रद्धालुओं के लिए खोला जाता है।

रथ : फेटा। जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।

मोहरे : स्वर्ण निर्मित दस।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में *बिरशू,* श्रावण में *शान्हू,* आश्विन संक्रांति को *शौयरी,* सात-आठ वर्ष के अंतराल में *जौग,* जिसमें सात बलियाँ दी जाती हैं। पहली बलि राजा द्वारा अर्पित होती है। इस *जौग* में कोठी सारी के सभी देवता एकत्र होते हैं जिनमें मनाली की देवी हिडिम्बा भी सम्मिलित होती है। जौग का विसर्जन सरवरी नदी के किनारे बलियाँ देकर किया जाता है। इन सभी मेले-उत्सवों में सारी गाँव का नारायण साथ रहता है, परन्तु भेखली देवी के साथ देव नृत्य नहीं करता।

जनश्रुति : भारथा के अनुसार कलियुग के आरम्भ में जब पाप बढ़ने लगा तो लोगों की रक्षा के लिए पृथ्वी पर देवी-देवताओं ने अवतार लिया। इसी समय भुवनेश्वरी

देवी हस्तिनापुर (दिल्ली) से सुकेत होते हुए कुल्लू की लताड़ी सौह, जिसे आज निचला ढालपुर कहते हैं, में पहुँची। वहाँ पर रहनेवाली अन्य शक्तियों को साथ लेकर देवी मंडी गई, जहाँ अत्यंत क्रूर नाग जाति के राजाओं का शासन था। अन्य देवताओं की सहायता से उन राजाओं का नाश कर देवी गढ़गाजन नामक स्थान पर आ पहुँची। यहाँ कुल्लू के असंख्य देवी-देवताओं ने इसकी स्तुति की। तदनंतर देवी भुभूजोत होकर तिऊन और फिर शालंग होती हुई खलाड़ा नामक स्थान पर आ पहुँची। यहाँ नारायण देवता और जोगिनियों के साथ जुआ-पासा खेला तथा उनके कहने से उस दैत्य का नाश किया, जिसने उस क्षेत्र में आतंक मचा कर वहाँ के पानी के चश्मे पर अधिकार कर लिया था। इससे लोगों को पीने के लिए भी पानी नहीं मिलता था। यह जलस्रोत आज 'राक्षस पानी' के नाम से प्रसिद्ध है और भयंकर सूखा पड़ने पर भी यहाँ का जल सूखता नहीं है। खलाड़ा गाँव में पानी पहुँचा कर नारायण देवता और जोगिनियों को साथ लेकर देवी खणी सौह पहुँची। आज यहाँ खणीयांद गाँव के लोग माता को महिषमर्दिनी के रूप में पूजते हैं और उस स्थान पर नई प्रसूता गाय का दूध-घी चढ़ाते हैं।

खणीयांद से प्रस्थान करके माँ सारी गाँव गई और वहाँ के दुष्ट राणाओं का वध किया, जिसके फलस्वरूप वहाँ के लोगों ने देवी की काली के रूप में पूजा आरम्भ की। सारी नारायण ने देवी को अपनी धर्म बहन बनाया। तब देवी वहाँ सारी नारायण के साथ कुछ समय तक रही। उसके बाद वह भेखली आई और पालशर वंश के एक व्यक्ति में प्रविष्ट होकर बोली कि मेरा मंदिर बनाया जाए जो भेखल की झाड़ी के नीचे बने मकड़ी के जाले के आकार का हो। जब गाँववालों ने भेखल की झाड़ी उखाड़ी तो सचमुच उसके नीचे मकड़ी का जाला बना हुआ था। जाले के नीचे एक पिंडी मिली। उसी स्थान पर मंदिर का निर्माण किया गया।

मंगलेश्वर महादेव

गाँव : छैऊंर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : छैऊंर।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर पहाड़ी शैली में बना है।

शाखा मंदिर : गाँव कोन्हा चौहकी, चकरिंगा।

अधिकार क्षेत्र : छैऊंर, जछणी, कोट, कोन्हा चौहकी, चकरिंगा, बिरनी, फागू।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कुठियाला, छटाली की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं प्रतिदिन पंचोपचार विधि से।



रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।

मोहरे : अठारह।

मेले-त्योहार : हर तीसरे वर्ष श्रावण मास की संक्रांति से पाँच दिवसीय काहिके का आयोजन होता है। पूर्व संध्या को 'काहिका' खड़ा किया जाता है। संक्रांति से तीन दिन तक देवता पूरे गाँव में धूप ग्रहण करता है। अगले दिन नौड़ मारने और उसे जीवित करने की परम्परा निभाई जाती है। इस दिन आस-पास के अन्य देवता-कपिल मुनि, गर्गाचार्य आदि भी मेले में शामिल होते हैं। पाँचवें दिन मंगलेश्वर महादेव मेहमान देवताओं के साथ पूरे गाँव में धूप ग्रहण करता है। श्रावण के 20

प्रविष्टे को मंदिर परिसर में खीर का भोज दिया जाता है। आश्विन मास की संक्रांति को देवता गाँव में धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : छैऊंर गाँव में मंगला नाम की रानी रहती थी। एक ग्वाला उसकी गाय को चराता था। एक बार गाय ने दूध देना बंद कर दिया। तब रानी ने गाय का पीछा करके उसे एक पत्थर पर दूध की धार छोड़ते और साँप को उस दूध को पीते देखा। उसी रात को रानी को स्वप्न हुआ कि वे सर्प के रूप में स्वयं महादेव हैं। प्रातः रानी को उस स्थान पर एक पिंडी मिली। रानी को सबसे पहले इसके दर्शन होने के कारण रानी के नाम पर महादेव का नाम मंगलेश्वर महादेव पड़ा।

महादेव

गाँव : चौकी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : चौकी।

भंडार : गाँव चौकी में कोट शैली का।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर पहाड़ी शैली में बना है। इसकी तीन छतें स्लेटों से आच्छादित हैं। शिखर पर बदोर लगा है।

शाखा मंदिर : चौकी में सेरी नामक स्थान में डेढ़ मंज़िल का पहाड़ी शैली में बना है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव चौकी, पौहल और बालथड़।

प्रबंध : कारदार, कुठियाला, पालसरा, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।

रथ : फेटा। इसे अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाता है।

मोहरे : कुल अठारह। रथ में कभी सोलह मोहरे ही लगाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *बिरशू* होता है। सुबह मंदिर में पूजा के बाद 'पूछ' होती है। शाम को देवता पूरे गाँव में धूप ग्रहण करता है।



कार्तिक मास की अष्टमी को दो दिवसीय मेले का आयोजन होता है। इसमें रात को हरण-नृत्य होता है और स्वाँग रचाए जाते हैं।

जनश्रुति : किसी समय चौकी गाँव का एक व्यक्ति धार गाँव में स्थित बिजली महादेव के भंडार में माश चढ़ाकर जब अपने घर पहुँचा तो उसके झोले से एक प्रतिमा निकली। उसने प्रतिमा अनाज भी कोठरी में नीचे दबा दी। प्रातः उठ कर देखा तो प्रतिमा अनाज के ऊपर आ चुकी थी। तब परिवारवालों ने उसे पूजना आरम्भ किया। कुछ समय बाद किसी व्यक्ति को खेल आई और कहा कि वह महादेव है और गाँव में बसना चाहता है। उस समय चौकी गाँव में भोट-भोटणी का शासन था। उन्होंने इसे मानने से इनकार किया। तब महादेव ने इनका संहार किया और स्वयं लोगों द्वारा पूजा जाने लगा।

महामाई

गाँव : मथाण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : मनाली तहसील का शूरू-प्रीणी गाँव।

मंदिर एवं भंडार : नहीं है। किसी समय मथाण के शलाधरा नामक स्थान पर देवी का मंदिर हुआ करता था, परन्तु प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट होने के बाद मंदिर नहीं बनाया गया।

स्थापत्य : बिजली महादेव के मंदिर से आधा किलोमीटर



की दूरी पर दो विशाल शिलाओं के मध्य देवी का स्थान है, परन्तु शेर, चीते, भालू आदि वन्य प्राणियों के निवास के कारण इस स्थान तक जाना अत्यंत कठिन है।

शाखा मंदिर : राहतौर।

अधिकार क्षेत्र : मथाण, तलोगी, राहतौर गाँव।

प्रबंध : बिजली महादेव की प्रबंध समिति द्वारा।

न्याय प्रणाली : बिजली महादेव के गूर द्वारा।

पूजा : सामान्य जनों द्वारा मथाण जाने वाले मार्ग के एक ओर स्थापित पत्थर विशेष पर ही दूर्वा, धूप तथा भोग अर्पित कर देवी की पूजा की जाती है। इस पत्थर को महामाई के चरण माना जाता है। इसके दूसरी तरफ एक शिला औंधी पड़ी हुई है, जिस पर देवी की छोटी-सी मूर्ति उत्कीर्ण हुई दिखाई देती है। यहाँ पर भी लोग धूप-बत्ती करके भोग लगाते हैं।

रथ व मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : महामाई के स्थान से ऊपरी भाग में तीन सौ मीटर के खुले क्षेत्र शलाधरा में आषाढ़ संक्रांति से सात दिवसीय *शाह्नू मेला* लगता है, जिसमें देवी के साथ बिजली महादेव, जोगणी माता तथा अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। महादेव यहाँ ढाई फेरे नाटी करते हैं। 'देऊखेल' व 'देऊली' होती है। तत्पश्चात् मेला लगता है। भोग बनाकर सभी देवी-देवताओं को चढ़ाया जाता है।

जनश्रुति : महामाई जगदम्बा को बिजली महादेव जलंधरासुर के वध के लिए मथाण लाए थे, जहाँ देवी ने अपने गुर्ज के प्रहार से उस राक्षस का वध किया था। मथाण के राणे देवी-देवताओं को नहीं मानते थे। एक बार जब बिजली महादेव शलाधरा मेले के लिए गनाखला गाँव से रथ पर मथाण आ रहे थे तो वहाँ के राणे ने उनके रथ पर तीर चला दिया। उस समय महादेव और उनके देऊलू विश्राम कर रहे थे। तीर सीधा महादेव के रथ पर लगे एक मोहरे से टकरा कर पास पड़ी शिला में जा लगा, जिससे उसके दो टुकड़े हो गए। यह देखकर भयभीत देऊलुओं ने रथ को शीघ्रता से मथाण पहुँचाया और इस सम्बंध में महादेव से पूछा तो उन्होंने देऊलुओं को मेला शांतिपूर्वक मनाने के लिए कहा। मेला समाप्त होते ही ऐसी मूसलाधार वर्षा हुई कि सारी शलाधरा धार बहकर व्यास नदी के तट पर तलोगी नामक स्थान में जा अटकी। राणे उसके नीचे दबकर मर गए और महामाई मथाण से तलोगी गाँव में पहुँच गई। गाँववालों ने देवी की पूजा के लिए तरांबली गाँव के एक ब्राह्मण को नियुक्त कर दिया। एक दिन उसकी बहू अपने इकलौते बेटे को देवी के मंदिर में सुलाकर स्वयं खेत में काम करने के लिए चली गई। कार्य समाप्त करके जब वह बच्चे को दूध पिलाने के लिए लौटी तो उसने मंदिर से एक साँप को निकलते देखा। वह तत्काल बालक के पास पहुँची, जिसके मुँह से झाग निकल रही थी और शरीर नीला पड़ गया था। ब्राह्मणी रोते-रोते महामाई को कोसने लगी कि उसने बालक की रक्षा नहीं की। हाथ में ली दराँती से उसने अपना स्तन काटकर देवी के सामने रख दिया और मृत बच्चे को उठाकर व्यास नदी के तट पर पहुँची। बच्चे को नदी में फेंक कर स्वयं भी छलाँग लगाने लगी तो पीछे से उसे झाँझर की आवाज़ सुनाई दी। उसने देवी को अपने पीछे आते देखा, जो कह रही थी कि जहाँ तू जाएगी, मैं भी वहीं जाऊँगी। मेरे कारण तुझे यह दुःख उठाना पड़ा, अतः मेरी पूजा के साथ-साथ तुम्हारी पूजा भी की जाएगी।

ऐसा कहकर ब्राह्मणी के पीछे-पीछे देवी भी व्यास नदी में कूद पड़ी और दोनों राहतौर नामक स्थान पर रुकीं। आज वहाँ महामाई की पूजा योगिनी के नाम से होती है। सन् 2002 में वहीं सड़क के किनारे देवी के निमित्त एक छोटा-सा मंदिर बनाया गया है।

रणपाल

गाँव : मौहल, **तहसील** : कुल्लू।
मूल स्थान : मुझग धार।
मंदिर एवं भंडार : मौहल।
स्थापत्य : सीमेंट और लकड़ी से बना देशज शैली का एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। शिखर पर लगे 'बदोर' पर लकड़ी के तीन कलश स्थापित हैं। छत के चारों ओर लकड़ी की सुंदर झालरें सुशोभित हैं।
अधिकार क्षेत्र : मौहल।
प्रबंध : कारदार द्वारा।
न्याय प्रणाली : देवता व कारकुनों द्वारा।
पूजा : देवता की पूजा प्रति संक्रांति को धूप-दीप से होती है, जब वह मंदिर से बाहर प्रांगण में अपनी प्रजा को दर्शन देने के लिए निकलता है।
रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा।
मोहरे : चौदह, जिनमें से ग्यारह बड़े हैं, शेष तीन छोटे।
मेले-त्योहार : 23-24 वैशाख को *मौहल जाच*, आषाढ़ मास में *शान्हू जाच* तथा मार्गशीर्ष में *पुन्नू* का आयोजन।
जनश्रुति : किसी समय सात पाल भाई मुझग धार में रहते थे। एक बार भारी वर्षा से आई बाढ़ में ये सभी देवता बह गए। इनमें से रणपाल बहते-बहते मौहल गाँव में आकर रुक गया। यहाँ अनेक चमत्कार दिखाकर इसने अपने को प्रकट किया और लोगों का आराध्य देवता बना। मान्यता है कि यह रणक्षेत्र में दुष्टों का नाश कर लोगों की रक्षा करता है।

रावल : याज्ञवल्क्य

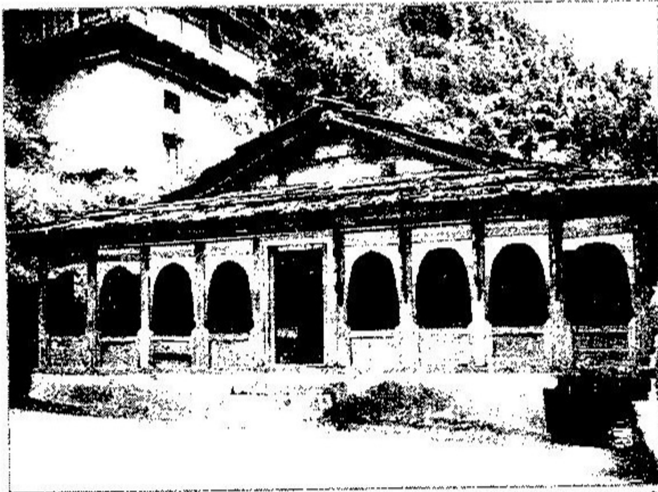
गाँव : ऊच, **तहसील** : कुल्लू।
मूल स्थान : शियाह।
मंदिर एवं भंडार : ऊच।



स्थापत्य : काठकुणी शैली का प्राचीन मंदिर मेहराबदार बरामदे से युक्त है, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है।
अधिकार क्षेत्र : ऊच व राशकड़ गाँव।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, छटाली की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, पुजारी व रथ के माध्यम से।
पूजा : नित्य प्रति दोनों समय पंचोपचार विधि से।
रथ : फेटा। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है।
मोहरे : बारह।
मेले-त्योहार : बैसाख व भादों मास की संक्रांति को देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है तथा लोगों की समस्याओं का निवारण करता है।
जनश्रुति : दे.-रावल : याज्ञवल्क्य, ग्राहण की जनश्रुति। उक्त जनश्रुति के अनुसार यह देवता ग्राहणवासियों का इष्ट बना। एक बार इस गाँव की एक लड़की ऊच गाँव में ब्याही गई और यह देवता उसके साथ ऊच चला गया और गाँववासियों द्वारा वहाँ पूजा जाने लगा।

रावल : याज्ञवल्क्य

गाँव : ग्राहण, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : शियाह।
मंदिर एवं भंडार : ग्राहण।



स्थापत्य : 45x45 फुट का पैगोड़ा शैली का चार छतों वाला मंदिर है। इसके निर्माण में लकड़ी, पत्थर और गारे का प्रयोग हुआ है और छत स्लेटों से ढकी है।
शाखा मंदिर : गाँव ऊच और फनेऊर।
अधिकार क्षेत्र : गाँव ग्राहण, शिल्हा, ऊच, कसोल एवं शाट।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी तथा भंडारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।
पूजा : मेले-त्योहारों आदि अवसरों पर रथ निकलने से लेकर रथ भंडारने (भंडार में रखना) तक दोनों समय पूजा होती है। इसके अतिरिक्त हर संक्रांति तथा विशेष दिनों में पूजा होती है। प्रतिदिन पूजा नहीं होती।
रथ : दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाने वाला खड़ा रथ।
मोहरे : आठ।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास की संक्रांति को प्रमुख त्योहार होता है। इस दिन देवता का गूर भारथा सुनाता है। बैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू* तथा भादों मास की संक्रांति को *भादों मेला* लगता है। मार्गशीर्ष में *मौक्षर धूप* का आयोजन होता है। इस दिन देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है। देवता के आदेशानुसार सौ या एक सौ बीस वर्ष बाद *काहिका* का आयोजन होता है। सन् 2000 में 120 वर्ष बाद काहिका मनाया गया।
जनश्रुति : किसी समय शियाह गाँव में एक साधु आया। उसने कई वर्षों तक वहाँ तपस्या की। एक दिन वह अंतर्धान हो गया। कालांतर में उस स्थान पर दड़कौणी खानदान की एक महिला को खेत में निराई करते हुए मोहरा मिला और उस स्थान पर जलधारा भी प्रस्फुटित हुई। तब उस खानदान के लोगों ने वहाँ देवता की कुटिया बनाकर उसे पूजना शुरू किया। कालांतर में उसी खानदान की एक कन्या की शादी ग्राहण गाँव में हुई और देवता भी उसके साथ ग्राहण चला गया जिसे उसने अपने ससुराल में पूजना आरंभ किया। बाद में उसकी शक्ति से प्रभावित होकर गाँववालों ने देवता का रथ व मंदिर बनाया।

रुपण पाल

गाँव : पाहनाला, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : पाहनाला के पीछे दाड़ू सौह।
मंदिर : पाहनाला।
भंडार : किसी हारियान के घर में।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना एक मंज़िल का मंदिर, जिसकी चारों ओर को ढलानदार छत पर स्लेट आच्छादित हैं। शिखर पर बदोर लगा है।
अधिकार क्षेत्र : पाहनाला के लगभग चालीस-पचास घर।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से; रथ, पोगले, लाड़ू और मलोही डालकर।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। वर्ष की प्रति संक्रांति और उसके बाद प्रथम आने वाला वीरवार या रविवार को देवता की पूजा की जाती है। मेले-त्योहारों में जब रथ निकलता है तो प्रातः-सायं उसकी पूजा होती है।

रथ : सन् 1982 में गुंबदाकार छत्र युक्त खड़े रथ का निर्माण किया गया।
मोहरे : कुल नौ। एक अष्टधातु का व अन्य पीतल के।
मेले-त्योहार : 3 माघ को देव-पर्व, चैत्र संक्रांति को *बिरशू*, 7 आषाढ़ से 15 आषाढ़ तक देवता अपनी हार की यात्रा पर जाता है और लौटने पर *षाढ़ी* मेला लगता है।
जनश्रुति : किसी समय पाहनाला से ऊपर के सौरी और कस्तारा गाँवों में दो ठाकुर रहते थे। अपनी समृद्धि के लिए उन दोनों में प्रतिस्पर्धा रहती थी। सौरी को ठाकुर सप्तर्षि देवता को मानता था। एक बार इनके क्रूर स्वभाव के कारण वहाँ की सोलह सुरगणियाँ इन ठाकुरों से रुष्ट हो गईं और उनके कुपित होने से भयंकर बाढ़ आई, जिसमें ठाकुरों का तो नाश हो गया, परन्तु सप्तर्षि देवता बाढ़ में बह कर अलग-अलग स्थानों पर प्रकट हुए। उनमें से रूपणपाल पाहनाला में पिंडी रूप में किसी व्यक्ति को मिला जिसने गाँव में आकर अन्य लोगों के साथ मिलकर देवता की स्थापना की। देवता अपने चमत्कारों से लोगों को प्रभावित कर उनका पूज्य बना।

रूपासन

गाँव : धारला, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : धारला।
भंडार : शराणी बेहड़ में कोठी है।
स्थापत्य : 38x38 फुट आकार का पहाड़ी शैली में बना यह मंदिर दो छतोंवाला है। दोनों छतें स्लेटों से ढकी हैं और ऊपर की छत के शीर्ष पर बदोर लगा है।
शाखा मंदिर : गाँव टारवाई में 27x27 फुट का और धारगण धार में 40x50 फुट का, पहाड़ी शैली में बने दो छत वाले मंदिर हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव धारला, हुरन, शराणी बेहड़, टील, टारवाई, शांगचण।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला, पालसर, जठाली की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से।
रथ : फेटा। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग होता है।
मोहरे : बारह।
मेले-त्योहार : चैत्रमास की संक्रांति को *जेठा बिरशू* तथा बैसाख मास की संक्रांति से देवी का त्रिदिवसीय *जन्मोत्सव* मनाया जाता है। इसमें देवी घर-घर जाकर धूप ग्रहण करती है। चार प्रविष्टे को यह कशाधा की निहाणी सौह में जौड़ा नारायण के उत्सव में भाग लेती है। भाद्रपद मास में *जन्माष्टमी* का त्योहार धूम-धाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर भंडारे का आयोजन होता है।
जनश्रुति : एक बार मतेउड़ा गाँव का बालड़ा (किलटे बनाने वाला) नगाल (बाँस प्रजाति का पौधा) लाने के लिए मद्रोणा के जंगल में गया। वह अपने साथ दोपहर के भोजन के लिए सत्तू लाया हुआ था। अतः वह सत्तू मिलाने के लिए समतल पत्थर ढूँढने लगा। ऐसा पत्थर मिलने पर जब उसने उसे उखाड़ा तो उसके नीचे उसी तरह के सात पत्थर निकले, जिनके नीचे एक प्रस्तर पिंडी दबी थी। उसने सोचा यदि यह देवता है तो इसे हल्का होना चाहिए। जब उसने पिंडी उठाई तो वह बिल्कुल हल्की थी। वह उसे किलटे में डालकर गाँव की ओर चल पड़ा। धारला में पहुँच कर उसने आराम किया। आराम करने के बाद जब वह चलने के लिए तैयार हुआ तो किलटा भारी हो गया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि वह रूपासन देवी है और यहाँ रहना चाहती है। तब वहाँ मंदिर का निर्माण करके देवी को पूजा जाने लगा।

रोमणू नाग

गाँव : राऊगी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : राऊगी।
स्थापत्य : पुरातन मंदिर को उखाड़ कर उसके स्थान पर वर्ष 2011 में काष्ठ-प्रस्तर से तीन मंज़िल का मंदिर

बनाया गया है, जिस पर सुन्दर नक्काशी हुई है। मंदिर के चारों ओर बरामदा है। ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं।

शाखा मंदिर : राऊगी।

अधिकार क्षेत्र : गाँव राऊगी, रोमणी, बुनुई सेर।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ समिति।

न्याय प्रणाली : गुले, पोगले तथा पूछ डाल कर।

पूजा : दैनिक पूजा की प्रथा नहीं है, केवल प्रत्येक संक्रांति के दिन वाद्य बजाते हुए बेठर धूप से पूजा की जाती है।

रथ : देवदार की लकड़ी से बना खड़ा रथ, जिसके शीर्ष पर कलगी लगती है।

मोहरे : मोहरों के विषय में सूचना देने से देवता नाराज़ होता है। अतः इसे गुप्त रखा जाता है। अनुमानतः ये 20-21 हो सकते हैं, जिनमें से कुछ को विशेष अवसरों पर रथ में सजे हुए देखा जा सकता है।

मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को *बिरशू*, श्रावण में *शाऊणी जाच*, भादों बीस को *देऊली*, आश्विन संक्रांति को *शौईरी मेला* तथा मार्गशीर्ष में *दियाली* का आयोजन। इसके अतिरिक्त देवता के आदेश पर *कुश्टी* (छोटा) *काहिका* का आयोजन होता है। कभी-कभी देवता तीर्थयात्रा पर हलाण गाँव जाता है। दशमी बारदा-काईस तथा पीणी की भागासिद्ध के काहिका की रस्म भी रोमणू नाग द्वारा निभाई जाती है, क्योंकि इस मौके पर देवियाँ मंदिर से बाहर नहीं निकलतीं।

जनश्रुति : वासुकि नाग और सौर गाँव की एक कन्या से उत्पन्न अठारह नागों में से एक नाग सर्वप्रथम सौर गाँव के साथ वाले स्थान रोमणी में बसा, जिस कारण वह रोमणू नाग कहलाया। कुछ काल वहाँ रहने के पश्चात् वह राऊगी गाँव पहुँचा। पहले तो वहाँ के लोगों ने उसे मान्यता न दी परन्तु जब वह अपनी शक्ति से लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा तो लोगों ने उसे पूजना आरम्भ किया और बाद में मंदिर और रथ का निर्माण किया।

लोहड़ी अच्छरी

गाँव : जिंदी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : सुती तलाई नामक स्थान, जहाँ पहुँचने के लिए जिन्दी गाँव से लगभग ढाई घंटे का पैदल रास्ता तय करना पड़ता है।

मंदिर : रेकनधार पर एक लघु मंदिर, जिसमें पिंडी स्थापित है तथा जिन्दी में।

भंडार : जिंदी।

स्थापत्य : सीमेंट और लकड़ी से बना चार मंज़िल का मंदिर लगभग 20 फुट लम्बा, 15 फुट चौड़ा और 37 फुट ऊँचा है। इसकी ढलवाँ छत में लकड़ी की शहतीरों पर स्लेटें बिछी हैं। छत के चारों ओर लकड़ी की झालरें लगी हैं। मंदिर का द्वार पूर्वाभिमुख है। सामनेवाली दीवार पर शेराँवाली माता का चित्र अंकित है। अग्रभाग में संगमरमर



रेकनधार स्थित लघु मंदिर

का आँगन है, जिसमें शेर की प्रतिमा स्थापित है। आँगन के बाहर लोहे का एक बड़ा गेट है। मंदिर के पश्चिम की ओर एक पाकशाला है, जिसमें उत्सवों के दौरान भोजन तैयार किया जाता है। मंदिर की ऊपरी मंज़िलों को भंडार के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। इसी में देवी का रथ, मोहरे, आभूषण तथा वाद्ययंत्र रखे जाते हैं।

अधिकार क्षेत्र : केवल जिन्दी गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : रथ के माध्यम से, गूर द्वारा तथा 'मलोही' विधि से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से। उत्सवों व त्योहारों के अवसर पर विशेष पूजा की जाती है। उस समय पुजारी प्रातः स्नानादि के उपरांत माता के रथ को स्नान कराकर उस पर कुंकुम का टीका लगाकर पुष्प चढ़ाता है। फिर कारकुन रथ का शृंगार करते हैं। रथ में मोहरों को सजाया जाता है। द्वार से बाहर निकलने से पहले रथ की एक बार फिर पूजा की जाती है।

रथ : फेटा, जिस पर दोनों ओर रजत निर्मित दो-दो छत्र और मध्य में रजत-पताका लगी होती है।

मोहरे : नौ। इनमें मुख्य मोहरा अष्ट-धातु का है।

मेले-त्योहार : देवी का रथ बाहर निकलने से पंद्रह दिन पूर्व कारदार व कारकुनों की सभा होती है, जिसे *पंद्रार* कहते हैं। इसमें वर्ष-भर के मेले-त्योहारों के प्रबंध के विषय में चर्चा होती है। आठ दिन पूर्व माता की 'भारथा' सुनाई जाती है और त्योहारों की सूचना प्रजा को दी जाती है। वैशाख मास में रबी की फसल कटने से पूर्व *सलाहरा* मेला लगता है। इससे पहले गाँव का कोई भी व्यक्ति फसल नहीं काट सकता। मेले का आरम्भ होने से पूर्व समस्त गाँववासी अपने खेतों में प्रातः ही भोग बनाते हैं। उसके बाद जौ की कुछ बालियाँ घर लाकर गोबर के साथ दीवार पर लगाते हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से आगामी फसल भी भरपूर होती है।

कुछ लोग इस दिन जौ, खेत में बनाया गया भोग और जलते हुए उपले को लेकर मंदिर जाते हैं। माता की पूजा करने के उपरान्त भोग बच्चों में बाँट दिया जाता है। कुछ समय बाद वाद्ययंत्रों की ध्वनि के साथ देवी का रथ मंदिर-प्रांगण में निकलता है। 'देऊखेल' होती है और गूर उपस्थित लोगों के प्रश्नों के उत्तर देने के साथ-साथ उनकी समस्याओं का समाधान भी करता है। तत्पश्चात् लोग वहाँ आए अतिथियों को अपने घर ले जाकर उन्हें भोजन कराते हैं। रात्रि को पुनः देऊखेल होती है और माँ अपने मंदिर में चली जाती है। श्रावण में *शाउणी जाच,* मार्गशीर्ष में *मंगर पुन्नू* और फाल्गुन में *फागली* मनाई जाती है।

जनश्रुति : माता लोहड़ी-अच्छरी दिल्ली के दरबार से कालाकुंड, रिवालसर, मण्डी, घोघड़धार, कंडी रे गौऊए, तिऊन, धर्मसौह शालंग से होती हुई जिन्दी गाँव के पर्वत-शिखर पर पहुँची और वहाँ से रेकनधार आकर वहीं स्थापित हो गई। उस समय वहाँ दलेड़ वंश के पति-पत्नी रहते थे। कालांतर में उनके वंश में किसी स्त्री को देऊखेल आने लगी। एक दिन खेल आने पर उसने कहा कि वह देवी लोहड़ी-अच्छरी है और उनके साथ रहना चाहती है। यह सुनकर दलेड़ परिवार ने देवी को इष्ट के रूप में पूजना आरम्भ किया। कुछ काल बाद उनमें से ही तुलेराम दलेड़ को देवी ने अपना गूर बनाया। क्योंकि देवी की स्थापना उन्हीं के घर में थी, अतः लोग पूछ डालने वहीं आया करते थे। जब उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगीं तो देवी की कृपा जानकर गाँववालों की भी उसमें आस्था बढ़ी और उन्होंने मिलकर देवी के लिए गाँव में मंदिर एवं भंडार का निर्माण किया।

वास्तुदेव

गाँव : मड़ोली, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : मड़ोली।

स्थापत्य : कोट शैली में निर्मित किले के भीतर देवता की स्थापना है, जो पहले पाँच मंज़िल का था, परन्तु ऊपर की दो मंज़िलें टूट जाने के कारण अब यह तिमंज़िल का ही रह गया है।

अधिकार क्षेत्र : मड़ोली गाँव, जो पहले टिपरी के नाम से जाना जाता था।

न्याय प्रणाली : 'पोगले' डाल कर।

पूजा : प्रत्येक संक्रांति व विशेष पर्वों पर पुजारी द्वारा धूप-दीप से।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं।

मेले-त्योहार : कोई नहीं।

जनश्रुति : किसी समय टिपरी मड़ोली गाँव के पाँच मंज़िला किले में दुर्गादत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था,

जहाँ उसने अपने कुलदेवता वास्तुदेव की स्थापना की थी। उसका नाम वहाँ के धनाढ्य लोगों में गिना जाता था। परन्तु वास्तविकता इससे विपरीत थी। एक बार रूपी का राजा जगत सिंह जब मणिकर्ण की यात्रा पर निकला तो उसके वज़ीर, जिसकी दुर्गादत्त से बिल्कुल नहीं बनती थी, उसने राजा के कान भरे कि टिपरी में रहनेवाले एक ब्राह्मण के पास एक 'पत्था' मोती हैं। यह सुन कर राजा चकित रह गया और उसने आदेश दिए कि उस व्यक्ति द्वारा मोती राजकोष में जमा करा दिए जाएँ। दुर्गादत्त के पास मोती तो थे नहीं, अतः उसने राजदंड के भय से किले के हवन कुंड में अग्नि प्रज्वलित की और उसमें अपना एक-एक अंग काट कर डालते हुए वह कहता गया कि 'यह ले राजा मोती, यह ले राजा मोती'। इस प्रकार ब्राह्मण की मृत्यु हो जाने के बाद वास्तुदेव की पूजा का कार्य उसके वंशजों ने सम्भाला। आज दुर्गादत्त की चौदहवीं पीढ़ी के पंडित अमर चंद यहाँ पूजा करते हैं।

विष्णु भगवान

गाँव : दुआड़ा, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दुआड़ा।

स्थापत्य : लोकधारणा के अनुसार यह पाण्डवकालीन मंदिर है। इसके मूल स्वरूप को 1905 के भूकम्प में भारी क्षति पहुँची थी। वर्ष 1984 में मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया गया। शिखर शैली में बना लगभग 25 फुट ऊँचा वर्तमान मंदिर प्रस्तर एवं काष्ठकला के सुन्दर स्थापत्य का उदाहरण है। देखने पर यह मंदिर चारों ओर से एक समान प्रतीत होता है, अंतर केवल चारों दिशाओं में लिखे गए अलग-अलग श्लोकों और चित्रित अस्त्र-शस्त्रों से किया जा सकता है। मंदिर की भीतरी दीवारें बिल्कुल सपाट हैं, परन्तु भगवान् विष्णु की प्रतिमा सजीव प्रतीत होती है। मंदिर के मुख्य द्वार के आगे देवदार की लकड़ी से बना मंदिर का अग्र खंड है जो वास्तव में मुख्य मंदिर में प्रवेश हेतु गैलरी मात्र है। इसमें चारों ओर लकड़ी पर देवी-देवताओं के चित्र उकेरे गए हैं।



शाखा मंदिर : गाँव सजला, पतली कूहल।

अधिकार क्षेत्र : गाँव मझला दुआड़ा, निचला दुआड़ा, कटराईं, जोंगा, बशकौल, कुम्मण, पतली कूहल, जटेहड़ तथा जैंडी।

प्रबंध : महासचिव की अध्यक्षता में केंद्रीय आयोजन समिति। इसके अधीन दो मुख्य समितियों का गठन किया गया है, जिनके नाम क्रमशः देऊली समिति तथा हार शृंगार प्रबंधन समिति हैं। कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए इन दो समितियों के अधीन बारह उपसमितियाँ बनाई गई हैं।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं विधिवत् पूजा होती है। कुछ वर्ष पूर्व तक देवपूजा देसी सामग्री जैसे बेठर, निहाड़ी, लोसर आदि वन्य पौधों से तैयार मिश्रण से की जाती थी। परन्तु अब धूप और अगरबत्तियों से ही पूजा होती है।

रथ : पालकीनुमा त्रिभुजाकार रथ अंगू वृक्ष की लकड़ी से बना है, जिसकी लम्बाई 8 फुट, चौड़ाई 2 फुट तथा ऊँचाई 5) फुट है। इसे केसरिया, गुलाबी, लाल, पीले रंग के बहुमूल्य वस्त्रों से सजाया जाता है।

मोहरे : पंद्रह। सामान्यतः रथ पर आठ मोहरे ही लगते हैं परन्तु तीर्थ यात्रा के समय इसे 15 मोहरों से सजाया जाता है। इनके अतिरिक्त लक्ष्मी और ज्वाला का भी एक-एक मोहरा लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : *वैशाखी* तथा *जन्माष्टमी* के दिन मंदिर में विशेष आयोजन होता है। इन दिनों विष्णु की प्रतिमा का पूर्ण श्रृंगार किया जाता है। इन उत्सवों के अतिरिक्त वर्ष में आठ अन्य उत्सव भी मनाए जाते हैं, जिनमें चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, भाद्रपद की *संक्रांतियाँ* व *नवसंवत्* प्रमुख हैं। नवसंवत् के अवसर पर देवी भगवती का रथ भी निकलता है। इन उत्सवों में देवी-देवताओं के प्रतिनिधि बनकर स्थानीय देऊलू तीरंदाज़ी में भाग लेते हैं और जंगल से लाए गए बुरांस के फूलों पर निशाना साधते हैं। सही निशाना लगने को मनोकामना का पूर्ण होना माना जाता है। 20 से 25 वर्षों के अंतराल में 'काहिका' का भी आयोजन होता है।

जनश्रुति : अज्ञातवास के समय पांडव कुछ काल दुआड़ा में रहे। यहाँ उन्होंने पूजा-अर्चना के लिए भगवान् विष्णु की प्रतिमा अपने हाथों से बनाई थी, लेकिन सन् 1905 के विनाशकारी भूकम्प में क्षतिग्रस्त होने के कारण प्रतिमा का सिर धड़ से अलग हो गया। तब विशेषज्ञ शिल्पियों ने अथक प्रयास कर उस खंडित शैल प्रतिमा की लगभग 7 फुट ऊँची प्रतिमूर्ति तैयार की और वैदिक विधि से प्राण-प्रतिष्ठा करवा कर उसकी पुनः स्थापना की गई। सुरक्षा की दृष्टि से नवीन मूर्ति को आधार के बाद भूमि में साढ़े तीन फुट की गहराई में स्थापित किया गया है। मूर्ति के शीर्ष पर मुकुट, कानों में कुंडल, कंठ में माला, बायें हाथ में शंख तथा दायें में अस्त्र और दो हाथ नीचे की ओर खुले हैं, जो दोनों ओर खड़े वीरों जय-विजय तक जाते हैं।

वीर

गाँव : माछंग, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : माछंग।

स्थापत्य : काष्ठ प्रस्तर से देशज शैली में बना एक मंज़िल का मंदिर जिसका प्रवेशद्वार पूर्व की ओर है। छत पर पत्थर के स्लेट डाले गए हैं।

अधिकार क्षेत्र : माछंग।

प्रबंध : कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : देव-रथ द्वारा, गूर व कारदार के माध्यम से, 'मलोही' डालकर।

पूजा : केवल भादों में पूरे मास धूप-दीप जलाया जाता है, इसके अतिरिक्त किसी मेले-उत्सव पर ही देवता की पूजा की जाती है।

रथ : सिर पर उठाया जानेवाला।

मोहरे : तीन।

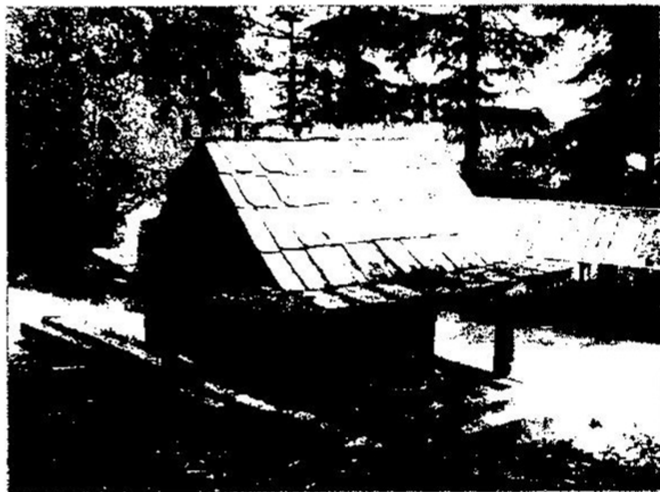
मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष मास में *मुंघर पुन्नू*। इस दिन प्रातः देवता के रथ को सजाकर मंदिर में रखा जाता है और चरु के रूप में शहद, घी और रोट का भोग लगाया जाता है। इसी दिन गाँववाले नया अन्न देवता को भेंट करते हैं।

माघ मास में *माघा साजा*। इस दिन देवता के निमित्त मंदिर में बलियाँ दी जाती हैं। इस गाँव की जिन लड़कियों की शादी दूर हुई हो, उन्हें इस दिन विशेष रूप से आमंत्रित किया जाता है और वे भी देवता के प्रति पूरी निष्ठा का निर्वाह करते हुए भेंट चढ़ाती हैं। सामूहिक रूप में सुरापान का भी प्रचलन है।

जनश्रुति : भारथा के अनुसार यह देवता स्वर्ग से उतर कर धरती पर अवतरित हुआ। यह ब्राह्मणी का पुत्र, बारह वर्ष तक लुप्त रहने के बाद प्रकट हुआ तथा जनकल्याण हेतु माछंग गाँव आया। यहाँ के लोगों ने उसके चमत्कारों से प्रभावित होकर उसे देवता माना।

वीरनाथ

गाँव : गदेढ़, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : कशमटी।
भंडार : गदेढ़।



स्थापत्य : कुल्लू से करीब 15 कि.मी. की दूरी पर सड़क के साथ लगते देवदार के घने जंगल के बीच बना काठकुणी शैली का एक मंज़िल का मंदिर जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। परिसर में संगमरमर बिछा है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव पूल, कशमटी, गदेढ़, कशेढ़, शौरन, बबेली, कठियाई बेढ़।

प्रबंध : कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदार द्वारा, देव-रथ से, 'मलोही' डालकर।

पूजा : केवल उत्सवों के अवसर पर, उस समय पुजारी 'धुपयारे' में बेठर जलाकर घंटा व शंख ध्वनि के साथ पूजा करता है।

रथ : फेटा।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : चैत्र संक्रांति को *कोन्हा बिरशू,* वैशाख मास की संक्रांति को देवी हिडिम्बा के साथ सामूहिक रूप से *बड़ा बिरशू,* भादों मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम, तृतीय या पंचमी तिथि के किसी एक दिन *फुंगणी मेला,* आश्विन मास के दो प्रविष्टे को *शौईरी मेला,* श्रावण मास के एक, तीन या पाँच प्रविष्टे को *शाउणी जौग,* पंद्रह फाल्गुन को *फागली*।

बिरशू मेला माता हिडिम्बा के साथ सामूहिक रूप से उस मंदिर में मनाया जाता है जो जिंदौड़ और गदेढ़ गाँवों के मध्य बाइरीधार नामक स्थान पर बनाया गया है। वहाँ हिडिम्बा और वीरनाथ का मिलन होने के बाद गूर द्वारा 'देऊखेल' और 'हुलकी' नृत्य किया जाता है। तत्पश्चात् भेड़-बकरियों की बलियाँ दी जाती हैं और उन बलि-पशुओं का चरु बनाकर सभी उपस्थित लोगों में बाँटा जाता है। संध्याकाल में पुनः देऊखेल होने के पश्चात् त्योहार की समाप्ति होती है। *फुंगणी मेला* देवता के भंडार के साथवाले खलियान में लगता है। प्रातः रथ को सजाने के बाद सभी वाद्ययंत्रों सहित उसे खलियान में रखा जाता है। गूरों को सभी स्त्री-पुरुष अपने मध्य बिठाकर उनके चारों ओर गोल दायरे में जोगणियों की भारथा गाते हैं। तत्पश्चात् गूर भी शस्त्र व 'धौड़छ' हाथ में लेकर गोल दायरे में घूमते हुए भारथा सुनाते हैं।

जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

वीरनाथ

गाँव : टाहुक, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : गाँव थाच माशण।
मंदिर एवं भंडार : टाहुक।

स्थापत्य : कोट शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर लगभग 300 वर्ष पुराना है।

अधिकार क्षेत्र : केवल टाहुक गाँव।

प्रबंध : कारदार अधीनस्थ पारम्परिक देव-समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, रथ से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक।

रथ : दो अर्गलाओं वाला फेटा रथ।

मोहरे : बारह, जो रथ के अग्रभाग में सजाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : मार्गशीर्ष की संक्रांति को *मगशर धूप* का

9



10

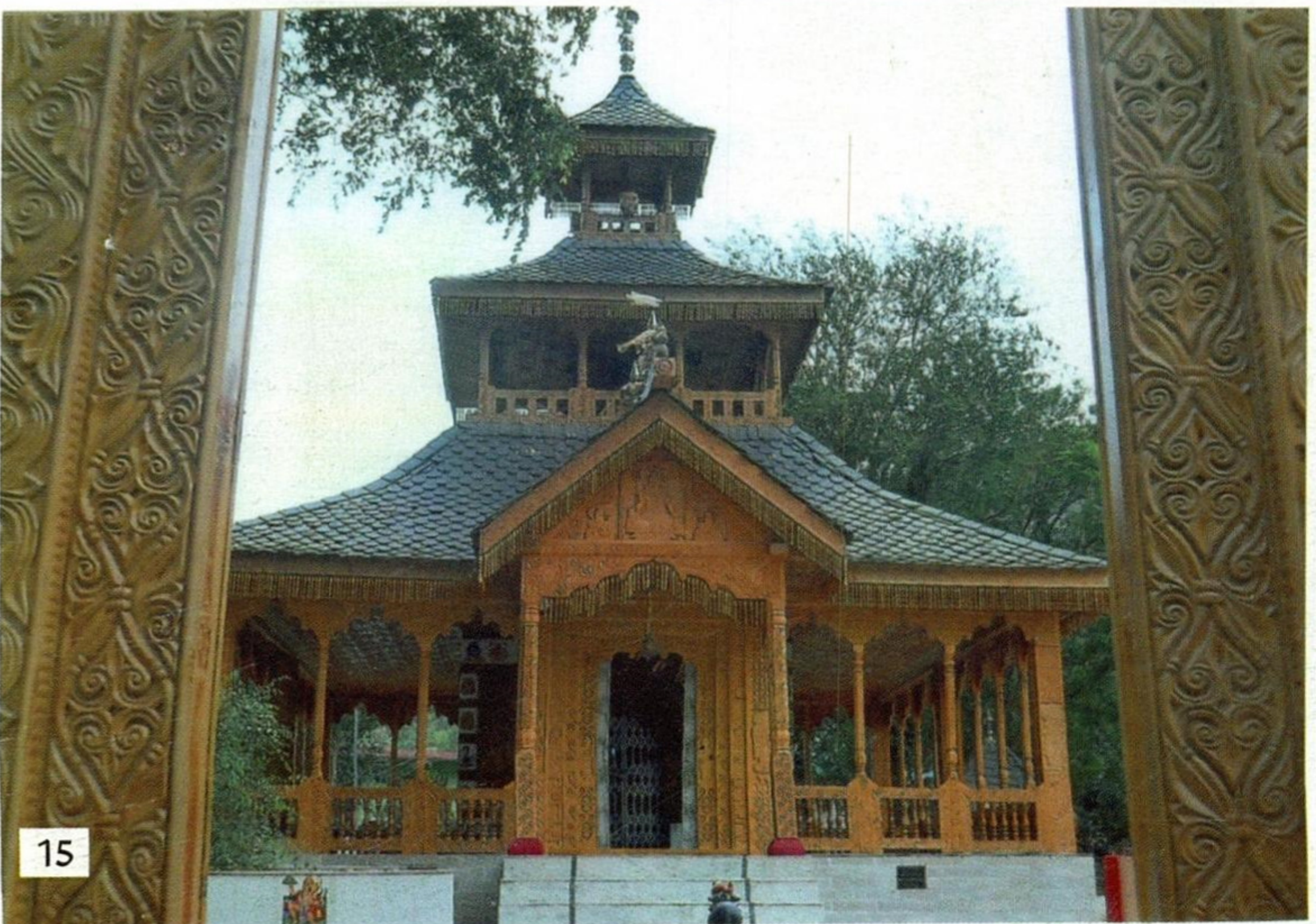
11



12


13

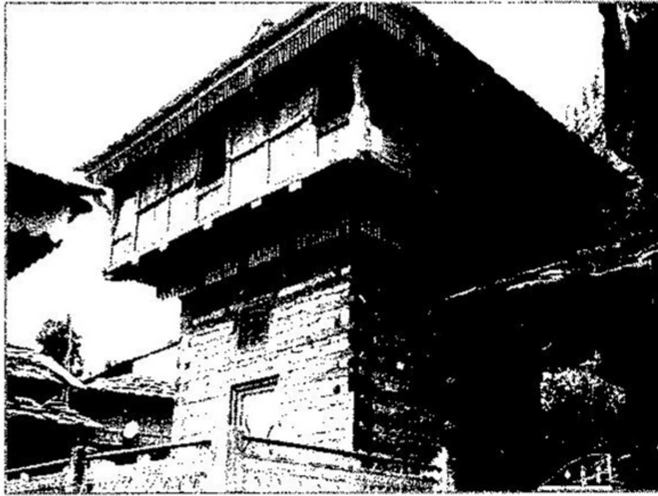

14


15



फोटो फीचर : 2

9. मनु मंदिर पुरानी मनाली 10. फलाणी नारायण का भंडार 11. जोगिनी शिरढ़ का मंदिर जहाँ काहिका के दौरान कालिया नाग शिरढ़ का देवरथ रखा जाता है 12. गौहरी देऊ का उत्पत्ति स्थल थाच 13. आदि ब्रह्मा खोखण 14. गौरी शंकर जगतसुख मंदिर की बाहरी दीवार पर उत्कीर्णित ब्रह्मा जी 15. बालक महेश्वर मंदिर बजौरा 16. गौरी शंकर मंदिर दशाल (संरक्षित धरोहर)



आयोजन जिसमें देवता घर-घर जाकर धूप ग्रहण करता है।

जनश्रुति : वीरनाथ एक शिकारी था। एक बार जब वह शिकार के लिए जंगल गया हुआ था तो वहाँ राक्षसों ने उसे पकड़कर ढाँक से नीचे फेंक दिया। ढाँक से गिरने के कारण उसके हाथ-पैर टूट गए जिससे वह चलने-फिरने में असमर्थ हो गया। उसके पास एक कुत्ता था जिसने सात दिन तक उस ढाँक में उसकी रक्षा की। आठवें दिन वह कुत्ता वीरनाथ की बहन तिल्लो लोटणी को अपने साथ उस स्थान पर लाया। जब वीरनाथ ठीक हो गया तो वह तिल्लो, कुत्ते और लग घाटी के एक व्यक्ति के साथ जंगल के रास्ते छमाहण गाँव पहुँचा। वहाँ से वे सब मणिकर्ण और फिर टाहुक गाँव आए। वह स्थान उन्हें अच्छा लगा और वहीं पर रहने की इच्छा से वीरनाथ ने जगथम देवता से स्थान माँगा। कालांतर में गाँव के लोगों ने उसके लिए एक कुटिया बनाई जो आज भी उसके मंदिर के रूप में विद्यमान है।

वीरनाथ

गाँव : डेहरा सेरी, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : थाच माशण।

मंदिर एवं भंडार : डेहरा सेरी।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बने प्राचीन मंदिर का वर्ष 1975 में जीर्णोद्धार कर उसमें सीमेंट का भी प्रयोग किया गया है। डेढ़ मंज़िल के इस मंदिर की चारों ओर को ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है, जिसके शिखर पर लगे 'बदोर' पर तीन काष्ठ निर्मित कलश स्थापित हैं। मंदिर का द्वार पूर्वाभिमुख है, जिसकी चौखट पर मानव तथा सर्प की आकृतियाँ उकेरी गई हैं। चौखट के ऊपर टंगोर (जंगली बकरा) और भेड़ों के सींग टाँगे गए हैं। भीतर गर्भगृह में दो मूर्तियाँ स्थापित हैं, जिनमें से प्रस्तर-मूर्ति लगभग डेढ़ फुट ऊँची है, जिसके ऊपर पीतल का छत्र शोभित है। दूसरी संगमरमर की मूर्ति वीरनाथ की है। इसके अतिरिक्त भीतर दो त्रिशूल हैं, जिन्हें देवता काली नाग का प्रतीक माना जाता है। मंदिर के पीछे की ओर शेगल वृक्ष के नीचे चबूतरे पर बनी जोगिनियों की तीन छोटी-छोटी काष्ठ निर्मित डेहरियाँ हैं, जिनकी दो ओर को ढलवाँ छत पर बदोर तथा उस पर तीन-तीन कलश लगे हैं। इनमें लोहे के छोटे-छोटे त्रिशूल रखे गए हैं तथा लाल झंडे लगाए गए हैं।

शाखा मंदिर : कटराई, हुरला, जुआणी, बारीतुनी, भोष,



जयधारा, जगतीपौट, ब्राण, बड़ाग्राँ, फोज़ल, कराल, शिकारीधार, व्यासर, दमचीण, शलीण, दचाणी, धारा एवं ग्राहण गाँव।

अधिकार क्षेत्र : मडोगी, बागा, रायसन विहाल, पनगाँ, छाटनसेर, माली पत्थर, बैंची, खारका, लोहड़ी, डेहरा सेरी, सजूणी, खरगाँ, काऊसेरी, गणांडी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी व भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा। सामान्य मामलों को देवता वीरनाथ के परिसर में ही निपटाया जाता है, लेकिन अगर देव-न्याय विधि के दौरान कोई अड़चन आए तो शिरढ़ के देवता कालिया नाग के पास न्याय हेतु जाते हैं।

पूजा : दैनिक पूजा प्रातः धूप-दीप से होती है और रंग-बिरंगे पुष्प चढ़ाए जाते हैं। मेले-त्योहारों के अवसर पर जब देवता रथ पर सज्जित होकर 'सौह' में निकलता है तो विशेष पूजा होती है जिसमें गूर और देऊलू सम्मिलित होते हैं।

रथ : अखरोट की लकड़ी का बना खड़ा रथ। पूर्व में इसके स्थान पर 'करड़ू' था जो अब पनगाँ गाँव में देवता के प्राचीन भंडार में रखा रहता है। नया रथ तथा मोहरे व आभूषण मंदिर के साथ के नए भंडार में रखे जाते हैं।

मोहरे : कुल पंद्रह, जिनमें से ग्यारह मोहरे चाँदी के, तीन अष्टधातु के एवं एक गुप्त मोहरा है।

मेले-त्योहार : प्रथम चैत्र को *जेठा बिरशू,* प्रथम ज्येष्ठ को *कापू मेला,* आश्विन संक्रांति को *शौयरी मेला,* बारह फाल्गुन को *फागली,* जिसे *राणी री जाच* के नाम से भी जाना जाता है। इस मेले को अन्य मेलों की भाँति देवता अपने मंदिर में नहीं मनाता। रामगढ़ रानी के स्थान पर यह मेला लगता है, जिसमें अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। इन सभी मेलों में देवता का रथ पूरे वाद्ययंत्रों सहित निकलता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को देवता का रथ नहीं निकलता, केवल वाद्यों के साथ *'हारका'* किया जाता है। उस दिन के बाद पूरी सर्दी के लिए देवता के द्वार बंद हो जाते हैं।

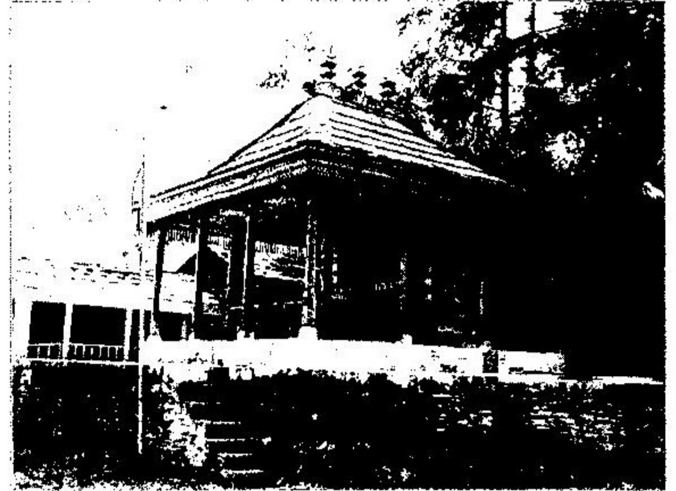
जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ : वीरनाथ, गाँव थाच, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

वीरनाथ

गाँव : बलोहणी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं भंडार : बलोहणी।

मंदिर : कटाहर गाँव के समीप गोहरी धार पर।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का साधारण मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट लगे हैं और शिखर पर 'बदोर' के ऊपर लकड़ी के तीन कलश हैं, जिनमें त्रिशूल गड़े हैं। मंदिर गाँव से काफी दूर देवदार के घने वन के बीच वीराने में बना है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बलोहणी, कटाहर, अरमोट।

प्रबंध : तीन कारदारों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व कारदार द्वारा, 'मलोही' डालकर, रथ द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल तीज-त्योहारों के दिन बेठर को 'धुपयारे' में डालकर घंटा-ध्वनि के साथ पुजारी देवता की पूजा करता है।

रथ : फेटा।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मास की संक्रांति से प्रारंभ होकर *कापू मेला* तीन दिनों तक चलता है। इसमें वीरनाथ के साथ नाग देवता की भी पूजा की जाती है। इस दिन कोठी सारी में कोई काम नहीं किया जाता, क्योंकि पूरी कोठी में नाग देवता की पूजा-अर्चना केवल इसी स्थान पर की जाती है। आश्विन मास की संक्रांति को *शौईरी मेला* होता है, जिसमें मनौती के रूप में एक बलि दी जाती है। दशहरा से तीसरे दिन रघुनाथ जी के स्वागत में मेला लगता है। मार्गशीर्ष की पूर्णिमा के दिन से देवता अपनी 'हार' (प्रजा) के बीच यात्रा पर निकलता है। वह एक-एक

दिन प्रत्येक गाँव में रुकता है। इस अवसर पर लोग देवता को नया अन्न चढ़ाते हैं।
जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ : वीरनाथ, थाच, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

वीरनाथ

गाँव : बारी पधरू, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : थाच माशण।
मंदिर : बारी पधरू।
भंडार : तुनी आगे।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक कक्षीय साधारण मंदिर जिसकी ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है।
अधिकार क्षेत्र : तलोगी, तरांबली, बारी तुनी, बारी पधरू।
प्रबंध : कारदार व गूर द्वारा।
न्याय प्रणाली : 'चावल, फूल, पर्ची व मरोहड़ी' डालकर।
पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।
रथ : करड़ू, जिसे सिर पर उठाया जाता है।
मोहरे : एक।
मेले-त्योहार : श्रावण मास में देवता अपने अधिकार क्षेत्र का फेरा लगाता है।
जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ : वीरनाथ, गाँव थाच, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

वीरनाथ

गाँव : भोष, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भोष।
स्थापत्य : पहाड़ी शैली में निर्मित एक मंज़िल के मंदिर की ढलवाँ छत स्लेटों से आच्छादित है। इसके शिखर पर 'बदोर' है।
अधिकार क्षेत्र : भोष।
प्रबंध : कार्यवाहक समिति।



न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर ही पूजा होती है।
रथ : अखरोट की लकड़ी का बना फेटी शैली का, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से दो व्यक्ति उठाते हैं। इसके शीर्ष पर रजत का एक पिंड सजा रहता है।
मोहरे : तेरह।
मेले-त्योहार : चैत्र मास में *जेठा बिरशू* तथा *जवाड़ी मेला*।
जनश्रुति : वीरनाथ के पुजारी का कोई पूर्वज इसे किसी समय थाच से यहाँ लाया था और उसने पत्थर की पिंडी के रूप में इसकी पूजा आरम्भ की थी। कालांतर में यहाँ मंदिर का निर्माण कर के गाँववासियों ने भी इसे पूजना आरम्भ कर दिया। (गौहरी देऊ : वीरनाथ, गाँव थाच की जनश्रुति भी देखें)।

शपराड़ा नारायण : भृगु ऋषि

गाँव : बड़ोगी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बड़ोगी।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से पत्थर, मिट्टी और लकड़ी से बना एक मंज़िल का मंदिर, जिसके गर्भगृह में शपराड़ा नारायण की स्थापना है। साथ ही उत्तर दिशा की ओर भृगु ऋषि की चौकी है। मंदिर की छत स्लेटों की है, जिस पर लकड़ी के तीन कलशों से युक्त बदोर लगा है।
शाखा मंदिर : गाँव आशणी, कूहीधार, चौ बड़ोगी।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बड़ोगी, कूहीधार, कांसाधार, चौ बड़ोगी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पारम्परिक समिति।

न्याय प्रणाली : गूर व रथ के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं पूजा व आरती की जाती है। धूप, बेठर और शुद्ध घी का दीपक जलाया जाता है। करनाल, ढौऊंस, ढोल-नगारे और शहनाई आदि मंदिर के बाहर बजाए जाते हैं तथा भीतर शंख, रणसिंगा व घंटा ध्वनि की जाती है। रथ की पूजा विशेष अवसरों पर होती है।

रथ : दो अर्गलाओं युक्त फेटा रथ जो अंगू की लकड़ी का बनाया जाता है। इसके शीर्ष पर चुरू गाय की पूँछ के बाल लगाए जाते हैं और उसके ऊपर छत्र शोभित होता है।

मोहरे : दस। एक अष्टधातु का व नौ चाँदी के। अष्टधातु का मोहरा जो रथ के मूल में लगाया जाता है, अद्वितीय एवं प्राचीनतम है। मान्यता है कि देवता का प्राचीन रथ जिसके सभी मोहरे स्वर्ण के थे, किसी प्राकृतिक आपदा के कारण शुरू ग्राँ के ऊपर व कोठके ग्राँ के बीच वाले स्थल में दब गया था। उसके बाद नए रथ का निर्माण किया गया।

मेले-त्योहार : फाल्गुन संक्रांति को मंदिर के कपाट खुलने के बाद देवता गूर के माध्यम से वर्षफल सुनाता है। इसी मास के तीसरे, पाँचवें और सातवें दिन *चलौआ* मनाया जाता है। मंदिर की छत के ऊपर रोट, बबरू व हलवा आदि से पूजन किया जाता है, जिसका प्रसाद हरियानों में बाँटा जाता है। चैत्र मास में देवता की शौरन ग्राँ की सौह में स्त्रियाँ व कन्याएँ नाच-गाना करती हैं, जिसमें देवता का बाजा भी बजाया जाता है। वैशाख संक्रांति को हिसाब-किताब की पोथियों की पूजा कर इन्हें हरियान को दिखाया जाता है। इसी मास देवता कंडा यात्रा पर जाता है और चौंसठ योगिनियों की पूजा करता है। आश्विन संक्रांति के दिन *शौयरी* त्योहार। दशहरा उत्सव में देवता भृगु रघुनाथ जी की रथ-यात्रा में सम्मिलित होता है तथा अठारह करड़ू को धूप देता है। मार्गशीर्ष की संक्रांति को देवता धूप ग्रहण करने के लिए गाँव के प्रत्येक घर में जाता है। माघ संक्रांति को मंदिर में जूब दी जाती है और इस दिन मंदिर के कपाट एक मास के लिए बंद हो जाते हैं।

जनश्रुति : भृगु ऋषि का बड़ोगी में आगमन भृगु-जीमा नामक स्थान से हुआ। बड़ोगी पहुँचकर एक भेखल के पेड़ के नीचे लम्बे समय तक तपस्या में लीन रहे। भृगु जीमा के साथ ही कहुधार में धर्मू ठाकुर का राज था। उसके पास 60 हाली-कुदाली व बैल थे। एक बार ठाकुर समय पर हालियों के लिए भोजन नहीं लाया तो साधु ने उन्हें वे जौ भूनकर खाने के लिए कहा जो ठाकुर ने उन्हें बीजने के लिए दिए थे। परन्तु हालियों ने ठाकुर के डर से ऐसा करने से मना कर दिया। तब साधु ने उनसे जौ लेकर भूने और उन्हें खिला दिए। अभी वे खा ही रहे थे कि ठाकुर आ पहुँचा और उसे यह देखकर बड़ा क्रोध आया। तब साधु ने उससे कहा कि इसमें इनका कोई दोष नहीं है; जौ मैंने इन्हें खाने के लिए दिए थे। तुम बचे हुए जौ खेत में बीज दो। न चाहते हुए भी उसने वे भुने दाने बीज दिए। उगने पर उसने देखा कि पौधों में जौ के स्थान पर सोने की बालियाँ निकल आई थीं। इस चमत्कार को देखकर ठाकुर ने साधु से वहीं रहने का आग्रह किया और उसकी पूजा करनी आरम्भ की। कालांतर में वह साधु तो अन्तर्धान हो गया परन्तु उसकी स्मृति में मंदिर बनाकर गाँववालों ने उसे मान्यता दी।

शवार्श ऋषि

गाँव : नकथान, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान एवं मंदिर : नकथान।

भंडार : नकथान में पुजारी के घर में है।

स्थापत्य : पहाड़ी शैली में बना 35x25 फुट का डेढ़ मंज़िल का मंदिर है। इसकी छत अनगढ़ स्लेटों से आच्छादित है।

शाखा मंदिर : नकथान।

अधिकार क्षेत्र : केवल नकथान।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।



न्याय प्रणाली : 25 वर्षों से गूर नहीं है, अतः पुजारी और रथ के माध्यम से न्याय मिलता है।

पूजा : मेले-त्योहारों के अवसर पर जब रथ सजाया जाता है तो रथ के पुनः मंदिर में विराजने तक प्रातः-सायं पारंपरिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से उठाया जाने वाला खड़ा रथ। इसके शीर्ष पर चाँदी का छत्र लगाया जाता है।

मोहरे : आठ मोहरे। मुख्य मोहरा अष्टधातु का और शेष मोहरे रजत निर्मित हैं।

मेले-त्योहार : बैसाख मास में कोन्हा विरशू मनाया जाता है। इसमें महिलाएँ सतराड़े (देवता के स्तुति गीत) गाती हैं। मार्गशीर्ष और आश्विन मास की संक्रांति को साजा मनाया जाता है। फाल्गुन मास में *फागली* मनाई जाती है।

जनश्रुति : यह देवता साधु के भेस में इस क्षेत्र में आया और यहीं अंतर्धान हो गया। कुछ समय बाद यह किसी महिला के शूर्प में एक मुखौटे के रूप में प्रकट हुआ और कहा कि उसे देवता के रूप में पूजा जाए। शूर्प में प्रकट होने के कारण इसे शवार्श ऋषि के नाम से जाना जाने लगा।

शीतला माता

गाँव : पीपल़ आगे, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पीपल़ आगे।

स्थापत्य : गारे-पत्थर से पहाड़ी शैली में बने एक मंज़िल के पुरातन मंदिर के ढह जाने के कारण, उस स्थान से लगभग 500 मीटर की दूरी पर वर्तमान में सीमेंट का गुंबदाकार मंदिर बनाया गया है।

अधिकार क्षेत्र : पीपल, जरढ़, वाहभ्रा बगीचा।

प्रबंध : कारदार द्वारा।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से देवता द्वारा, प्रश्न पूछकर, फूल, पर्ची और 'मरोहड़ी' विधि से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास के *नवरात्रों में मेला* लगता है।

जनश्रुति : लगभग सौ वर्ष पूर्व वाहभ्रा गाँव में जंगीराम नामक व्यक्ति को अपने ज़मींदार के खेत में हल चलाते हुए पत्थर की एक मूर्ति मिली। वह उसे अपने घर ले आया। वहाँ उसकी पत्नी को खेल आई तो ज्ञात हुआ कि वह मूर्ति शीतला माता की है और वह वहाँ रहना चाहती है। यह बात उसने खेत के मालिक को बताई। ज़मींदार ने वह खेत शीतला माता के नाम कर दिया और वहीं एक मंदिर का निर्माण कर उसमें मूर्ति की स्थापना की। 1980 के दशक में गाँव कुटीआगे के निवासी शमशेर सिंह एवं रघुनाथ सिंह ने माता के नाम पीपल गाँव में ज़मीन भेंट करके नया मंदिर बनवाया और उसमें देवी की संगमरमर की मूर्ति की स्थापना की। आज यह मंदिर भूंतर क्षेत्र में प्रसिद्ध धार्मिक स्थल माना जाता है।



शेषनाग : पाशुकोट

गाँव : बैंची, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बैंची।



स्थापत्य : काष्ठ व प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर गाँव के शीर्ष पर स्थित है। इसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है। छत पर लगे 'बदोर' पर स्थापित तीन कलशों पर त्रिशूल हैं। मंदिर में शेषनाग की धातु की प्रतिमा के साथ राधा-कृष्ण की मूर्ति भी स्थापित है।

शाखा मंदिर : गाँव रायसन।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बैंची, माई पात्थर, खरौटल, पनगाँ, मौंझली हार।

प्रबंध : कारदार, गूर तथा पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से पूछ डाल कर।

पूजा : मंदिर में प्रतिष्ठित मूर्ति के पास गुग्गुल धूप से साप्ताहिक पूजा होती है। रथ की पूजा मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर बेठर धूप से सुबह-शाम दो समय तब तक होती है, जब तक रथ को मंढारा (भंडार में रखना) नहीं जाता।

रथ : खड़ा, जिसके चारों ओर मोहरे तथा शीर्ष पर रजत निर्मित कलश सुशोभित होते हैं।

मोहरे : नौ। मुख्य मोहरा अष्टधातु का। इसे रथ में अवश्य लगाया जाता है। इनमें से एक मोहरा दिखाई नहीं देता। इसे रथ में सजाकर बागों (देव-वस्त्र) के अंदर छिपा कर रखा जाता है।

मेले-त्योहार : वर्ष में केवल श्रावण मास के चौदह व पंद्रह प्रविष्टे को *शाऊणी जाच* लगती है। यह मेला रायसन स्थित शेषनाग मंदिर की सौह में लगता है। इसलिए इसे *शाऊणी सौह* भी कहा जाता है। बैंची गाँव से रथ सज-धज कर मेले में जाता है। वहाँ पहुँच कर सौह के साथ की नदी में अनेक बार घुस कर सर्वप्रथम स्नान करता है, तत्पश्चात् मेले का आरम्भ होता है। यहाँ देऊली (देव कार्रवाई) के अतिरिक्त देऊ-खेल का आयोजन भी होता है। किसी की मनोकामना पूर्ण होने पर आयोजित भौती (भोज) में भी देवता का रथ पूर्ण रूप से सज कर आयोजक के घर आता है।

जनश्रुति : किसी समय दलित वर्ग का बेलू राम नामक व्यक्ति मंडी ज़िला के बरोट गाँव में नौकरी करता था। एक बार उसने एक राजसी महोत्सव में नकली देवता का रथ नचाया और सभी देव पद्धतियों का मंचन किया। जब रथ घर लाया गया तो कभी खेल-खेल में इसे नचाने पर इसमें असली देवरथ की तरह हरकत होती। तब उनके साथ बरोट गाँव से आए खीमू नाम के व्यक्ति में देवशक्ति का प्रवेश हुआ। उसने कहा कि वह शेषनाग है जो सबके कल्याण के लिए बरोट से यहाँ आया है और यहीं स्थापित होकर उनका मार्गदर्शन करना चाहता है। तब खीमू को देवता का गूर चुना गया। कुछ दिनों बाद इसे रायसन में शेषनाग की धातुनिर्मित एक प्रतिमा मिली। यही प्रतिमा आज बैंची मंदिर में स्थापित है। इसके साथ राधा-कृष्ण की मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। रायसन के जिस स्थान पर देवता की प्रतिमा प्रकट हुई थी, वहाँ भी शेषनाग (पाशुकोट) का मंदिर है। चूँकि वहाँ उस समय कोई बस्ती नहीं थी, इसलिए देव-प्रतिमा को बैंची मंदिर में लाकर प्रतिष्ठित किया गया। लेकिन देवता का प्रथम स्थान आज भी रायसन ही माना जाता है।

श्रीपाल

गाँव : बंसू, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बंसू के कस्तार नामक स्थान पर।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से देशज शैली में बना एक कक्षीय मंदिर, जिसकी छत पर स्लेटों का आच्छादन है और शिखर पर बदोर स्थापित है।
अधिकार क्षेत्र : बंसू और लिंगर गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में पुजारी, गूर, कठियाला की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, रथ द्वारा, लाडू-पोगले डालकर।
पूजा : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति को, परन्तु विशेष अवसरों पर जब रथ निकलता है तो प्रातः-सायं उसकी पूजा की जाती है।
रथ : छत्रयुक्त फेटा रथ, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं।
मोहरे : मुख्य मोहरा अष्टधातु का, अन्य बारह रजत निर्मित।
मेले-त्योहार : हर वर्ष चैत्र और मार्गशीर्ष में पर्व मनाया जाता है। पाँच वर्ष के अंतराल में मार्गशीर्ष मास में देवता हारगी पर जता है।
जनश्रुति : श्रीपाल क्षेत्र रक्षक देवता है। इसका मूल स्थान सर्गपुर माना जाता है। कहते हैं कि एक बार भारी वर्षा के कारण बाढ़ आई और यह अपने अन्य छह भाइयों के साथ बह गया। कालांतर में ये भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रकट होकर लोगों के पूज्य देवता बने।

श्री राधाकृष्ण

गाँव : वृंदावणी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : वृंदावणी।
स्थापत्य : शिखर शैली में निर्मित मंदिर के गर्भगृह में राधा व कृष्ण की संगमरमर की मूर्तियाँ स्थापित हैं।



अधिकार क्षेत्र : भूंतर का पूरा इलाका।
प्रबंध : विरक्त वैष्णव मंडल।
न्याय प्रणाली : वैदिक न्याय-परम्परा के अनुसार।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं रामानंदीय वैष्णव परम्परान्तर्गत।
रथ : पालकी।
मोहरे : नहीं हैं।
मेले-त्योहार : *रामनवमी, गुरु पूर्णिमा, जन्माष्टमी* तथा *महाशिवरात्रि* पर्व मनाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त उज्जैन, हरिद्वार, प्रयागराज व नासिक में लगनेवाले प्रत्येक कुम्भ के अवसर पर वहाँ श्रीराधा-कृष्ण भूंतर को सरकार द्वारा स्थान उपलब्ध करवाया जाता है, जहाँ पर मंदिर की ओर से लंगर की व्यवस्था रहती है। कुल्लू दशहरा उत्सव में भी लंगर लगता है।
जनश्रुति : जब पांडव इस क्षेत्र में अज्ञातवास पर थे तो भगवान् कृष्ण उनसे मिलने यहाँ आए। यहीं उन्होंने नारद को भक्तिसूत्र सुनाया था। श्रीकृष्ण से सम्बंध होने के कारण इस स्थान का नाम वृंदावन पड़ा, जो बाद में मुखसुख से वृंदावणी हो गया।

श्री रामचंद्र

गाँव : मणिकर्ण, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : अयोध्या।
मंदिर एवं भंडार : मणिकर्ण।



स्थापत्य : पैगोड़ा संयोजन शैली का प्राचीन मंदिर।
शाखा मंदिर : मणिकर्ण।
अधिकार क्षेत्र : मणिकर्ण।
प्रबंध : पारम्परिक समिति तथा सोसायटी एक्ट 1860 के अंतर्गत पंजीकृत ट्रस्ट।
न्याय प्रणाली : पुजारी द्वारा।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं।
रथ : नहीं है। दशहरे के अवसर पर घरनुमा रथ सजाया जाता है, जो अन्य दिनों में देव-प्रांगण में खड़ा रहता है।
मोहरे : नहीं हैं, केवल एक मूर्ति है।
मेले-त्योहार : 20 भादों को पवित्र-स्नान पर्व, आश्विन शुक्ल पक्ष की दशमी को दशहरा उत्सव, जिसे बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है।
जनश्रुति : सन् 1637 से 1667 के मध्य जब कुल्लू में राजा जगत सिंह का शासन था, उस समय राजा ने अपने किसी दरबारी के कहने पर टिपरी के ब्राह्मण दुर्गादत्त को सुच्चे मोती राजकोष में जमा करने के आदेश दिए थे। उसके पास मोती न होने के कारण राजभय से उसे अपनी इहलीला समाप्त करनी पड़ी। निर्दोष की मृत्यु से राजा को ब्रह्महत्या का दोष लगा और उसे कुष्ठ रोग हो गया। इस दोष के निवारण हेतु गुटका-सिद्धि में पारंगत दामोदर दास नाम का व्यक्ति अयोध्या से भगवान् श्रीराम की मूर्ति कुल्लू लाया था। मान्यता है कि इस मूर्ति को पहले मकराहड़ रखा गया, तत्पश्चात् मणिकर्ण और वहाँ से उसे कुल्लू लाया गया। जब वह मणिकर्ण में रखी गई तो वहाँ एक उत्सव का आयोजन किया गया और राजा ने उनके निमित्त शिखर शैली के मंदिर का निर्माण करवाया। तभी से वहाँ भगवान् राम की मान्यता है।

सारी नारायण

गाँव : भेखली, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भेखली।
स्थापत्य : भेखली देवी के मंदिर के पिछली ओर सटा काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का मंदिर जिसकी चारों ओर को ढलानदार छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर 'बदोर' लगा है। भेखली माता और सारी नारायण का संयुक्त भंडार है।
शाखा मंदिर : सारी।
अधिकार क्षेत्र : कोठी सारी के सभी गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति, जिसके अनेक सदस्य हैं।
न्याय प्रणाली : गूर व कारदार द्वारा तथा 'मलोही' डालकर।
पूजा : प्रतिदिन दोनों पहर शास्त्रोक्त विधि से।
रथ : अखरोट की लकड़ी का बना, फेटा रथ।
मोहरे : नौ।
मेले-त्योहार : सारी नारायण और भेखली देवी के लगभग सभी उत्सव इकट्ठे होते हैं, क्योंकि ये दोनों शक्तियाँ एक साथ ही रहती हैं। परन्तु कुछ मेले ऐसे भी हैं जो केवल सारी नारायण के होते हैं। *फागली मेला* प्रतिवर्ष पंद्रह फाल्गुन को मनाया जाता है। इस दिन सारी



गाँव के भंडार से नारायण के शस्त्र, वाद्ययंत्र, छड़ियाँ, सूरजपंखे आदि बाहर निकाले जाते हैं। वाद्ययंत्रों की ध्वनि के बीच पुजारी देवता के मोहरे, झारी, घंटी और धड़छ लेकर नरायंडी नामक स्थान की ओर प्रस्थान करता है। यह स्थान सारी गाँव से कुछ पीछे है और इसे देवता की तपस्स्थली माना जाता है। वहाँ मोहरों और घंटी-धड़छ को स्नान कराया जाता है। लौटने पर पुनः वाद्य यंत्रों पर धुनें बजाई जाती हैं। आमंत्रित देवी-देवताओं के यहाँ पहुँचने से पहले सारी गाँव में कोई भी अतिथि प्रवेश नहीं कर सकता। पुजारी सौह में पहुँच कर सभी शस्त्रों, छड़ियों व सूरजपंखों की पूजा करके उन्हें कुंकुम का टीका लगाता है। गूरों द्वारा वर्ष भर की भविष्यवाणी की जाती है। तत्पश्चात् सभी लोग गाँववालों द्वारा लाई गई 'सूर' का सेवन करते हैं।

चैत्र मास में *जौग* का आयोजन होता है। वैशाख मास के शुक्लपक्ष के आठवें दिन *वैशाखी* का मेला होता है। इस दिन देवता भेखली से सारी गाँव जाता है। भेखली के सभी स्त्री-पुरुष देव-रथ को 'जौरे' से सजा कर भेजते हैं। सारी सौह में देवता प्रणाम करके नरायंडी चला जाता है और वहीं रात्रि विश्राम भी करता है। सारी में देवता की *जेठी हार* (खराल गाँव का दलित वर्ग) के लोग पहुँचे होते हैं, क्योंकि यह उनका कुल देवता है। रात खुलने से पूर्व उनमें से एक व्यक्ति ऊँची पहाड़ी पर जाकर वहाँ से गुन्ना नामक फूलों का हार बना कर लाता है। प्रातः सारी नारायण के लौटने पर सभी लोग धूप जलाकर देवता की पूजा करते हैं। गूर आशीर्वाद स्वरूप उन्हें चावल के दाने देता है। सायं चार बजे के लगभग देवता का रथ भेखली की ओर लौट आता है। वहाँ आए गूर देऊखेल करते हैं और देवताओं का मिलन भी होता है। भादों में *फुंगणी* मेले का आयोजन तथा आश्विन में *माठा फुंगणी* मेला लगता है।

जनश्रुति : प्राचीन काल में नारायण देवता खलाड़ा गाँव में जोगणियों के साथ रहता था। खलाड़ा, खणीयांद, नरायंडी, सारी और भेखली के सारे क्षेत्र पर उसका आधिपत्य था। एक बार भुवनेश्वरी देवी ने खलाड़ा आकर नारायण और जोगणियों के साथ जुआ खेलकर उन्हें हराया। फिर वहाँ के एक आतंकी दैत्य का वध किया। उसकी शक्ति से प्रभावित होकर नारायण ने देवी को अपनी धर्म बहन बनाया और गाँव सारी तथा भेखली दोनों स्थानों पर स्वतंत्र रूप से रहने के लिए स्थान देकर स्वयं भी उसके साथ ही रहने लगा। इसीलिए आज भी देवी और सारी नारायण के मेले-त्योहार सामूहिक रूप से मनाए जाते हैं।

सिंहमल

गाँव : गाहर, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गाहर।

स्थापत्य : सिंहमल देवता का वास एक शिला में है, जो पत्थर की दीवारों के अंदर स्थापित है। इसकी छत प्राकृतिक शिला से आच्छादित है। यह मूल मंदिर है। इसमें ठाकुर ही पूजा करते हैं। इस मंदिर से थोड़ा नीचे एक मंज़िल का अन्य मंदिर है, जिसमें दलित वर्ग द्वारा पूजा की जाती है।

अधिकार क्षेत्र : गाहर।

प्रबंध : देवी के कारकुनों व विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा।

न्याय प्रणाली : 'पोगले' और 'मलोही' डालकर तथा गूर के माध्यम से।



पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर, गुग्गुल धूप व दीप से।
रथ : करड़ू शैली।
मोहरे : एक।
मेले-त्योहार : वैशाख मास में *बिरशू* मेला, *जागरण, यज्ञ* तथा *जात्रा* आदि।
जनश्रुति : सिंहमल, गिरमल, अजिमल तथा थिरमल इन चारों भाइयों ने अपने गुरु जमलू देवता के साथ महाचिन, कैलास पर्वत और हामटा में तपस्या कर ब्रह्मा, शिव और देवी अम्बा से ब्रह्मज्ञान व दिव्य शक्तियाँ प्राप्त कीं। तदुपरांत ये चारों भाई लोगों के कष्ट निवारण हेतु वहाँ से विभिन्न स्थानों में चले गए। इनमें से सिंहमल गाहर आया और वहाँ एक शिला के रूप में स्थापित हो गया। यहाँ गाँव के किसी व्यक्ति को स्वप्न में दृष्टांत देकर अपनी पहचान बताई। तब काफी समय तक लोग उस शिला को ही पूजते रहे। परन्तु कुछ वर्ष पूर्व वहाँ मंदिर का निर्माण किया गया, जहाँ ठाकुर पूजा करते हैं।

सुन्न नारायण

गाँव : डडेई, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : डडेई।
भंडार : निचली डडेई तथा ऊपरली डडेई।
स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से पहाड़ी शैली में बना लगभग 15x18 फुट का डेढ़ मंज़िला मंदिर, जिसकी ढलवाँ छत पर बदोर लगा है तथा स्लेटों का आच्छादन है।
अधिकार क्षेत्र : गाँव डडेई, चनाहलदी, छाकना व मतेउड़ा।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी और पालसरा की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : भंडार में प्रातः-सायं नियमित पूजा होती है। हर मास की संक्रांति को डडेई में देवता का देऊकारा होता है। पूजा में केवल चूड़ी धूप का प्रयोग होता है।
रथ : नगाल (बाँस प्रजाति का पौधा) की लकड़ी का करड़ू शैली का।
मोहरे : केवल मूर्ति है।
मेले-त्योहार : वर्ष की प्रत्येक संक्रांति को मंदिर के पास दपोत जलाकर *देऊकारा* होता है। फाल्गुन संक्रांति को *फागली* मनाई जाती है। इसमें देवता गाजे-बाजे के साथ डडेई से मतेउड़ा जाता है। वहाँ विशेष पूजा करने के बाद 'पूछ' डाली जाती है। इसके अतिरिक्त देवता के आदेश पर कभी *काहिका* भी आयोजित होता है।
जनश्रुति : सैंज घाटी के बनाऊगी गाँव से इस देवता की एक मूर्ति को नड़ जाति की किसी स्त्री ने डडेई पहुँचाया। बनाऊगी से आते हुए मार्ग में उसने कई स्थानों पर विश्राम किया, परन्तु जब वह डडेई पहुँची तो वहाँ मूर्ति भारी हो गई। महिला ने यह बात गाँववालों को बताई। जब इस सम्बंध में राजा कुल्लू को पता चला तो उसने देवता की स्थापना करवा कर ग्राहण गाँव के एक व्यक्ति को पुजारी नियुक्त किया। कहते हैं कि एक बार छाकना गाँव के ठाकुरों ने परीक्षा लेने के उद्देश्य से देवता से कहा कि यदि उसके तप में बल है तो वह उनकी समृद्धि को नष्ट करके दिखाए। देवता ने उनकी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया, जिससे उनमें अनेकों ऐब पनपने लगे और वे अपनी प्रजा पर अत्याचार करने लगे। इससे थोड़े समय में ही वे कंगाल हो गए। इसे देवता का कोप मान कर उन्होंने सुन्न नारायण से क्षमायाचना की और छाकना में भी देवता की स्थापना कर उसे मानने लगे।

सूरजपाल

गाँव : बड़ा भूईण, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बड़ा भूईण।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में निर्मित त्रिछतीय मंदिर जिसकी धरातल मंज़िल में काठकुणी विधि से चिनाई की गई है और ऊपर की दो मंज़िलें केवल काष्ठ निर्मित हैं। तीनों छतें स्लेटों से ढकी हैं और शिखर पर कलश स्थापित है। ऊपर की दो छतों के किनारे पर काष्ठ झालरें लगी हैं।

अधिकार क्षेत्र : हाथी थान भूईण, बड़ा भूईण, कुटी आगे।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, पर्ची डालकर, धड़छ, चावल या पुष्प द्वारा।

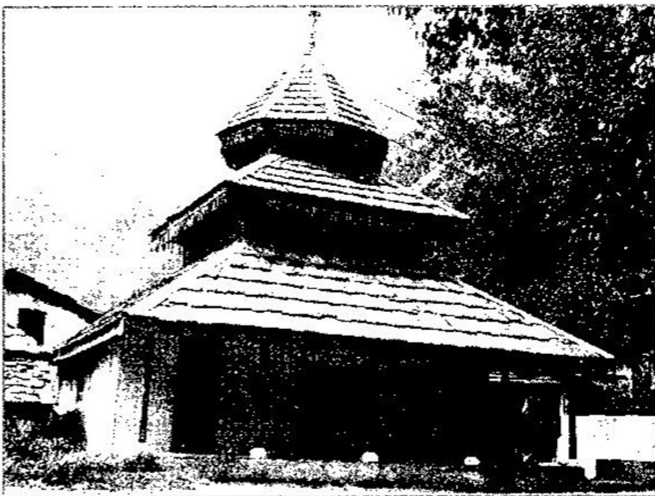
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : छत्र से सुशोभित शीर्ष वाला फेटा रथ, जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है।

मोहरे : रजत निर्मित बारह मोहरे। सभी मोहरों को रथ के अग्रभाग में लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : आषाढ़ में भूंतर में *शाढ़ी मेला* लगता है।

जनश्रुति : किसी समय बड़ा भूईण के कुछ बच्चे जंगल में पशु चरा रहे थे। वहाँ उन्हें एक मोहरा व 'घोंडी-धड़छ' मिले। वे सारी चीज़ों को गाँव में ले आए। गाँववाले उस मोहरे के सम्बंध में सोच-विचार कर ही रहे थे कि उनमें से ही किसी व्यक्ति को देऊखेल आई और उसने बताया कि वह सूरजपाल देवता है और जनकल्याण हेतु यहाँ आया है। तब लोगों ने देवता के निमित्त मंदिर बनाकर वहाँ उसकी स्थापना की।



सोमू नारायण

गाँव : कसोल, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : गाँव ग्राहण के ठोज़ा नामक स्थान में।

मंदिर एवं भंडार : कसोल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली का मंदिर डेढ़ मंज़िल का है। छत स्लेटों से ढकी है। शिखर पर बदोर लगा है।

अधिकार क्षेत्र : कसोल।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : भंडार में प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से तथा मेले-त्योहारों आदि अवसरों पर जब रथ सजा होता है तो इसके भंडारने (भंडार में रखना) तक सुबह-शाम पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ।

मोहरे : अठारह।

मेले-त्योहार : फाल्गुन-मास में *फागली* उत्सव मनाया जाता है। इस दिन देवता का पुजारी नंगे सिर व नंगे पैर पार्वती नदी में जाकर स्नान करता है। तत्पश्चात् वहाँ से झारी में पानी लाकर उस जल से देवता को स्नान करा कर पूजा करता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नवसंवत् के अवसर पर देवता का गूर पत्री सुनाता है। बैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू* होता है। इस दिन देऊ खेल होती है और देवता *धूप ग्रहण* करता है।

जनश्रुति : लग घाटी का कतरूसी नारायण दिल्ली, मंडी, सुकेत से घोघर धार होते हुए जब जठानी गाँव में पहुँचा तो वहाँ अपना राज स्थापित करके वह दियार, उड़सू, मनिहार होते हुए ठोज़ा गाँव और फिर कसोल के सामने की जोत पर पहुँचा। वहाँ से उसे कसोल गाँव रहने के

लिए उपयुक्त लगा, लेकिन कसोल में देवी भगवती का स्थान था। नारायण ने उसे वहाँ से भगाने के लिए कसोल के पीछे पानी पर बाँध बनाया और आठवें दिन पानी छोड़ा, जिससे देवी भगवती उस पानी में बहकर नाऊ गाँव में पहुँच गई। तब नारायण ने कसोल में आकर अनेक चमत्कारों से लोगों को प्रभावित किया और उन द्वारा पूजा जाने लगा।

सोलह सुरगणी

गाँव : बंसू, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : सौरी क्षेत्र का सुरगणी ढाँक।
मंदिर एवं भंडार : मंदिर एवं भंडार नहीं है। देवियों का निवास स्थान सुरगणी ढाँक पर ही है।
अधिकार क्षेत्र : लिंगर और खड़ीहार फाटी के सभी गाँव।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : लोग बैसाख मास में सुरगणी ढाँक में जाकर इनकी 'घोंडी-धड़छ' और शंख ध्वनि के साथ पूजा करते हैं। इन्हें घी, दूध, हलवा, शहद का प्रसाद चढ़ाते हैं और छेली की बलि भी देते हैं।
जनश्रुति : सौरी के ढाँक (दुर्गम पहाड़) में एक झरना बहता है। प्रातः के समय यह सतरंगी दिखता है। लोगों का मानना है कि सुबह के समय यहाँ सोलह सुरगणी (स्वर्ग में रहने वाली अप्सराएँ) स्नान करने आती हैं, अतः उनकी छटा से यह झरना रंग-बिरंगा दिखाई देता है। लोक विश्वास है कि किसी समय इस क्षेत्र में ठाकुरों का आधिपत्य था। सुरगणी ढाँक के ऊपर सौरी के ठाकुर की और ढाँक के नीचे गरमूली के ठाकुर की ठकुराई थी। गरमूली का ठाकुर अन्न से तो सौरी का ठाकुर दूध-घी से समृद्ध था। एक बार इन दोनों में शक्ति प्रदर्शन हुआ। गरमूली ने जौ के सत्तू हवा में इस तरह बिखेर दिए कि साथ लगती लिंगर व बंसू की पहाड़ियाँ आटे से बर्फ़ की तरह ढक गई। उधर सौरी के ठाकुर ने दूध-घी इकट्ठा करके पानी के स्थान पर उससे घराट चला कर आटा पीस लिया। दोनों ठाकुर अपनी समृद्धि के घमंड में चूर होकर मनुष्यों के साथ-साथ पशुओं पर भी अत्याचार करने लगे। सर्दी के मौसम में जब जंगली जीव बस्ती के नज़दीक आते तो वे उन्हें ज़िन्दा पकड़ करके उनकी खाल उधेड़ कर उन्हें बर्फ़ में बाहर छोड़ते, जिससे वे तड़प-तड़प कर मरते। सुरगणी देवियों ने दोनों ठाकुरों को स्वप्न में कई बार सावधान किया, लेकिन उनका अत्याचार बढ़ता ही गया। तब देवियों ने क्रोधवश भारी वर्षा करके इन दोनों ठाकुरों के गाँव को बाढ़ में बहा कर उनका नाश कर दिया। दैवी शक्ति से प्रभावित होकर लोगों ने इन्हें पूजना आरम्भ किया। ये देवियाँ अपने स्थान में कोलाहल नहीं मानतीं। अतः लोग यहाँ शांत रहते हैं और शोर नहीं करते।



हनुमान

गाँव : छाशणी, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : छाशणी।
स्थापत्य : स्लेटों की ढलवाँ छतवाला लघु मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : छाशणी।
प्रबंध : गाँववासियों द्वारा।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा, 'पोगले' या 'मलोही' डालकर।
पूजा : प्रतिदिन बेठर, गुग्गुल धूप व दीप से।
रथ : नहीं है।



मेले-त्योहार : *जागरा,* श्रावण व आश्विन मास में *यज्ञ*।

जनश्रुति : हनुमान अंजनी पुत्र हैं और इन्हें अष्ट सिद्धि व नवनिधि के दाता माना जाता है। प्राचीनकाल में मणिकर्ण में पार्वती नदी के किनारे हनुमान का मंदिर था। एक बार भारी वर्षा से नदी में बाढ़ आने के कारण हनुमान मंदिर उसकी चपेट में आ गया। हनुमान की मूर्ति बाढ़ में बहती हुई छानीखोड़ नामक स्थान पर पहुँची, जहाँ उसे एक महंत ने देखा और उठाकर अपने साथ छाशणी गाँव में ले आया। उसने हनुमान से प्रार्थना की कि उन्हें जो स्थान अच्छा लगता हो, वहाँ प्रातः तक कोई दृष्टांत दें। दूसरी प्रातः महंत ने देखा कि वह मूर्ति स्वयं ही एक चट्टान के ऊपर विराज हो गई। महंत ने यह बात गाँववालों को बताई और उन्होंने वहाँ एक छोटा-सा मंदिर बनाकर उसमें विधिपूर्वक मूर्ति की स्थापना की।

हरि नारायण

गाँव : काथी, **तहसील :** कुल्लू।

मूल स्थान : काथी।

मंदिर एवं भंडार : काथी के झियाणी नामक स्थान पर।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना चार मंज़िल का यह मंदिर गाँव के एक किनारे पर स्थित है। नवनिर्मित इस मंदिर में देवता का भंडार भी है। मंदिर में काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। इसकी ढलवाँ छत स्लेटों से ढकी है, जिस पर 'बदोर' लगा है। छत से काष्ठ झालरें लटकी हैं।

शाखा मंदिर : गाँव कुकड़ी के नरायंडी वन में। यहाँ देवता का 'पिंडा' तथा प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव काथी, कुकड़ी, झियाणी, कास्ता, शलघाणी, लगाणी, मालंग।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठियाला, काईथ की समिति।

न्याय प्रणाली : 'पूछ, गैटी, पोगे, मलोही तथा सोह-कैसमी' द्वारा।

पूजा : मंदिर में प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। देव-रथ की पूजा मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर ही होती है। पूजा में केवल बेठर धूप का प्रयोग किया जाता है। ऐसे मौके पर रथ पूर्ण रूप से सजा होता है और पुजारी 'घोंडी-धड़छ' द्वारा पारम्परिक तरीके से पूजा करता है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिसके शीर्ष पर रजत निर्मित छत्र शोभित होता है।

मोहरे : उन्नीस। तीन अष्टधातु के तथा सोलह रजत निर्मित। सभी मोहरे रथ में सजाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : आषाढ़ मास की संक्रांति को दो दिवसीय *कजेली मेला,* भादों मास की संक्रांति को *शनोई मेला* तथा फाल्गुन मास की संक्रांति को दो दिवसीय *फागली मेला* लगता है। हर मेले में 'देऊली' और 'देऊखेल' होते हैं। घर-घर में लंगर और पीने-पिलाने का दौर चलता है। इन मेलों के अतिरिक्त देवता की इच्छा से *काहिका* भी होता है। इस आयोजन की कोई निश्चित अवधि नहीं होती। देवता *काहिका* मनाने के लिए तब कहता है, जब क्षेत्र में पाप बहुत बढ़ जाए अथवा कुछ अनिष्ट होने की सम्भावना हो।

जनश्रुति : हुरंग नारायण दराल, तहसील कुल्लू की जनश्रुति में वर्णित पाँच देवी-देवताओं में से एक हरि नारायण है। जब ये पाँचों भाई-बहन फोजल घाटी में अपनी मान्यता स्थापित करने के लिए अलग-अलग दिशाओं में निकले तो हरि नारायण ने अपने लिए काथी-कुकड़ी स्थान ढूँढा। सर्वप्रथम कुकड़ी गाँव के नरायंडी स्थान को अपना क्रीड़ा स्थल मानकर यहाँ एक प्रस्तर प्रतिमा के रूप

में प्रकट हुआ और अनेक चमत्कार दिखाए। बाद में किसी व्यक्ति में देवशक्ति प्रवेश होने पर पता चला कि वह देवता हरि नारायण है। तब लोगों ने काथी में मंदिर का निर्माण कर इसे पूजना आरम्भ किया।

हाटेश्वरी देवी

गाँव : हाट, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : हाट।
स्थापत्य : प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्तमान में ईंट, सीमेंट से बनाया गया गुंबदाकार मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : गाँव हाट, बजौरा, झीड़ी, मसरोगी, रुआड़ और हुरला।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं धूप-दीप से।
रथ : नहीं है।
मेले-त्योहार : चैत्र मास की मीन संक्रांति को देवी की जयंती मनाई जाती है। इस दिन सभी 'हारियान' अन्न-धन की भेंट चढ़ाकर देवी की पूजा करते हैं। ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर देवी को नया अन्न चढाए जाने की परम्परा है।
जनश्रुति : कदाचित् देवी मत्स्यगंधा बालू गाँव के अंसर नामक स्थान पर महर्षि पराशर के पास बैठी थी। देवी की गोदी में पराशर सिर रखकर लेटे हुए थे और वह उसके बालों को सहला रही थी। ऋषि ने देवी से कहा कि वह उसकी जटायें न खोले। जब ऋषि को नींद आ गई तो मत्स्यगंधा ने ऋषि की जटायें खोल दीं और देखा कि उनमें बासी मक्खन की टिक्की बंधी हुई थी। ऋषि-शाप के डर से वह अपने भाई दियारी ठाकुर से मदद माँगने गई। उसने उसे कहा कि वह ऋषि से शापित नहीं होना चाहता। तब वह थरास में मार्कण्डेय ऋषि के पास गई तो उसने उसे मधुमक्खी बन कर शव की चादर पर बैठ जाने को कहा। देवी के वैसा करने पर उसे अछूत माना जाने लगा। तब वह वहाँ से हाट जाकर अन्तर्धान हो गई। कालांतर में उसने हाट में मूर्ति रूप में प्रकट होकर चमत्कार दिखाए तो गाँव वासियों द्वारा देव-कन्या के रूप में पूजी जाने लगी।

हिडिम्बा देवी

गाँव : जिंदौड़, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान एवं मंदिर : जिंदौड़।



स्थापत्य : जिन्दौड़ गाँव के नीचे की ओर मुख्य मार्ग से दक्षिण दिशा में काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पैगोड़ा शैली का स्लेटों से आच्छादित त्रिछतीय मंदिर है, जिनके चारों ओर काष्ठ गिल्लियों की अवलियाँ शोभित हैं। मंदिर का द्वार पूर्वाभिमुख है, जिसकी चौखट पर सुंदर कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं।
शाखा मंदिर : गाँव बुरुआ।
अधिकार क्षेत्र : गाँव ववेली का कुछ भाग, जिंदौड़, नाँगचा, उशलीधार, पटेहड़, दिदरी, शरन, कशेढ़, गदेहड़, कशामटी, लारग तथा पूल। 'हार' के सभी लोग पूरी श्रद्धा के साथ हिडिम्बा देवी के प्रत्येक कार्य में सम्मिलित होते हैं।
प्रबंध : प्रधान की अध्यक्षता में बारह सदस्यों की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन नहीं होती। देवी के उत्सवों और त्योहारों के अवसर पर ही मंदिर में प्रातः-सायं पूजा की जाती है।

उस समय देवी के सम्पूर्ण वाद्य बजाए जाते हैं।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिसे चार 'जमाणी' उठाते हैं।

मोहरे : कुल नौ। इनमें से आठ मोहरे रजत-निर्मित और एक अष्टधातु का है।

मेले-त्योहार : पौष मास की अमावस को *दियाळी* मनाई जाती है। उस रात लोग अपने-अपने घर की दहलीज पर कुंकुम से तीन रेखाएँ खींचते हैं। उसके ऊपर जलती हुई तीन लकड़ियाँ और हरी दूब रखी जाती है। इनका अग्रभाग बाहर की ओर होता है। यह *दियाळी* पूजन की पारम्परिक विधि है। अग्नि के प्रज्वलित होते ही सामने पड़नेवाले नदी-पार के घरों की ओर इशारा करते हुए कुछ शब्द यों कहे जाते हैं, यथा-*म्हारे धौरा न घीऊ ता भौत, नौई पारले भाँडे न छार-भोस*। अर्थात् दियाळी के अवसर पर देवता से अपने लिए वरदान माँगा जाता है और घरों से बाहर व दूरदराज के क्षेत्रों में अँधेरी रात में विचरण करनेवाले निशाचरों के नाश की कामना की जाती है। उसके बाद सभी लोग मंदिर परिसर में *दियाळी* उत्सव मनाते हैं। जौभ नामक घास से तैयार किए गए सर्पाकार रस्से, अर्थात् 'गूण' को स्थानीय खश लोग जातीय परम्परा निभाने के लिए, दो टोलियों में विभक्त होकर, हिडिम्बा का आह्वान करते हुए दोनों छोरों से खींच खींचकर छिन्न-भिन्न कर देते हैं और 'शेषांश' के रूप में इस गूण के घास का कुछ अंश घर ले जाते हैं। ऐसी मान्यता है कि इसे घर के अंदर रखने से जादू-टोने, भूत-प्रेतादि अवांछनीय शक्तियों से रक्षा होती है।

जनश्रुति : किसी समय त्रिगर्त के उत्तर-पश्चिम व उत्तर-पूर्व के कुछ भाग पर निशाचर-राज हिडिम्ब का शासन था, जो भूले-भटके पथिकों की हत्या कर उन्हें खा जाया करता था। ऐसे नृशंस कार्य में उसकी बहन हिडिम्बा भी उसका साथ दिया करती थी। अज्ञातवास के समय एक बार पांडव अपनी माता कुंती के साथ इस निशाचर के क्षेत्र में पहुँचे तो हिडिम्ब उन्हें मारने के लिए आया। यहाँ महाबली भीम और हिडिम्ब में भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें हिडिम्ब मारा गया और हिडिम्बा ने भीम पर मोहित होकर उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा। माता कुंती और भाई युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर भीम ने हिडिम्बा के साथ गंधर्व विवाह कर लिया। तत्पश्चात् हिडिम्बा ने विशाल रूप धारण कर कुंती और पांडवों को अपने कंधों पर बिठाकर, हिमालय की विभिन्न पर्वतशृंखलाओं को लाँघकर कुल्लू जनपद की उत्तर दिशा में स्थित हेमकूट पर्वत पर स्थित व्यास ऋषि के आश्रम *व्यास-कुंड* के निकट पहुँचाया। वहाँ हिडिम्बा ने भीम के सान्निध्य में एक वर्ष का समय व्यतीत किया, जिससे उसे घटोत्कच नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

पांडवों और व्यास ऋषि के सान्निध्य में रहने के कारण हिडिम्बा और घटोत्कच की राक्षसीवृत्ति छूट गई और वे ऋषि-मुनियों एवं ब्राह्मणों को संरक्षण देने में सदैव तत्पर रहने लगे। पांडवों के पांचाल प्रदेश की ओर प्रस्थान करने के पश्चात् हिडिम्बा मनाली के गाँव ढूँगरी की एक गुफा में रहने लगी। एक बार वह जिंदौड़ गाँव के सामने व्यास नदी के पास काईस गाँव में अपनी सहेली भागासिद्ध देवी के पास रहने आई। उसे वह स्थान बहुत भाया और उसने वहीं रहने का मन बना लिया। भागासिद्ध को यह बात अच्छी नहीं लगी। एक दिन दोनों देवियाँ बालिकाओं के रूप में काईस सेरी के मध्य लगे अखरोट के वृक्ष में झूला डालकर झूलने लगीं। जब हिडिम्बा झूला झूल रही थी तो भागासिद्ध ने पीछे से इतनी ज़ोर से धक्का दिया कि हिडिम्बा व्यास नदी के दूसरी ओर जौभ नामक घास से भरी ढलानदार चरागाह में जा गिरी। जौभ का सहारा लेकर वह उठी और वहाँ से कुछ ऊपर जाकर उसने खिचड़ी बनाई और उसे एक किलटे में डालकर आगे कदम बढ़ाने लगी तो उसका किलटा नीचे से फट गया और सारी खिचड़ी गोलाकार में धरती पर गिर गई। यह स्थान आज भी *खिचड़ी-फाट* के नाम से जाना जाता है। इसी स्थान पर देवी ने अपना वास बनाया।

हुरंग नारायण

गाँव : दराल, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : दराल।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर गाँव के दक्षिण में थोड़ी दूरी पर खेतों के मध्य स्थित है। मंदिर की छत के चारों ओर लकड़ी की लम्बाकार झालरें तथा लघु कलशों से सुसज्जित 'बदोर' लगा है। यहीं मंदिर के सामने देवता का देशज शैली में बना भंडार है। पास में ही एक लघु मौढ़ (शरणशाला) है, जिसमें लोग कार्यक्रम के समय धूप और वर्षा से बचाव हेतु बैठते हैं।
शाखा मंदिर : डमचीण।
अधिकार क्षेत्र : दराल, डमचीण, प्राहड़ी, नेरी, बगाणी।
प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, काईथ, भंडारी व कठियाला की समिति।
न्याय प्रणाली : 'पूछ, गैटी, पोगै, मलोही' द्वारा।
पूजा : मंदिर में प्रतिदिन पूजा नहीं होती, केवल मेले-त्योहार आदि विशेष अवसरों पर ही जब रथ को सजाया जाता है, प्रातः व सायं दोनों समय घंटी, धड़छ और वाद्य-यंत्रों के साथ उतने दिनों तक पूजा होती है, जितने दिन रथ सजा रहता है। देऊ भडारिना (रथ को भंडार में रखना) के बाद पूजा का निषेध है।
रथ : दो अर्गलाओं युक्त फेटा।
मोहरे : उन्नीस। इनमें से अठारह चाँदी के और एक अष्टधातु का है।
मेले-त्योहार : श्रावण मास में *ठडौर* मनाया जाता है। इसके लिए आयोजन दिवस का निर्धारण देवता द्वारा किया जाता है। इस दिन सबको खीर खिलाई जाती है। माघ मास की संक्रांति को दो दिवसीय *कौलू* मेला लगता है। फाल्गुन मास की संक्रांति को *फागली* होती है। इस अवसर पर मेले का मुख्य आकर्षण देऊ-खेल होता है। इनके अतिरिक्त *जौग* और *काहिका* ऐसे उत्सव हैं, जो देवता के कहने पर कभी-कभार मनाए जाते हैं। *जौग* तब मनाया जाता है जब गाँव व देवक्षेत्र में आसुरी शक्तियों और भूत-प्रेतों का प्रभाव बढ़ रहा हो। इसके लिए देवता द्वारा दिन निर्धारित किया जाता है। इस दिन देवता अन्य देवताओं के साथ मिलकर दुष्ट शक्तियों को *जौग रै किलटे* (किलटा विशेष) में डाल कर तथा बलि हेतु मेढ़े को ले जाकर सीमा से बाहर छोड़ आता है और क्षेत्र को अपने सुरक्षा घेरे में ले लेता है। *काहिका* उत्सव तब आयोजित होता है जब देव-क्षेत्र में कोई पापाचार हुआ हो। यह *काहिका* (नरमेध यज्ञ) पाप का प्रायश्चित्त करने के उद्देश्य से ही किया जाता है।
जनश्रुति : एक बार आकाश में विचरण कर रहे पाँच देवी-देवता फोज़ल घाटी के रदार क्षेत्र (जिसे अरदार भी कहते हैं) का मनोरम दृश्य देख कर यहाँ उतर आए। इनमें चार देवता नारायण-मेहा, हुरंग नारायण-दराल, हरि नारायण-काथी, विष्णु-दुआड़ा तथा एक देवी ज्वाला-फोज़ल थी। ये पाँचों भाई-बहन गगन से उतर कर अरदार जोत में एक बड़ी शिला पर प्रकट हुए। उन्होंने इस शिला पर सर्वप्रथम *शांद यज्ञ* (शांति यज्ञ) किया, जिसके चिह्न आज भी इस पर देखे जा सकते हैं। इसके पश्चात् वे सभी अपना-अपना स्थान ढूँढने इधर-उधर निकल पड़े। इनमें से एक नारायण को दराल क्षेत्र पसंद आया, किन्तु वहाँ पर हुरंग गढ़ में रहनेवाले गढ़िये ठाकुर का राज था। वह बहुत अत्याचारी था। उसमें और नारायण में क्षेत्र पर अधिकार के लिए युद्ध हुआ। नारायण ने ठाकुर की

शक्ति-परीक्षा के लिए उसे एक विशाल शिला को सिर पर उठाने को कहा, परन्तु ठाकुर उसे उठा न पाया। तब नारायण ने शिला को पीठ पर उठाने को कहा। जैसे ही ठाकुर ने शिला को पीठ पर उठाया, वैसे ही नारायण ने उसे उसी शिला के नीचे दबा दिया। गढ़िये ठाकुर के अत्याचार से मुक्ति दिलाने के कारण गाँव-वासियों ने नारायण देवता को ग्राम-देवता के रूप में मान्यता दी। हुरंग गढ़ को ध्वस्त करने के कारण इसे हुरंग नारायण कहा जाने लगा।

अन्य सूचना : हुरंग नारायण के पास *वृष्टि शक्ति* को छोड़कर अन्य बहुत-सी दिव्य शक्तियाँ थीं। अतः वह इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए अठारह करड़ू के स्थान नगर में स्थित जगती पट्ट में गया। वहाँ से अठारह करडुओं का आशीर्वाद लेकर वह तप के लिए चंद्रखणी पर्वत गया। लम्बे तप के पश्चात् वहाँ उसकी मुलाकात वासुकि नाग से हुई। वासुकि ने उसे रोहतांग के सरोवर में रहनेवाली जल-देवियों से मिलने का परामर्श दिया। इन देवियों को स्थानीय बोली में *लौउणे* कहा जाता है। जिस सरोवर में ये देवियाँ वास करती थीं उसकी सुरक्षा अठारह करडुओं में से एक, जंबलू देवता करता था। जगती पट्ट में दिए वचनानुसार उसने नारायण को कुछ समय के लिए सरोवर का पहरा देने का कार्य सौंप दिया। तब नारायण ने जंबलू का भेस धारण कर सरोवर का पहरा देना शुरू किया। कुछ समय बाद नारायण ने अपने तप के बल पर इन सभी जल-देवियों को अपने नियंत्रण में कर, अपने साथ चलने का आग्रह किया। देवियों ने कहा कि वे देवराज इंद्र की अनुमति के बिना उसके साथ नहीं जा सकतीं। तब नारायण ने रोहतांग में ही तप करना शुरू किया, जिससे इंद्र देव का सिंहासन गर्म होने लगा। इसका कारण जानने के लिए नारायण के समक्ष इंद्र देव उपस्थित हुए। नारायण ने सारी घटना बता कर देवियों को अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी। इन्द्र की आज्ञा पाकर देवियाँ नारायण देवता के साथ आ गईं। इस प्रकार उसे वृष्टि की शक्तियाँ (लौउणे) प्राप्त हो गईं।

एक बार कुल्लू में अकाल पड़ गया। राजा ने सभी देवताओं के गूरों की सभा बुलाई और उनसे पूछा कि वर्षा कब होगी। राजा ने घोषणा की कि जो गूर सही भविष्यवाणी करेगा उसे राजकोष से एक बहुमूल्य मोहरा दिया जाएगा और जिनकी वाणी ठीक नहीं निकलेगी उन्हें दंडित किया जाएगा। दंड के भय से किसी भी गूर में देवशक्ति का प्रवेश नहीं हो पाया। इसके कारण कोई भी भविष्यवाणी नहीं कर सका। जब दराल के हुरंग नारायण की बारी आई तो उसी समय राजा को देव-खेल आ गई और उसने कहा कि आधी रात को वर्षा होगी। ठीक आधी रात से वर्षा आरम्भ होकर सात दिनों तक होती रही, जिस कारण लग घाटी से बहनेवाली नदी में इतनी बाढ़ आई कि राजा का महल उसकी चपेट में आने लगा। राजा ने पुनः देव-सभा बुलाई। पता चला कि यह वर्षा दराल के हुरंग नारायण की शक्ति से हुई है, लेकिन वचन के अनुसार राजकोष से मोहरा न देने के कारण वर्षा थम नहीं रही है। तब राजा ने कहा कि यदि वर्षा थम जाए तो उसे मोहरा अवश्य दिया जाएगा। देवकृपा से वर्षा तो थम गई, लेकिन राजा ने पुनः अपना वचन नहीं निभाया। देवदोष से राजमहल में सात दिनों तक भूकम्प के झटके अनुभव किए जाते रहे। तब देवता के चमत्कार के आगे नतमस्तक होकर राजा ने हुरंग नारायण को मोहरा भेंट किया और साथ में उसे दशहरे में आने पर सुलतानपुर राजमहल में अस्थाई शिविर लगाने के लिए भी स्थान प्रदान किया।

हुरगू नारायण

गाँव : गदियाड़ा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : जोंगा।
मंदिर : गदियाड़ा।
भंडार : गदियाड़ा में भ्रांडी-आगे स्थान पर।
स्थापत्य : देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी छत पर पौट (अनघड़े स्लेट) लगे हैं।



शाखा मंदिर : भूमतीर व टंडारी गाँव में।
अधिकार क्षेत्र : डुघीलग, महाराजा तथा तारापुर कोठियाँ।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय प्रणाली : देव-रथ के माध्यम से तथा गूर द्वारा 'मलोही' डालकर।
पूजा : केवल श्रावण, मार्गशीर्ष और फाल्गुन मास की संक्रांतियों को 'घोंडी-धौड़छ' के साथ पूजा होती है।
रथ : दो अर्गलाओं वाला खड़ा रथ, जिसके चारों ओर मोहरे सज्जित होते हैं। रथ पहले जोंगा, टंडारी और गदियाड़ा में देवता की इच्छानुसार रखा जाता था। जब से जोंगा में अलग रथ बना तब से मूल रथ अधिकतर गदियाड़ा में ही रहता है।
मोहरे : ग्यारह। इनमें मुख्य मोहरा अष्टधातु का है।
मेले-त्योहार : फाल्गुन व श्रावण में *जाच*। इस दिन देव सौह में देऊखेल होती है। देवता को गेहूँ के आटे के सिड्डू का चरुआ (चरु) भोग के रूप में चढ़ाया जाता है और लोगों को इसी का भोज खिलाया जाता है। श्रद्धालु इस दिन देवता की चाकरी (देवता के पास उपस्थिति व सेवा) करते हैं। देवता को मान (बकरे, मेढ़ की बलि) भी दिया जाता है। वैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू* मनाया जाता है।
जनश्रुति : देखें-हुरगू नारायण, गाँव भूमतीर, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

हुरगू नारायण

गाँव : जोंगा, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जोंगा।
स्थापत्य : काठकुणी विधि से देशज शैली में बना ढाई मंज़िल का मंदिर। इसकी चारों ओर को ढलवाँ छत पर स्लेटें लगी हैं। दूसरी मंज़िल में आधा आवरणयुक्त बरामदा है। इसी में देवता का भंडार है।
अधिकार क्षेत्र : बल्ह पंचायत के कुछ गाँव, महाराजा कोठी के कुछ गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में गूर व पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर, रथ, पोगले व लड्डू डालकर।
पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल प्रत्येक मास की संक्रांति को पूजा होती है। विशेष अवसरों पर जब देवता रथ पर सज्जित होकर निकलता है तो प्रातः-सायं रथ की पूजा होती है।
रथ : आरम्भ में हुरगू नारायण जोंगा, टंडारी और गदियाड़ा और भूमतीर का संयुक्त रथ होता था जो विशेष अवसरों पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता था परन्तु कालांतर में पुराना रथ गदियाड़ा में ही रखा जाने लगा और जोंगा में देवता का नया खड़ा रथ बनाया गया जो गुंबदाकार छत्र वाला है।
मोहरे : नौ। मूल मोहरा अष्टधातु का तथा आठ चाँदी के।
मेले-त्योहार : फाल्गुन में फागली, श्रावण में शाऊण जाच। मार्गशीर्ष से अपनी हार के दौरे पर जाता है।
जनश्रुति : देखें - हुरगू नारायण, भूमतीर की जनश्रुति।

हुरगू नारायण

गाँव : भूमतीर, **तहसील :** कुल्लू।
मूल स्थान : जोंगा।
मंदिर एवं भंडार : भूमतीर।

स्थापत्य : साढ़े तीन मंज़िल का पहाड़ी शैली में बना मंदिर जिसकी दो मंज़िलों में केवल दीवारें खड़ी हैं और तीसरी मंज़िल में बरामदा है। मुख्य द्वार धरातल मंज़िल में है। बाकी मंज़िलों के लिए रास्ता अंदर से ही है। देवता का भंडार भी इसी मंदिर में है, जहाँ देवता के मोहरे और गहने रखे जाते हैं। देवता का चिड़ग (रथ का ढाँचा) गाँव फलाणी के डेहरे (देवधर) में रहता है।

शाखा मंदिर : गदियाड़ा व टंडारी गाँव में।

अधिकार क्षेत्र : भूमतीर, बालकशो, ज़िआणी, समीरग व डुघीलग, महाराजा तथा तारापुर कोठियाँ।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से।

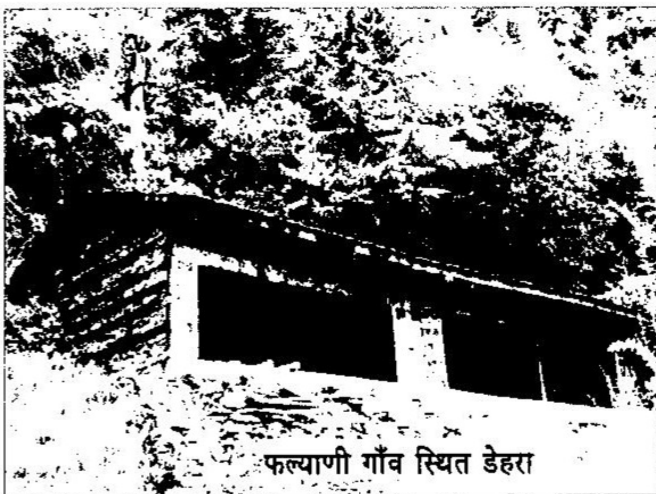
पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : खड़ा, जिसे उत्सवों के अवसर पर रंग-बिरंगे वस्त्रों और फूलों से सजाया जाता है। रथ में सबसे ऊपर अष्टधातु निर्मित मुख्य मोहरे तथा उसके नीचे अन्य मोहरों को सजाया जाता है।

मोहरे : नौ।

मेले-त्योहार : *शौयरी उत्सव,* जिसे कभी कटेलर जाति के लोग ही मनाते थे, परन्तु अब सभी गाँव वाले मनाने लगे हैं।

जनश्रुति : लगभग 700-800 वर्ष पूर्व जिन्दू नाम का वयोवृद्ध व्यक्ति मंडी राज्य से नमक लाने गया। किलटे में नमक लाते समय पाणीदुआर नामक स्थान पर जब वह अपनी थकान दूर करने के लिए विश्राम करने को रुका तो वहाँ उसे एक बालक मिला, जो उसके किलटे में सवार होकर उसके साथ कुल्लू आने की ज़िद्द करने लगा। परन्तु वृद्ध ने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा कि वह उसे साथ नहीं ले जा सकता, क्योंकि उसके पास किलटे में नमक भरा है। बालक के बार-बार कहने पर वह उसे साथ ले जाने के लिए तैयार हो गया। जिन्दू जब वहाँ से चलने लगा तो वह बालक उसे कहीं भी नज़र नहीं आया। उसने पीठ में किलटा उठाया और कुल्लू की ओर चल पड़ा। थकान के कारण वह जोंगा गाँव पहुँच कर देवदार वृक्ष के सूखे तने पर किलटा रखकर पास ही विश्राम करने के लिए रुका।



फल्याणी गाँव स्थित डेहरा

कुछ देर बाद जब वह किलटा उठाने लगा तो वह टस से मस न हुआ। उसे वहीं छोड़कर वह अपने घर पहुँचा और अपनी पत्नी को सारी बात बताई। उसकी पत्नी ने अनुमान लगाया कि ज़रूर किसी देवता की शक्ति से ऐसा हुआ होगा। वे दोनों किलटे के पास पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे। दैवयोग से उसी समय समीप से जाती एक महिला को दृष्टांत हुआ और उसने जिंदू से कहा कि उसके किलटे में मण्डी क्षेत्र से हुरगू नारायण आया है और जोंगा में बसना चाहता है। जिस सूखे तने पर किलटा रखा गया था, वहीं उसने देवता की स्थापना कर दी।

मान्यता है कि देवता की कृपा से वह सूखा वृक्ष पुनः हरा-भरा हो गया। देवता के इस चमत्कार को देखकर अन्य लोगों में भी देवता के प्रति आस्था जागी। उस समय उस स्थान पर किसी राक्षस का राज था। देवता ने उसे समाप्त कर वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित किया। अपने अधिकार क्षेत्र को बढ़ाने के उद्देश्य से उसने वहाँ से तीर छोड़े। ये तीर जहाँ-जहाँ गिरे, वे स्थान देवता के अधिकार क्षेत्र में आ गए। ये तीर कोठी महाराजा के शकोहर, मलाणा, बड़ाग्राँ आदि कई स्थानों पर पड़े। इस प्रकार देवता की मान्यता बढ़ती गई।

एक बार देवता कुल्लू की पीपल जात्रा में

आया। यहाँ उसकी भेंट देवी भागासिद्ध से हुई। देवी ने हुरगू नारायण के सामने विवाह का प्रस्ताव रख कर उसे लग-घाटी में निवास करने का निमंत्रण दिया। दोनों चलते-चलते लुदरू नामक स्थान पर पहुँचे और वहाँ बैठकर जुआ-पासा खेलने लगे। इस खेल में देवी ने हाड़का (हड्डी) फेंका और देवता ने लोहे की छड़। हाड़का देखकर हुरगू ने भागासिद्ध को नीच जाति का समझा और वह उसे वहीं छोड़कर भागता हुआ गदियाड़ा पहुँचा। वहाँ नाथों का फूलों का बाग था। देवता ने दिल्ली दरबार से वापसी पर बंटवारे में मिले पानी के कलश और आग के उपले को बाग की दीवार पर रख दिया और स्वयं फूल तोड़ने में व्यस्त हो गया। इसी बीच *पीपल जात्रा* से वापिस आ रही देवी फुंगणी, जिसे हुरगू नारायण की बड़ी बहन माना जाता है, ने चुपके से जल का कलश उठा लिया और तिऊन पहुँच गई। उधर देवता ने जब देखा कि कलश गायब है तो उसे नाथों पर संदेह हुआ और क्रुद्ध होकर उसने क्षेत्र की समस्त नाथ जाति का नाश कर दिया। परन्तु कुछ काल बाद जब उसे सच्चाई मालूम हुई तो उसने देवी से कलश वापिस माँगा। उसने यह कहकर कि यह उसे विरासत में मिला है, कलश नहीं लौटाया। परन्तु यह आश्वासन दिया कि अकाल पड़ने पर यदि मुझे स्मरण करोगे तो मैं कभी आपको निराश नहीं करूँगी। अकाल की स्थिति से निपटने के लिए आज भी विधि-विधान से देवी की अर्चना की जाती है।

हुरगू नारायण के गदियाड़ा में आने से लोगों के अनेक कष्ट दूर हो गए। लोगों ने यहाँ भी उसके मंदिर का निर्माण किया और उसकी पूजा होने लगी। कहा जाता है कि किसी समय कुल्लू का तत्कालीन राजा लकड़ी के लट्ठे लवारघाट नामक स्थान पर रखवाता तो शाम तक वे गदियाड़ा पहुँच जाते थे। यह कार्य किसी स्त्री द्वारा किया जाता था। जब राजा के सेवकों को इस बात का पता चला तो उन्होंने राजा को सारी बात बताई। राजा स्वयं उस स्त्री को देखने गदियाड़ा पहुँचा। उसके वहाँ पहुँचते ही उस स्त्री ने कुछ चमत्कार दिखाए। राजा ने उससे कहा कि वह एक रुपए का सिक्का ऊपर फेंकेगा। यदि वह उसे ऊपर ही स्थिर कर देगी तो राजा को विश्वास हो जाएगा कि वह कोई देव रूप है, अन्यथा उसके स्तन काटकर उसका हार बनाएगा। ऐसा कहते ही उसने सिक्का ऊपर फेंका तो वह वहीं स्थिर हो गया। तब राजा ने प्रभावित होकर देवता के निमित्त लकड़ी के चार स्तम्भ गदियाड़ा पहुँचाए, जो आज भी गाँव में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार देवता ने कई स्थानों पर जाकर अपने चमत्कारों से वहाँ की जनता को प्रभावित किया और अपना वर्चस्व स्थापित किया। वर्तमान में हुरगू नारायण डुघीलग, महाराजा और तारापुर की तीन कोठियों का स्वामी है।





मनाली खंड

अंबल देवता

गाँव : बशकौला, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : गाँव खरोड़।
मंदिर : बशकौला।
भंडार : बशकौला, चचोगी और नशाला गाँव। बशकौला



में दो मंज़िल का भंडार है। इसकी धरातल मंज़िल में सामने दो प्रवेश द्वार हैं। ऊपर की मंज़िल के लिए रास्ता भीतर से ही है। इस मंज़िल में चौतरफा बरामदा है। बरामदे का कुछ भाग लकड़ी के तख्तों से पूरा ढका है और सामने तथा दाईं ओर का निचला भाग आवरणयुक्त है और ऊपर विणगणू (झरोखे) बने हैं। मंदिर परिसर में जोगिनी की डेहरी भी है।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का एक कक्षीय मंदिर है। इसका प्रवेश द्वार पूर्वाभिमुख है। मंदिर की छत बरामदे के काष्ठ स्तंभों पर आधारित है, जो स्लेटों से आच्छादित है। स्तंभों के निचले भाग में लकड़ी का जंगला लगा है। छत के चारों ओर बहिर्निस्सृत भाग में काष्ठ निर्मित गिल्लियों की अवलि दर्शनीय है।

अधिकार क्षेत्र : केवल बशकौला गाँव।
प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।
न्याय : देवता के गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से तथा मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : ई. सन् 1905 तक देवता का 'करडू' होता था। अब फेंटा रथ है। इसमें कुल बारह मोहरे सजाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त रथ में राधा-कृष्ण की अष्टधातु की मूर्ति और तीन कलश भी शोभित होते हैं।

मोहरे : बारह। इनमें से मुख्य मोहरा अष्टधातु का तथा शेष रजतनिर्मित हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास में चार दिवसीय कटासणी मेला लगता है। इस मेले में धुंबल नाग हलाण तथा वीरनाथ दचाणी भी शामिल होते हैं। हर तीसरे वर्ष फाल्गुन मास की एकादशी को फागली उत्सव का आयोजन होता है।

जनश्रुति : कदाचित् गाँव खरोड़ में एक विधवा अपने बच्चे के साथ रहती थी। उस स्त्री को अपने कोदे (कोद्रव) के खेत में काम करते समय एक मोहरा मिला। उसने मोहरा घर लाकर अन्न के बक्से में छिपा दिया। दिन के समय जब स्त्री बच्चे को घर पर छोड़कर काम करने खेत में जाया करती थी तो कहते हैं कि उस बच्चे के साथ देवता भी बच्चे का रूप धारण करके खेलता था। एक बार गाँव में भयंकर अकाल पड़ा। पशु-पक्षी, मनुष्य भूख से मरने लगे। तब बचे हुए लोग गाँवों के अमीर परिवारों से अन्न माँग कर अपना गुज़ारा करने लगे। विधवा के घर में अनाज की खपत कम होने के कारण लोग उसके घर से भी अन्न माँगने लगे। लेकिन स्त्री यह देख कर आश्चर्यचकित थी कि लोग जितना अन्न ले जाते उसके भंडार में उससे दोगुना अन्न हो जाता। गाँव के लंबरदार का भंडार भी खाली हो गया, लेकिन विधवा का भंडार भरा का भरा था। तब लोग उसे डायन कहकर उस पर तरह-तरह के आरोप लगाने लगे। अकाल बढ़ता गया और एक समय ऐसा आया कि स्त्री और उसके बच्चे को

छोड़कर गाँव के सभी लोग मर गए। तब राक्षस गाँव में आकर उन मरे हुए लोगों और जानवरों को खाने लगे। इसी बीच उस स्त्री के घर एक राक्षस मेहमान बनकर आ गया। उसने स्त्री से घीऊ-खिचड़ी की माँग की। राक्षस के उलटे पैर देखकर औरत जान गई थी कि वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। अतः वह खिचड़ी पकाकर घी काढ़ने के लिए चूल्हे पर कड़ाही चढ़ाकर गाय दुहने के बहाने अपने बच्चे के साथ खुड़ में चली गई और चुपके से अपने साथ तौबरू (गंडासा) और मोहरे को बक्से से निकाल कर इसे एक किलटे डालकर ले गई। वह रात खुलने के इंतज़ार में थी ताकि कहीं दूसरे स्थान में जा सके। बहुत देर तक स्त्री के न लौटने पर राक्षस उसे ढूँढने लगा। पूरा घर छान लेने के बाद जब वह खुड़ में घुसने लगा तो स्त्री ने तौबरू से उस पर वार किया। उन दोनों में द्वन्द्व छिड़ गया और अंत में स्त्री ने राक्षस का वध कर दिया। इसी बीच चूल्हे पर रखे घी में आग लग जाने से घर भी जलकर राख हो गया। तब स्त्री अपने बच्चे और मोहरे को लेकर अपने मायके बशकौला गाँव की ओर चल पड़ी। चलते-चलते चचोगी गाँव पहुँच कर उसने आराम किया। विश्राम करने के बाद जब वह जाने लगी तो मोहरा भारी हो गया। तब मोहरे को वहीं छोड़कर वह बशकौला पहुँच गई। देवता की चचोगी गाँव में रहने की इच्छा जानकर मोहरे को चचोगी के देव भंडार में रखा गया और उस मोहरे के प्रतिरूप एक अन्य मोहरे को प्रतिष्ठित कर के बशकौल गाँव के मंदिर में स्थापित किया गया। देवता अंबल को राजा बलि भी कहा जाता है।

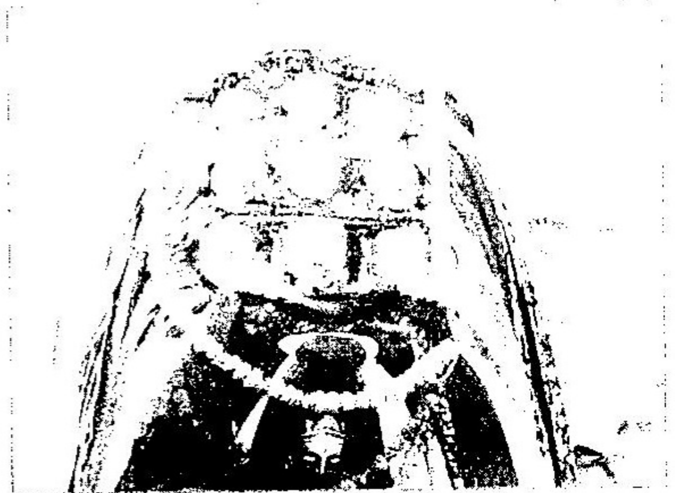
कंचन नाग-व्यास ऋषि-गौतम ऋषि

गाँव : गोशाल, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गोशाल।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित एक मंज़िल का दो ओर को ढलानदार छतवाला मंदिर।

शाखा मंदिर : गाँव सोलंग, सोलंग नाला में।



अधिकार क्षेत्र : 9 गाँव-गोशाल, शनाग, बुरूआ, मझाच, सोलंग, पलचान, कोठी, रूआड़ और कुलंग में देवता की 'मौढ़' (शिविर स्थान) है। प्रतिवर्ष *सराणी* मेले के अवसर पर देवता इन गाँवों में जाता है और अपना शिविर इन्हीं मौढ़ों में लगाता है।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, मढारी, कुंजीदार, जठाली व छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : विशेष अवसरों पर ही की जाती है।

रथ : फेटा।

मेले-त्योहार : श्रावण मास की पूर्णिमा को गोशाल गाँव में *सराणी जाच*। चार दिनों तक चलनेवाली इस जाच में देवता गोशाल से चल कर गाँव शनाग, बुरूआ, मझाच होता हुआ यहाँ की क्वारन विहाल स्थित *सराणी सौह* (मेला स्थल) में पहुँचता है। सराणी सोह नौ गाँवों के मध्य में है, जहाँ मेले का आयोजन होता है। इस अवसर पर बुरूआ का जमलू, वशिष्ठ गाँव का वशिष्ठ ऋषि तथा कुलंग गाँव का जमलू देवता और पराशर ऋषि ये कंचन नाग के अतिथि होते हैं। मेले में 'देऊ खेल' जैसा पारम्परिक देव-नृत्य होता है। अगले दिन देवता रूआड़, पलचान व कुलंग गाँव जाता है। तीसरे दिन कोठी गाँव और फिर सोलंग गाँव पहुँचता है। चौथे दिन सोलंग में मेला होता है। सोलंग गाँव में भी देवता का अपना स्थान है। पाँचवें दिन देवता वापिस गोशाल आता है।

भाद्रपद की संक्रांति को गोशाल में *शाऊणी जाच* का आयोजन होता है। इस अवसर का मुख्य आकर्षण देव-मिलन होता है। आश्विन मास में *गोशाल शौयरी* तथा फाल्गुन मास में *फागली* होती है।

जनश्रुति : गोशाल गाँव में तीन देवता-कंचन नाग, जिसे गाँव के नाम से गोशाली नाग भी कहते हैं, व्यास ऋषि तथा गौतम ऋषि एक ही रथ में स्थापित हैं। इनमें से मुख्य तो कंचन नाग है जो वासुकि नाग के गोशाल की कन्या के साथ विवाह से हुए 18 नागपुत्रों में से एक है। इसकी एक आँख 'धड़छ' से अंगारा गिरने के कारण फट गई थी, अतः वह कहीं न जा सका और उसने गोशाल में ही अपना स्थान बना लिया। इसे *काना नाग* भी कहते हैं।

व्यास ऋषि का मूल स्थान तो व्यास कुंड है, जहाँ ऋषि ने तप किया था। साथ लगते बुरूआ गाँव में देवता की पिंडी है, जबकि गोशाल में इसका मंदिर है।

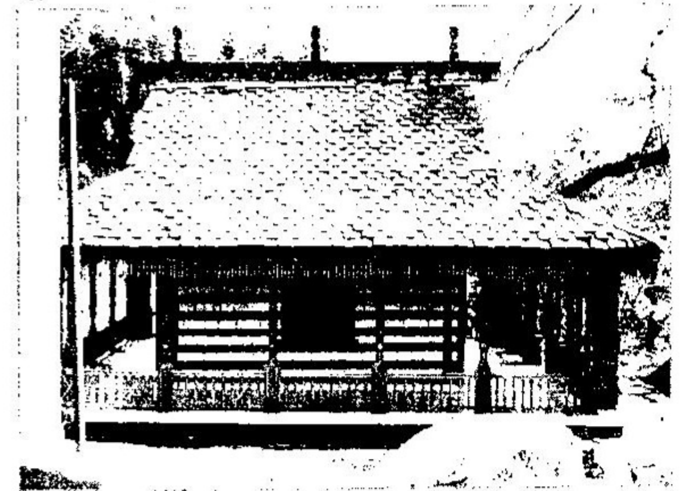
गौतम ऋषि लोंऊदू परिवार की ज़मीन से प्रकट हुआ। जब परिवार का मुखिया हल चला रहा था तो हल के फाल से एक पिंडी टकरा गई। जब इसे निकालने का प्रयास किया गया तो हलवाहक को खेल आई और उसने कहा कि वह गौतम ऋषि है। उसी समय उसका गूँगा बेटा भी बोलने लगा। इसे देवता का चमत्कार मानकर उसने अपनी ज़मीन देवता के नाम कर दी और देवता गोशाल में स्थापित हो गया।

अन्य सूचना : मकर संक्रांति के दिन एक विशेष अनुष्ठान के बाद देवता का पुजारी अपनी प्रजा की उपस्थिति में एक बारीक छाननी व जालीदार कपड़े से सूखी मिट्टी को छानता है, ताकि उसमें किसी प्रकार का तिनका, कंकर अथवा कूड़ा-करकट न रहे। इस मिट्टी को अच्छी तरह गूँथ कर देवता के बड़े ढोलनुमा कलश के बाहर लीपा जाता है, फिर पूजा-विधान के पश्चात् इसे मंदिर के भीतर रखा जाता है। लगभग चालीस दिन के बाद फाल्गुन मास के दूसरे शनिवार को फागली मेले के दिन इस कलश को बाहर निकाला जाता है। देवता का पुजारी देव-रीति के अनुसार धीरे-धीरे कलश की मिट्टी को हटाता है। मिट्टी में अनेक प्रकार की चीज़ें निकलती हैं, जैसे-फूल-पत्ते, हड्डी, पशु व मनुष्यों के बाल, अनाज का दाना या उसका फोकट आदि। स्थानीय लोगों की धारणा के अनुसार यदि पुरुष की दाढ़ी-मूँछ के बाल निकलें तो समझा जाता है कि पुरुषों की अधिक संख्या में मृत्यु होगी। फूल-पत्ते निकलें तो फल-फसल की भरपूर पैदावार होगी। यदि अन्न का दाना निकल आए तो धन-धान्य की कमी होगी और यदि फोकट निकले तो खूब अन्न पैदा होगा। पशुओं के बाल निकलें तो माना जाता है कि पशु-हानि होगी।

कार्तिक स्वामी

गाँव : खखनाल, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : खखनाल।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना एक मंज़िल का मंदिर। इसका मुख्य द्वार पश्चिम की ओर है। इसकी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है और ऊपर 'बदोर' लगा है।

अधिकार क्षेत्र : खखनाल।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार से।

रथ : खड़ा।

मोहरे : ग्यारह तथा छह सिर व बारह भुजाओं वाली पत्थर की एक मूर्ति जो मंदिर में ही स्थापित है।

मेले-त्योहार : वैशाख मास के शुक्लपक्ष की षष्ठी को अपने जन्मदिवस के अवसर पर देवता अपनी 'हार' की परिक्रमा करता है और उस ऊखल के पास जाकर श्रद्धांजलि अर्पित करता है जिसमें नवजात शिशुओं को पीती (स्पीति) के ठाकुर द्वारा मारा गया था। चैत्र मास की पूर्णिमा को *चचौहली* मेला लगता है।

जनश्रुति : कार्तिक स्वामी पहले खलीनी सौह नामक स्थान पर विष्णु भगवान् के साथ वास करता था। वहाँ से एक बार वह खखनाल के जंगल में नागाधार स्थान पर आया, जहाँ पहले से ही तक्षक नाग का वास था। कार्तिक स्वामी के आने पर तक्षक ने वह स्थान उसके लिए छोड़ दिया। नागाधार पर पानी का अभाव था, परन्तु अपनी शक्ति से देवता ने वहाँ पानी का चश्मा पैदा किया, जो आज भी मौजूद है। नागाधार से देवता खखनाल के ही बोग नामक स्थान पर आया, जहाँ पूरे क्षेत्र में धान की खेती होती थी और योगिनियों का वास था। कार्तिक स्वामी ने सात जोड़ी बैलों सहित उन्हें वहाँ से उठा कर सामनेवाले कलाथ गाँव के पहाड़ पर फेंक दिया और स्वयं वहाँ रहने लगा। उस समय खखनाल पर पीती (स्पीति) के एक अत्याचारी ठाकुर का राज था जो प्रसूता महिलाओं से उनके नवजात शिशुओं को छीनकर उन्हें ऊखल में कूट कर मरवा देता था और स्त्रियों को महल में बंदी बनाकर उनका दूध पीता था। ऐसा दुराचार देखकर कार्तिक स्वामी ने अपनी शक्ति से उस ठाकुर का समूल नाश कर, लोगों को उसके अत्याचारों से मुक्ति दिलाई। देवता के चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग इन्हें इष्टदेव के रूप में पूजने लगे। कालान्तर में उन्होंने एक मंदिर का निर्माण कर उसमें देवता की षण्मुखी मूर्ति की स्थापना की।

कार्तिक स्वामी : सामी देऊ

गाँव : सिमसा, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान एवं मंदिर : सिमसा।
शाखा मंदिर : गाँव छियाल।



भंडार : गाँव कन्याल। देवता के रथ के अतिरिक्त सारा साज़-सामान तथा मोहरे गाँव कन्याल में रहते हैं, जबकि रथ सिमसा मंदिर में रखा जाता है। रथ को कन्याल न ले जाने के पीछे यह धारणा है कि यहाँ की जोगिनियाँ बहुत शक्तिशाली हैं; अतः इस क्षेत्र के किसी भी देवता का रथ यहाँ आने को तैयार नहीं होता है। *मेले-फेरे* के दौरान यहाँ देवता के रथ के स्थान पर केवल करडू ही जाता है।

स्थापत्य : प्राचीन शैली में बना डेढ़ मंज़िल का दो ओर को ढलानदार छतवाला मंदिर जिसके प्रवेश-द्वार पर देव आकृतियाँ उकेरी गई हैं। मंदिर की घमीरी (गर्भगृह) में देवता की प्रस्तर-प्रतिमा स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव सिमसा, कन्याल, छियाल, मढ़ी तथा आधा गधेरनी गाँव।

प्रबंध : कारदार, गोंठीदार, पुजारी, गूर, जठाली, छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : पंचोपचार विधि से दैनिक पूजा। संक्रांति व पर्वों पर विशेष पूजा। बलिप्रथा नहीं है।

रथ : फेटा।

मोहरे : दस।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* तथा वैशाख सुदि पंचमी को *मुख्य मेला* होता है। पंचमी की पूर्व संध्या को गाँव कन्याल और छियाल के लोग मशालें लेकर देवता की सौह में एकत्र होते हैं। इस अवसर पर गाँव की महिलाएँ

विशेषकर ध्याइणियाँ (विवाहित बेटियाँ) देवता की चाकरी के लिए देव-प्रांगण में पासे (उपवास) रखती हैं। पंचमी के दिन ब्राह्ममुहूर्त में यहाँ *सौता औढ़ी रा मसौला* (गिरे हुए सात पेड़ों की सात लकड़ियों की मशाल) परम्परा का निर्वाह होता है। परम्परानुसार छियाल गाँव इस उपक्रम का प्रभारी होता है। गाँव के लोग रात के समय जंगल में जाकर गिरे हुए सात पेड़ों से एक-एक लकड़ी लाते हैं। फिर इन सात लकड़ियों को पहले से तैयार लगभग 10 फुट लम्बी और एक मीटर व्यास की विशाल मशाल में मिला दिया जाता है। अब इस मशाल को देवता कार्तिक स्वामी के छियाल स्थित मंदिर से बाजे-गाजे के साथ सिमसा ले जाया जाता है। उसे पहले से जल रहे 'जागरे' (अलाव) में डाल दिया जाता है। इस मशाल के दर्शन शुभ माने जाते हैं। इसके बारे में कहावत है कि यह सात व्रतों से भी अधिक फलदायी है-

सिमसा रा मसौला
शुरू री दी,
सौत ब्रतै केरना की।

दिन के समय सौह में एक बड़े मेले का आयोजन होता है, जिसमें आस-पास के अनेक देवी-देवता शामिल होते हैं।

जनश्रुति : एक बार सरीहटी नारायण, जिसका सिमसा के ठीक सामने व्यास नदी के पार अलेऊ में मंदिर है तथा देवता कार्तिक स्वामी के मध्य सिमसा में बसने के लिए विवाद हो गया। दोनों देवताओं ने इस स्थान पर आश्रम स्थापित करने की ठान ली। विवाद को बढ़ता देख शिव जी ने एक चाल चली। उसने कहा कि वे पास के सरौढ़ नाले से चाणा (अनाज छानने का पात्र) में मंदिर स्थल तक पानी लाएँ। दोनों में से जो एक भी बूँद गिराए बिना वहाँ तक पानी पहुँचाएगा, उसे वह स्थान प्राप्त होगा। इस शर्त में सरीहटी नारायण हार गया, जबकि कार्तिक स्वामी अपने तपोबल से पानी लाने में सफल हुआ। अपमानित होकर सरीहटी नारायण अलेऊ गाँव में बस गया, परन्तु अवसर पाकर एक बार उसने कार्तिक स्वामी पर पत्थरों व शस्त्रों से आक्रमण किया। कार्तिक स्वामी ने इनसे अपनी रक्षा तो की, परन्तु कोई प्रतिकार नहीं किया। सरीहटी नारायण द्वारा बरसाए गए पत्थरों से बने गड्ढे आज भी मंदिर के पीछे की पहाड़ी में देखे जा सकते हैं। इनमें से एक विशाल पत्थर मंदिर के आगे धान के खेत में गिरा था। कहते हैं कि एक बार इस गोल पत्थर को धकेल कर नीचे खाई में लुढ़का दिया गया था, जो अगली प्रातः पुनः उसी स्थान पर यथावत् पाया गया। आज इस पत्थर को *गोला* ही कहते हैं और इसकी पूजा भी होती है। आपसी विरोध के कारण ये दोनों देवता न तो कभी एक साथ यात्रा पर निकलते हैं और न ही साथ बैठते हैं। सरीहटी नारायण द्वारा युद्ध में प्रयोग किये गए शस्त्र आज भी यहाँ शिलारूप में विद्यमान हैं।

गौरी शंकर

गाँव : जगतसुख, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जगतसुख।



स्थापत्य : आठवीं-नवीं शताब्दी में बना यह मंदिर शिखर शैली का है। इसके निर्माण में चिकने पत्थरों का प्रयोग हुआ है। मंदिर के मुख्य द्वार पर लगे दो प्राचीन स्तम्भों पर बेल-बूटों की नक्काशी हुई है। इनके ऊपर पद्मासन में एक आकृति दिखाई गई है। मंदिर के शिखर से थोड़ी नीचे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति स्थापित है। मंदिर की दीवारों में पूर्व दिशा के आले में सूर्य, उत्तरी आले में ब्रह्मा जी और दक्षिण में विष्णु की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मंदिर में गणेश जी की बड़ी मूर्ति तथा वर्गाकार गर्भगृह में शिव भगवान् के सम्पूर्ण परिवार की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है। इसके सामने प्रतिष्ठित शिवलिंग पर स्वर्ण निर्मित नाग आभूषित है। मंदिर में वर्ष 2009 तक महिषासुरमर्दिनी की प्राचीन मूर्ति भी स्थापित थी। इसके बाईं ओर के एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में महिषासुर की पूँछ तथा दाईं ओर के हाथों में गदा और चक्र थे। दुर्भाग्य से यह मूर्ति चोरी हो गई है।

अधिकार क्षेत्र : जगतसुख।

प्रबंध : पुरातत्त्व सर्वेक्षण भारत सरकार के संरक्षण में। यहाँ पर गूर परम्परा नहीं है। पूजा आदि की व्यवस्था पुजारी करता है।

पूजा : दैनिक पूजा वैदिक विधि से होती है। श्रावण में पूरे मास विशेष पूजा होती है। इस दौरान गाँव के लोग प्रतिदिन यहाँ आकर भजन-कीर्तन करते हैं। प्रातः सायं शिव-शक्ति की पूजा करके महिलाएँ पिंडी पर दूध, विलपत्र व फलादि चढ़ाती हैं। इस अवसर पर चंदा इकट्ठा करके भंडारे का आयोजन होता है। मनोकामनाएँ पूर्ण होने पर कदाचित् कोई परिवार अकेले भी भंडारे का आयोजन करता है। गाँव में अगर कोई विपदा आती है तो कई दिनों तक मंदिर परिसर में यज्ञ का आयोजन होता है।

रथ : नहीं है।

जनश्रुति : आरंभ में यहाँ चार प्राचीन गाँव हुआ करते थे-अनास्तु, कौस्तु, जूरा एवं भनारा। महाभारत काल में यहाँ पांडवों के कुल पुरोहित धौम्य ऋषि का आश्रम था। अज्ञातवास के दौरान पांडव अपने कुल पुरोहित से मिलने यहाँ आए थे। उसी दौरान पांडवों ने यहाँ गौरी शंकर मंदिर की स्थापना की थी।

गौहरी देऊ

गाँव : पारशा, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : पारशा।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का स्लेटों से आच्छादित अधिक ढलानदार छत वाला मंदिर जिसके शिखर पर बदोर लगा है। इस पर तीन कलश स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : पारशा, शलीण, छियाल, कलाथ।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, गूर, मढारी, कठारी, जठाली व छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : संक्रांति व मेले-त्योहार के अवसर पर 'धड़छ' में बेठर धूप जलाकर पूजा की जाती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : कुल नौ। एक बड़ा, आठ छोटे।

मेले-त्योहार : बैसाख सुदि षष्ठी को छौठ तथा फाल्गुन मास में *फागली*।

जनश्रुति : देखें-गौहरी देऊ, गाँव थाच, तहसील कुल्लू की जनश्रुति।

चामुंडा

गाँव : नशाला, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नशाला।



स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर जिसकी छत ढलानदार है। देशज शैली में बना यह मंदिर चारों ओर से कैल के वड़े-बड़े वृक्षों से घिरा है।

अधिकार क्षेत्र : नशाला।

प्रबंध : कारदार, गूर, भंडारी, पुजारी, जठाली, जठेरा, ढौंसी, कुठियाला, नाथ, बडेही और खोलीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : देवी द्वारा गूर के माध्यम से।

पूजा : देवी की पूजा केवल विशेष अवसरों पर ही 'धड़छ' में बेठर जलाकर व शंख तथा घंटा ध्वनि के साथ की जाती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : पंद्रह।

मेले-त्योहार : बैसाख मास में 3 प्रविष्टे से तीन दिवसीय *बडोगी जाच*, पंद्रह-बीस वर्ष बाद *काहिका* मनाया जाता है।

जनश्रुति : चामुंडा माता को गाँव नगर स्थित त्रिपुरा सुंदरी की बहन माना जाता है। एक बार घर पर इन दोनों ने आपस में काम बाँट लिया। त्रिपुरा सुंदरी ने अपनी बहन को पानी ढोने का काम दिया और स्वयं घर की सफाई का ज़िम्मा ले लिया। चामुंडा पानी की खोज में नशाला गाँव पहुँची। वहाँ राणाओं के क्रूरतापूर्ण राज को देख कर माँ ने उनका समूल नाश किया और वहीं लुप्त हो गई। एक समय जब गाँव का लोहार खेत में हल चला रहा था तो उसे एक मोहरा मिला। वह उसे घर लाकर उसकी पूजा करने लगा। देवी की कृपा से उसका घर धन-धान्य से पूर्ण हो गया। यह देख कर गाँव के अन्य लोगों ने भी देवी की पूजा आरम्भ कर दी।

जंबलू

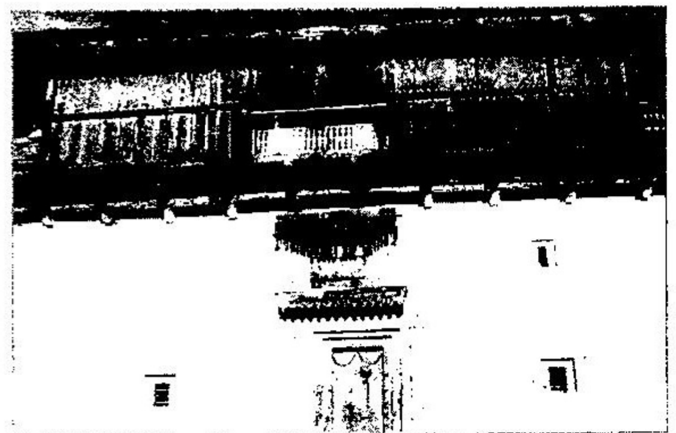
गाँव : छानी, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : छानी।

स्थापत्य : मंदिर नहीं है, प्राचीन देव-थड़ा स्थानीय प्रस्तर निर्मित था, जिसके स्थान पर वर्तमान में संगमरमर का थड़ा बनाया गया है। इस पर ही देवता की स्थापना है।

शाखा मंदिर : बशकौला, वंदल।

भंडार : छानी गाँव में वर्ष 1940 में काष्ठ-प्रस्तर का काठकुणी विधि से बना तीन मंज़िल का भंडार है। इसकी



तीसरी मंज़िल में आवरणयुक्त बरामदा है, जिसमें बीच-बीच में झरोखे बने हैं। बशकौला और वंदल के जंबलू देवता का भी यही भंडार है।

अधिकार क्षेत्र : छानी, जोगा, बागी, खाकी वेहड़, जटहैड़ कटराई एवं बशकौला गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति। किसी भी आयोजन के समय कारदार तत्काल ही समिति का गठन करता है। यह किसी नियम विशेष में नहीं बंधा होता और हर नए आयोजन में पिछली कमेटी को भंग करके स्वविवेक से नई कमेटी का गठन करता है। किसी अयोग्य सदस्य को अपदस्थ करने का अधिकार भी उसके पास होता है। प्रबंधन से जुड़ी इस सारी प्रक्रिया को *सरवरई* कहते हैं।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से। मंदिर के साथ बने देऊथड़े (चबूतरे) पर बैठते ही गूर में देवशक्ति का संचार होता है और उस समय वह अपना न्याय देता है। थड़े पर बैठने का अधिकार केवल गूर को होता है। इसे कोई अन्य छू भी नहीं सकता। यदि भूल से कोई इसे छू ले तो उसे देव-विधि से दंड दिया जाता है, परन्तु यह दंड ज़्यादा कठोर नहीं होता।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, इनके स्थान पर देवता के प्रतीक चिह्न -खंडा, धड़छ, सूरजपंखा और छड़ी हैं। किसी भी देवोत्सव में इन्हीं वस्तुओं को देवता का प्रतिनिधि माना जाता है।

मेले-त्योहार : वर्ष भर में यहाँ चार प्रमुख आयोजन होते हैं। चैत्र मास की संक्रांति को *कोन्ही फागली,* श्रावण मास में *शाउणी जाच,* मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को *वीर पुजाई* तथा फाल्गुन मास की एकादशी व द्वादशी को *जेठी फागली,* जिसमें दुआड़ा पंचायत के अंतर्गत आनेवाले मंझला दुआड़ा से देवकार्य आरम्भ होते हैं। यहाँ स्थित विष्णु मंदिर का कारदार गाँव में ही बने जंबलू देवता के थड़े से छानी गाँव के देवता के लिए देऊशेष भेजता है। इसके पश्चात् मुख्य आयोजन छानी गाँव के देव-मंदिर में होता है। *देऊ नृत्य* और *छिंज* (देव-राक्षस युद्ध) का आयोजन होता है। देवधुन पर लोग पारम्परिक नृत्य करते हैं।

जनश्रुति : छानी गाँव में जंबलू देवता का आगमन 500 वर्ष पूर्व हुआ था। उस समय यहाँ लगभग साठ ब्राह्मण परिवार रहते थे। इनमें से एक ब्राह्मण जगतसुख गाँव के जंबलू देव-मंदिर में चाकरी के लिए जाया करता था। कालांतर में वृद्धावस्था के कारण शरीर के जर्जर होने से उस ब्राह्मण ने देवता से प्रार्थना की कि उसे देवकार्य से मुक्त कर दिया जाए। ब्राह्मण की ऐसी दशा देखकर देवता द्रवित हो गया और उसके साथ छानी गाँव चलने की इच्छा व्यक्त की। ब्राह्मण जब जगतसुख से लौटने लगा तो जंबलू उसके शरीर में प्रविष्ट हो गया। घर पहुँचते ही ब्राह्मण को खेल आई और देवता ने उसके शरीर से निकल कर समीप स्थित विशाल देवदार-वृक्ष के नीचे अपना स्थान बना लिया।

वहाँ रहते हुए वह लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करने लगा, जिससे आस-पास के गाँववालों के मन में भी देवता के प्रति आस्था जाग गई।

जंबलू

गाँव : जगतसुख, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : जगतसुख।

स्थापत्य : पुराने मंदिर के स्थान पर वर्ष 2009 में देवदार की लकड़ी व पत्थर से नए मंदिर का निर्माण किया गया



है। एक मंज़िल का यह नवनिर्मित मंदिर टाले (आधी मंज़िल) से युक्त है। टाले को दो भागों में बाँटा गया है जो मुख भाग से त्रिभुजाकार और पृष्ठ भाग से आयताकार है। बरामदे के चारों ओर काष्ठ स्तम्भ खड़े हैं, जिन पर मंदिर की छत टिकी हुई है। इन्हीं स्तम्भों के साथ निचले भाग में जंगला लगा हुआ है। मंदिर की छत स्लेटों से ढकी है। छत के किनारों पर काष्ठ-निर्मित गिल्लियाँ लटकी हैं। काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। मंदिर के दाईं ओर देवता का 'थड़ा' है, जिस पर बैठ कर देवता अपना न्याय सुनाता है। मंदिर निर्माण से पूर्व यहाँ पाषाण पिंडी की पूजा हुआ करती थी। इसे अब 'थड़े' पर स्थापित किया गया है। देऊ थड़े और गूर को छूने की किसी को अनुमति नहीं है।

अधिकार क्षेत्र : जगतसुख और भनारा गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : मंदिर तथा थड़े के पास दैनिक तथा मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर पारम्परिक तरीके से पूजा होती है।

रथ : नहीं है। सर्वशक्तिमान होने के कारण इसे किसी की अधीनता स्वीकार्य नहीं। अतः कहीं जाने के लिए रथ की आवश्यकता नहीं पड़ती।

मोहरे : नहीं हैं। धड़छ, चाँदी के घोड़े, सूरज पंखे, घंटी देव चिह्न हैं।

मेले-त्योहार : भादों मास के प्रथम प्रविष्टे को सावन मेले का आयोजन होता है। यह चार दिनों तक चलता है। इस अवसर पर देवचिह्नों को मंदिर से निकाल कर देऊथड़े पर स्थापित किया जाता है। देवता का दूसरा उत्सव फाल्गुन मास में *फागली* नाम से मनाया जाता है। इस दिन भी देवचिह्नों को थड़े पर स्थापित किया जाता है और श्रद्धालु यहाँ आकर देवता से आशीर्वाद लेते हैं।

इन मेलों में गायत्री माता जगतसुख, शिरघण नाग भनारा और धौम्य ऋषि जगतसुख भी शामिल होते हैं।

जनश्रुति : स्थानीय लोग इसे भगवान शिव का गण मानते हैं और कैलास मानसरोवर से आया बताते हैं। भगवान शिव से जुड़ा होने के कारण इस देवता को जमलू महादेव के नाम से पुकारते हैं।

जंबलू

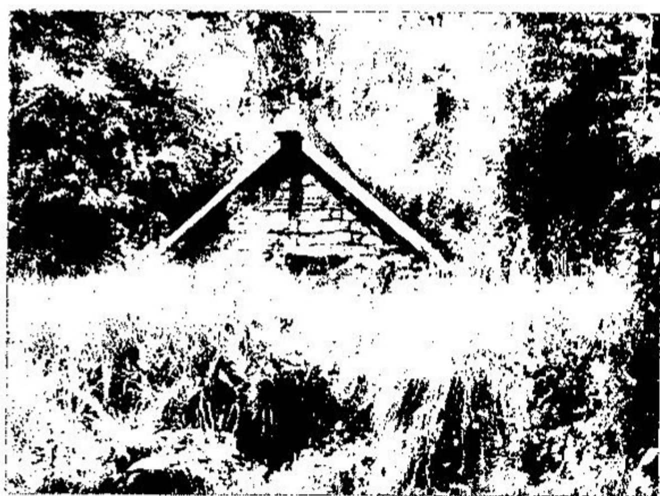
गाँव : बंदल, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : गाँव छानी।

मंदिर : बंदल।

भंडार : बंदल गाँव में दो भंडार हैं।

स्थापत्य : तराशे हुए पत्थरों तथा काष्ठ से बना एक



मंज़िल का मंदिर है। इसकी दो ओर को काफी ढलानदार छत है, जो तख्तों से ढकी है और शिखर पर बदोर लगा है। छत को समय-समय पर बदला जाता है, जबकि बदोर काफी जीर्ण-शीर्ण होने पर ही बदला जाता है। मंदिर में जंबलू के चिह्न स्थापित हैं। मंदिर से थोड़ी दूरी पर आयोजन स्थल है, जहाँ मेला लगता है। यहाँ काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का 'डेहरा' बना है जिसकी चारों ओर को ढलानदर छत स्लेटों से ढकी है। मेले के दौरान इसमें कार्यकर्ताओं के बैठने और भोजन आदि की व्यवस्था की जाती है।

अधिकार क्षेत्र : बंदल एवं आसपास का क्षेत्र।

प्रबंध : जंबलू गाँव छानी के कारदार द्वारा।

न्याय : मेलों के अवसर पर आए अन्य देवताओं के गूर द्वारा।

रथ : नहीं है।
मोहरे : देवता के प्रतीक चिह्न हैं।
मेले-त्योहार : आश्विन मास की संक्रांति को 'शौयरी' मेला लगता है। इस मेले में धुंबल नाग गाँव पीह और मंगाणा, देवता वीरनाथ गाँव कटराई, विष्णु भगवान गाँव दुआड़ा, देवता अंबल गाँव बशकौला और देवता वीरनाथ गाँव तराशी के देवरथ शामिल होते हैं। फाल्गुन मास में फागली का आयोजन होता है। इस अवसर पर पशुबलि देकर आसुरी शक्तियों को तृप्त करके गाँव से दूर भगा दिया जाता है।

वर्ष में एक बार जंबलू की विशेष पूजा होती है। जंबलू देऊ, गाँव छानी के भंडार से एक प्राचीन कड़ाही निकाली जाती है। इसे लेकर बशकौला के देव स्थल से होते हुए सीधी पहाड़ी चढ़ कर बंदल पहुँचते हैं। देवता के लिए कड़ाही में भोग तैयार करके चढ़या जाता है। इस आयोजन में छानी, बशकौला, बंदल और तराशी गाँव के देऊलू शामिल होते हैं।
जनश्रुति : दे.-जंबलू गाँव छानी की जनश्रुति। छानी गाँव के जंबलू की शक्तियों से प्रभावित हो कर स्थानीय लोगों ने बंदल गाँव में भी जंबलू देवता की स्थापना की।

जंबलू

गाँव : बड़ाग्राँ, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : मलाणा।
मंदिर : बड़ाग्राँ में बड़ोहला नामक स्थान पर।
भंडार : बड़ाग्राँ के कोटबेहड़ में।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का काफी प्राचीन मंदिर बड़ाग्राँ के शीर्ष पर बान, मोहरू, देवदार व कायल के जंगल के साथ लगते बड़ोहला नामक स्थान पर स्थित है। स्लेटों से ढकी मंदिर की छत के किनारों पर काष्ठ-झालरें शोभित हैं। मंदिर के प्राँगण में देवता का सिंहासन लोगों का श्रद्धेय स्थल है। यह मलाणा के जमलू देवता के प्रमुख बारह देऊघरों में से एक है।


भंडार

अधिकार क्षेत्र : बड़ाग्राँ, बड़ोहला, छानी, विहाल, सुंबली तथा सांखणी।
प्रबंध : कारदार, कठियाला, जठाली, कारकुनों की समिति।
न्याय प्रणाली : 'पूछ, कसम, पोगे, मलोही, गैटी' द्वारा। यदि कोई निर्दोष व्यक्ति दोषी को देवदंड के अतिरिक्त प्रताड़ित करता है तो उसे देवदोष लगता है, क्योंकि देवता जंबलू अपनी शरण में आए चोर व हत्यारों का भी रक्षक माना जाता है। सब कुछ देवता के हवाले छोड़ने पर देवता स्वयं ही दोषी व्यक्ति को दंड देता है।
पूजा : मंदिर में किसी मूर्ति व पिंडी की स्थापना न होने के कारण देवता के प्रतीक-चिह्नों की पूजा होती है। मंदिर में केवल मेले-त्योहारों के अवसर पर ही पूजा होती है। पूजा में मात्र वेठर धूप का प्रयोग किया जाता है। विशेष अवसरों पर पूरे देव-वाद्यों के साथ तथा सामान्य अवसरों पर 'घोंडी-धड़छ' से पूजा होती है।
रथ : नहीं है। कड़ाही को देवता का प्रतीक तथा कटार को निशान माना जाता है।
मोहरे : रथ न होने के कारण मोहरे भी नहीं हैं।
मेले-त्योहार : चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को *नवसंवत्सर* तथा इसी मास में नरोल की *फागली*, बैसाख मास की संक्रांति को *कोन्हा बिरशू*, ज्येष्ठ में कापू, भादों मास के चार से छह प्रविष्टे तक *शाऊणी जाच*, आश्विन मास में *शौयरी*, मार्गशीर्ष की पूर्णिमा को *वीर पजाई*, पौष में *दियाली*, माघ संक्रांति को *माघी* तथा फाल्गुन में *फागली*

मनाई जाती है। इनमें से *फागली* और तीन दिवसीय *शाऊणी जाच* को अधिक धूम-धाम से मनाने की परम्परा है। *फागली* में अन्य गाँवों के लोग तथा *शाऊणी जाच* में समीप के गाँवों के लोगों के अतिरिक्त दूर-दूर से देवता भी सम्मिलित होते हैं। यहाँ गूर न होने के कारण देऊ-खेल नहीं होती, लेकिन अन्य 'देऊकार' पारम्परिक तरीके से निभाए जाते हैं। इन दोनों मेलों के अतिरिक्त शेष उत्सवों में आस-पास के क्षेत्र के लोग तथा देवता शामिल नहीं होते, केवल देवता के कारकुन मंदिर में जा कर देवकार्य को करते हैं।

जनश्रुति : प्राचीन समय में बड़ाग्राँ गाँव का एक लुहार शेगली गाँव के देवता जंबलू का 'धौंसी' था। वह देवता के हर कार्यक्रम में धौंसा बजाकर देवता की चाकरी करता था। जब वह काफी बूढ़ा हो गया तो उसने एक बार देवकार्य को सकुशल निभा कर अंत में देवता के सिंहासन पर डाऊंड़ी (धौंसा बजाने की, आगे से गोल तथा पीछे से तराशी हुई सीधी छड़ी) रखकर देवता से क्षमा माँगते हुए कहा कि अब वह बूढ़ा हो गया है, अतः भविष्य में उसकी चाकरी नहीं कर सकता। इस प्रकार क्षमा याचना के बाद वह अपने घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में जब वह आराम करने बैठा तो उसे कंधे पर कोट के नीचे जकड़ी डाऊंड़ी कान से टकराती महसूस हुई। उसे आश्चर्य हुआ कि वह तो डाऊंड़ी को शेगली में देव सिंहासन पर छोड़ कर आया था, फिर यह उसके पास कैसे? उसे लगा कि शायद वह अभ्यासवश स्वयं ही डाऊंड़ी साथ उठाकर लाया हो। तब उसने देवता से क्षमा माँगते हुए डाऊंड़ी उसी स्थान पर छोड़ दी और स्वयं आगे चल पड़ा। कुछ दूर चलने के बाद जब वह दोबारा विश्राम करने बैठा तो डाऊंड़ी फिर उसके कान से टकराई। उसने एक बार फिर देवता से क्षमा माँगते हुए डाऊंड़ी वहीं छोड़ दी, लेकिन अगले विश्राम स्थल पर डाऊंड़ी पुनः उसके कंधे पर थी। अब इसमें देवेच्छा जान कर वह आगे चल पड़ा। गाँव पहुँचकर जब उसने इस चमत्कार के बारे में लोगों को बताया तो अचानक किसी व्यक्ति में देवशक्ति का प्रवेश हुआ। उसने कहा कि वह जंबलू देवता है और शेगली गाँव से लुहार के साथ आया है। बताया जाता है कि उस व्यक्ति ने देवावेश में वहाँ स्थित अन्य देवी के चार मंज़िल के भंडार की छत पर चढ़कर छलाँग लगा दी, जिससे खलियान में बिछा खड़ोट (लगभग चार इंच मोटा स्लेट) टूट गया। वहाँ से वह दौड़ता हुआ घाठे नाला नामक स्थान में गया और वहाँ नदी में स्नान करके जब वापिस आया तो उसने देवता की पूरी भारथा सुना दी। तब उस व्यक्ति को ही देवता का प्रथम गूर चुना गया। इसके बाद यहाँ कोई भी गूर नहीं बना। इस चमत्कार से प्रभावित होकर लोगों ने इसे ग्राम-देवता के रूप में स्वीकार किया।

जंबलू

गाँव : बशकौला, **तहसील :** मनाली।



मूल स्थान : गाँव छानी।

मंदिर : बशकौला।

भंडार : गाँव छानी में जंबलू देवता बशकौला, बंदल और छानी का संयुक्त भंडार है।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित मंदिर की दो ओर को ढलानदार छत तख्तों से ढकी है। छत को बर्फ़ से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इसे अधिक ढलानदार बनाया गया है। इसके शिखर पर बदोर लगा है। छत की समय-समय पर

मरम्मत होती है, जबकि वदार केवल जीर्ण-शीर्ण होने पर ही बदला जाता है। मंदिर के अतिरिक्त देवता का एक अन्य भवन है, जिसकी छत स्तम्भों पर टिकी है। यह चारों ओर से खुला है। यहाँ देव आयोजनों में कार्यकर्ताओं के बैठने और भोजन की व्यवस्था होती है।

अधिकार क्षेत्र : बशकौला और बंदल गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय : गूर के माध्यम से।

पूजा : केवल विशेष अवसरों पर पूजा होती है।

रथ : नहीं है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को फागली उत्सव का आयोजन होता है। इस अवसर पर आसुरी शक्तियों को तृप्त करने के लिए पशु बलि दी जाती है।

जनश्रुति : दे. जंबलू देवता, छानी की जनश्रुति।



जंबलू : बैड़ा देऊ

गाँव : शांगचर, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : मलाणा।

मंदिर एवं भंडार : शांगचर।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित लगभग सोलह फुट लम्बा तथा दस फुट चौड़ा यह मंदिर साढ़े तीन मंज़िल का है। इसमें काष्ठ पर नक्काशी हुई है। इसकी छत मोटी स्लेटों से ढकी है। मंदिर गाँव के मध्य में स्थित है और घनी आबादी के कारण लोगों के घर सटे हुए हैं। गाँव के सभी मकान ढाई मंज़िल से ऊँचे नहीं हैं, अतः मंदिर इनसे ऊँचा दिखता है। मंदिर के तोरण में लकड़ी की झालरें सुशोभित हैं।

अधिकार क्षेत्र : शांगचर व पकौट।

प्रबंध : कारदार, कठियाला, पुजारी, गूर की समिति।

न्याय : पूछ डालकर तथा 'गैटी' द्वारा।

पूजा : देवता का रथ न होने के कारण प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। देव यात्रा या मेले-त्योहारों के अवसर पर ब्राह्ममुहूर्त तथा सांध्य बेला में देवता के प्रतीक के पास बजंत्री द्वारा वाद्यों पर देव-धुन बजा कर पूजा होती है। इस समय धड़छ में धूप नहीं जलाया जाता। धड़छ केवल यात्रा के दौरान या पूछ के समय ही जला रहता है।

रथ : नहीं है। देवता के प्रतीक नसरवा (सुराही), कड़ाही और फलौहरी (ध्वजा) हैं। यात्रा में कड़ाही या फलौहरी ही देव-प्रतीक रूप में जाती है। इस दौरान अन्य देव प्रतीकों को भंडार से निकाल कर मौढ़ (स्थान विशेष) में अस्थाई रूप से रखा जाता है। इसे देख कर जाना जाता है कि या तो देवता यात्रा पर है या उसका कोई अन्य कार्यक्रम है।

मोहरे : रथ न होने के कारण मोहरे नहीं हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नव सम्वत्*। यह आयोजन दो दिवसीय होता है। *नव सम्वत्* की पूर्व संध्या को देव पूजा के बाद देवता के कारकुन देव सहित 'मौढ़' में चले जाते हैं और रात को वहीं रहते हैं। वे प्रातः होने

से पूर्व उठकर विशेष पकवान-गीचै, गड़ाणी तथा दाल-भात तैयार करते हैं। इन सभी खाद्य पदार्थों का पहले देवता को भोग लगाया जाता है और फिर इसे प्रसाद रूप में गाँव में बाँटा जाता है। इस दिन ब्राह्मण पहले देवता के पास फिर गाँव में घर-घर जाकर पौत्री (पत्री से वर्षफल) सुनाता है।

भादों मास की संक्रांति को शांगचर गाँव में *शाऊणी जाच* होती है। यह मेला पाँच दिनों तक मनाया जाता है। संक्रांति की शाम को देव-सौह में *जागरा* (देव यज्ञ) होता है। जागरे के लिए गाँव के हर घर से एक व्यक्ति मशाल लेकर आता है। देवता जंबलू जागरे में सभी दुष्ट शक्तियों (डाकिनी-शाकिनी, भूत-प्रेत) को घोघड़ धार जाने के लिए विवश करता है। जैसे ही वह उन्हें घोघड़ धार जाने का संकेत करता है वैसे ही एक मेढ़े को बलि स्वरूप ज़िन्दा ही जागरे में डालकर काटा जाता है। इसके साथ सभी व्यक्ति अपने हाथों में पकड़ी मशालों को भी जागरे में फेंक देते हैं। उस समय देव वाद्य बजाए जाते हैं और वहाँ उपस्थित सभी लोग ज़ोर-ज़ोर से *हुशहुशो* शब्द का उच्चारण करते हैं। यह सुनते ही गाँव के हर परिवार का एक व्यक्ति अपने मकान की छत पर चारों दिशाओं में सरसों के अभिमंत्रित दाने तथा चकमक पत्थर का चूरा फेंकता है और कहता है-*डायणी रोंडो घोघड़ धारा बे ज़ात* (हे डाकिनी-शाकिनी घोघड़ धार पर चली जाओ) और साथ में सरसों के दाने, भेखल की झाड़ी की शिखा तथा चकमक पत्थर का एक-एक कंकड़ छत के चारों कोनों में रखता है। लोक विश्वास है कि इससे घर पर डाकिनी-शाकिनी का प्रभाव नगण्य रहता है। इसी दिन देवता भंडार से निकल कर मौढ़ में चला जाता है और चार दिनों तक वहीं ठहरता है। इस मेले में क्षेत्र के अन्य देवता भी शामिल होते हैं। अतः उपस्थित सभी देवताओं के गूर संक्रांति के अगले दिन देव-सौह में 'देऊ खेल' करते हैं। मेले के अंतिम यानी पाँचवें दिन देवता जंबलू अतिथि देवताओं को विदा करने के बाद अपने मंदिर में वापिस लौटता है।

फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी व द्वादशी को देव-सौह के समीप *खणौणी* नामक स्थान में *फागली* उत्सव मनाया जाता है। इस दिन श्रद्धालुओं द्वारा यहाँ चाँदी के हाथी व घोड़े चढ़ाकर मन्नत माँगी जाती है। देवता जंबलू को *सूर* (कोदरे से निर्मित नशीला पेय), *बाड़ी* (आटे को पानी में घोल कर तैयार किया गया खाद्य) तथा *भात* का भोग लगाया जाता है। टिम्बर छातिका तथा टुंडी राक्षस की शादी की सालगिरह के रूप में *सांगरात* मनाई जाती है और इनके निमित्त मेढ़े की बलि दी जाती है। गूर के माध्यम से टुंडी राक्षस अपनी माँगें रखता है। देवता उसकी कम से कम माँगें मानते हैं। इस समय देवता के कारकुन 'धौड़छ' की विशेष सुरक्षा करते हैं। माना जाता है कि यदि टुंडी राक्षस धौड़छ पर कब्ज़ा करके उसे गिरा दे तो वह मनचाही बलि का अधिकारी हो जाता है।

चैत्र मास की संक्रांति को गाँव शांगचर में *जेठा बिरशू* मनाया जाता है। इस दिन गाँव की केवल महिलाएँ तथा धी-धियाइणें (विवाहित बेटियाँ) देवता के *नरोल* (छोटा मंदिर), जो गाँव के निम्न भाग में स्थित है, में जाकर रोट चढ़ाती हैं। नरोल में केवल इसी दिन विशेष पूजा होती है।

जनश्रुति : शांगचर गाँव का दासू नामक व्यक्ति प्रतिवर्ष मलाणा जा कर जमलू देवता की चाकरी करता था। जब वह बूढ़ा हुआ और उसे लगा कि वह अब देवता की चाकरी में असमर्थ है तब वह अपने दो पुत्रों को साथ लेकर *शाऊणी जाच* के अवसर पर देवता जमलू के पास गया। उसने प्रार्थना की कि वह अब बूढ़ा हो गया है, अतः चाकरी करने नहीं आ सकता, इसलिए भविष्य में उसके दोनों पुत्रों में से एक हर वर्ष चाकरी के लिए आया करेगा। यह सुनकर देवता ने कहा-यदि तू मेरे पास नहीं आ सकता तो मैं ही तेरे साथ चलता हूँ। यह सुनकर मलाणावासियों को बहुत गुस्सा आया, उन्होंने दासू को मारने की योजना बनाई। दासू को उसके धर्म भाई से इस षड्यंत्र का पता चला और वह मौका पाकर रातों-रात अपने दोनों पुत्रों के साथ मलाणा से निकल पड़ा। सुबह होने तक वे चंद्रखणी पर्वत पर पहुँचे। वहाँ वे थोड़ी देर

विश्राम करने के लिए रुके तो देखा सामने तीन व्यक्तियों के लिए भोजन पड़ा था। दासू ने मलाणावासियों पर संदेह करते हुए अपने बेटों को भोजन करने से रोका।

उसी समय एक मोनाल पक्षी आया और सारा भोजन खाकर उड़कर सामने के पेड़ पर जा बैठा। उसके पंखों की फड़फड़ाहट से चाँदी के सिक्कों की-सी खनक सुनकर दासू को आभास हो गया कि वह अवश्य ही देवता जमलू का रूप है। अतः उसने अपने बच्चों को चौकन्ने होकर यह देखने को कहा कि मोनाल उड़कर कहाँ बैठता है। मोनाल चंद्रखणी पर्वत से उड़कर शांगचर गाँव के साथ सिद्धपुर में जा बैठा। परंतु दासू पुत्रों को अधिक दूरी के कारण सिद्धपुर के बजाए वह स्थान *लामण-लाणै* प्रतीत हुआ। घर पहुँच कर उसी रात दासू को देवता ने स्वप्न में दर्शन देकर उसका मंदिर बनाने का आदेश दिया। दासू ने *लामण लाणै* नामक स्थान में मंदिर बनाना आरम्भ किया, लेकिन दिन में वह जितनी चिनाई करता, रात को उसे कोई गिरा जाता। इससे दासू को आभास हुआ कि देवता यहाँ नहीं रहना चाहता और वह सोच में पड़ गया कि मंदिर का निर्माण कहाँ किया जाए।

उसी समय उसके बड़े बेटे में देवशक्ति का प्रवेश हुआ और उसने कहा कि जहाँ-जहाँ मकड़ी के जाले बने होंगे वहाँ-वहाँ उसके स्थान होंगे। अगली सुबह रौऊणा, खणौणी और सिद्धपुर नामक स्थानों में जाले बने मिले। अतः रौऊणा में देवमंदिर व *सौह*, खणौणी में *नरोल* तथा सिद्धपुर में *चबूतरा* बनाया गया। दासू के बड़े बेटे ने गूर तथा छोटे बेटे ने कठियाला और पुजारी का पद सम्भाला। उस समय शांगचर में केवल दासू का परिवार ही रहता था। शांगचर के साथ गाँव पकौट है। दासू चाहता था कि इस गाँव के लोग भी जंबलू को मानें, लेकिन वे देवता गौहरी के भक्त थे, अतः उन्होंने देवता जंबलू को नहीं माना।

एक बार पकौट गाँववासियों की 120 भेड़ें ग्लेशियर में दब गईं। तब जंबलू देवता के गूर में देव-शक्ति का प्रवेश हुआ और उसने कहा कि यदि वे भविष्य में उसको मानेंगे तभी वह इस क्षति की पूर्ति करेगा। लोग इसके लिए सहमत हो गए जिससे ग्लेशियर हटाने पर एक भेड़ को छोड़ बाकी सभी भेड़ें जीवित प्राप्त हुईं। तब गूर ने कहा कि एक भेड़ की बलि ली गई है। इस चमत्कार को देखकर पकौट के लोगों में जंबलू देवता के प्रति आस्था जागी। धीरे-धीरे पकौट गाँव शांगचर गाँव के साथ मिल गया और दोनों गाँवों के लिए एक ही नाम शांगचर प्रचलित हो गया। पकौट में गौहरी देवता की मान्यता समाप्त होने के कारण वह रुष्ट होकर वहाँ से चला गया और उसने पारशा गाँव में जाकर अपना स्थान बनाया।

जगथम

गाँव : पनगाँ (मड़हांज, करोट, डेफरी, जोगिन, गुगीधार गाँवों का सामूहिक नाम), **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : बरशैणी (किन्नौर)।

मंदिर एवं भंडार : मड़हांज में।

शाखा मंदिर : जोगिन के नरायंडी नामक स्थान में।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर के स्थान पर वर्ष 2002 में काठकुणी शैली में 16थ्ग14थ् आकार के नए मंदिर का निर्माण किया गया, जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर में काष्ठ पर देवताओं और ऋषियों की आकृतियाँ उकेरी गई हैं। छत में चारों ओर छुनी-बाँगा (काष्ठ निर्मित झालरें) शोभायमान हैं।

अधिकार क्षेत्र : पनगाँ के पाँचों गाँव तथा दूसरी हार के गाँव रियाड़ा, मल्लाह व शारा।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, कठारी तथा अन्य कारकुनों की समिति।

न्याय प्रणाली : 'पूछ, गैटी, पोगै, गुए ग्राह' करके।

पूजा : मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर जब देवता का रथ पीडुआदा (पूर्णरूपेण सज्जित) होता है तब पुजारी 'धड़छ' में बेठर जला कर इसे बायें हाथ से वृत्ताकार घुमाता हुआ दायें हाथ से घोंडी (घंटी) बजाकर देवधुनों पर प्रातः व सायं पूजा करता है। अन्य सामान्य दिनों में यहाँ पूजा नहीं होती।

रथ : फेटा। शीर्ष पर वीण (कलाकृति युक्त चाँदी का पत्तर) तथा कलगी सज्जित है।

मोहरे : ग्यारह। इनमें से नौ बड़े और दो छोटे हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *जेठा बिरशू,* चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *देवता का जन्म दिन,* बैसाख मास की संक्रांति को *कौन्हा बिरशू*। यह मेला पाँच दिनों तक चलता है। प्रथम दिन देवताओं का मिलन होता है। इस अवसर पर देवता की ओर से भौती (भोज) दी जाती है। इस दिन 'देऊखेल' भी होती है। दूसरे दिन *बड़ी जाच* (बड़ा मेला), तीसरे दिन *माठी जाच* (छोटा मेला) और चौथे दिन *चुआई जाच* होती है। पाँचवें दिन *ग्राँ मेल़* अर्थात् ग्राम मिलन का कार्यक्रम होता है। भादों मास के बीस प्रविष्टे को *भाद्रू री बीह,* पौष मास की अमावस्या को *दियाल़ी* मनाई जाती है। *दियाल़ी* के दिन शाम होते ही घरों के आँगन में स्लेट पर शौली (बिरोजायुक्त लकड़ी) जलाकर प्रकाश किया जाता है। दूसरे दिन गाँव डेफरी और अन्य स्थानों से हारियान (प्रजाजन) ढोल-नगाड़ों की ध्वनि के साथ जीहरू/बाँडू (अश्लील गीत) गाते हुए देव मंदिर के पास आते हैं। वहाँ दो गाँवों के दलों द्वारा धान की पराल से बने रस्से से रस्सा-कस्सी का खेल खेला जाता है। यह परम्परा से तय है कि किस गाँव का व्यक्ति किस दल में शामिल होगा तथा किस दल की विजय क्षेत्र के लिए शुभ और किस दल की विजय अशुभ होगी। फाल्गुन मास की शुक्ल एकादशी को देवता के शाखा मंदिर नरायंडी में *फागली* उत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर विशेष पूजा-अर्चना की जाती है।

जनश्रुति : पनगाँ का एक ढौंसी (देवता का प्रमुख बजंत्री) साल में एक-आधी बार किन्नौर ज़िला के बरशैणी गाँव में अपने धर्म भाई से मिलने जाता था। वहाँ जगथम देवता की शक्ति से प्रभावित होकर वह देवता का बजंत्री बन गया। एक दिन देवता ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वह उसके साथ पनगाँ आ गया है। कुछ दिनों बाद पनगाँ क्षेत्र के जोगिन गाँव के *दाता* खानदान की एक बुजुर्ग महिला जब कोदरे (सावाँ की जाति का एक अन्न) के डाठू (अनाज रखने के लिए बना लकड़ी का बड़ा बक्सा) से काफी पुराना कोदरा, जो सीलन आदि के कारण जम गया था, किलण (गोड़ाई करने का एक उपकरण) से खोद कर निकाल रही थी तो उसे अचानक *अय्या* की आवाज़ सुनाई दी। उसने तुरंत जाकर यह बात अपने परिवार वालों को बताई। उन्होंने जब देखा तो वहाँ देवता का एक मोहरा मिला, जिसकी आँख पर किलण से चोट का निशान पड़ गया था। मोहरे की बात पूरे गाँव में फैल गई। तब ढौंसी ने वहाँ देवता जगथम की उत्पत्ति के बारे में अपने स्वप्न की बात बताई और मोहरा *दाता* खानदान के घर में देवता के रूप में पूजा जाने लगा। कालांतर में *लसराणी* खानदान के एक परिवार की गाय ने शाम को दूध देना बंद कर दिया। यह जानने के लिए परिवार वालों ने एक दिन उसका पीछा किया और सांध्यकाल में घर लौटने से पहले गाय को नरायंडी नामक स्थान में एक पिंडी पर दूध की धार छोड़ते हुए देखा। तब देवता ने गूर के माध्यम से बताया कि प्रातः इस क्षेत्र में जहाँ-जहाँ मकड़ी का जाला बना हो वहाँ-वहाँ मंदिर का निर्माण किया जाए। दूसरे दिन नरायंडी तथा पनगाँ के मड़हांज गाँव में मकड़ी का जाला बुना हुआ पाया गया। अतः इन दोनों स्थानों में देवता जगथम के मंदिरों का निर्माण किया गया।



भंडार

जमलू

गाँव : कुलंग, **तहसील** : मनाली।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : कुलंग।
स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित दो मंज़िल का मंदिर।
अधिकार क्षेत्र : गाँव कुलंग, पलचान, रूआड़।
प्रबंध : गूर, कारदार, भंडारी, जठाली, पुजारी की समिति।
न्याय प्रणाली : 'पोगले' डालकर।
पूजा : मेला, यात्रा, भौती आदि विशिष्ट अवसरों पर ही पूजा होती है।
रथ : नहीं है। देवता के निशान-फलौहरे, सूरजपंखे, दपोत, बेठर, साँकल, चंवर हैं।
मोहरे : नहीं हैं।
मेले-त्योहार : श्रावण मास में *सराणी* तथा फाल्गुन मास में *फागली*।
जनश्रुति : देखें-जमलू, गाँव प्रीणी, तहसील मनाली की जनश्रुति।

जमलू

गाँव : प्रीणी, **तहसील** : मनाली।
मूल स्थान : प्रीणी में हामटा नामक स्थान।
मंदिर : प्रीणी में सुक्खू सौह नामक स्थान पर।
भंडार : प्रीणी।

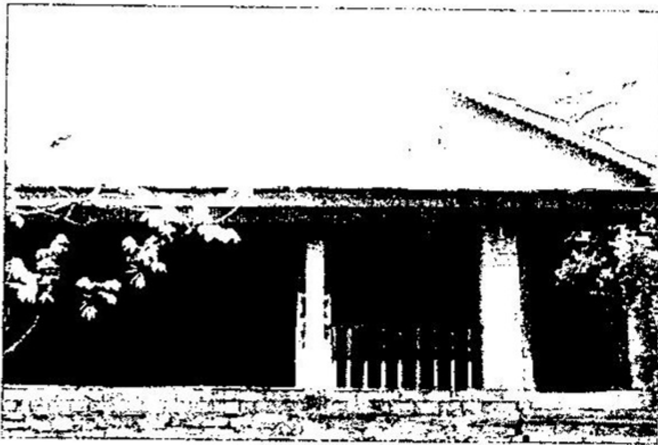


स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का प्राचीन मंदिर जिसकी दो ओर को काफी ढलानदार छत स्लेटों से ढकी है। काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, कठारी, जठाली, छड़ीदार की समिति।
न्याय : गूर द्वारा।
पूजा : संक्रांति, मेलों व त्योहारों के अवसर पर 'बेठर' से पूजा होती है।
रथ : नहीं। करड़ू है। देव चिह्न-चंवर, मोरमुठ, सूरजपंखा, पताका, झाँझा व साँकलें हैं।
मोहरे : केवल एक।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में तीन दिवसीय *फागली जाच* होती है। नौमी (सीता नवमी) तथा बीह भादों (भाद्रपद बीस प्रविष्टे) को देवता जोत पर स्नान के लिए जाता है। साथ गए सभी लोग भी जोत पर स्नान करके देव पूजा के निमित्त निहाड़ी, बेठर आदि जड़ी-बूटियाँ एकत्र करते हैं।
जनश्रुति : जमलू देवता अपने मूल स्थान स्पीति के हांसा गाँव से गड़रियों के साथ हामटा जोत होकर नगौणी पहुँचा। उन दिनों यहाँ सात बस्तियाँ थीं, जिन्हें *सौत सोही* कहते थे। किसी प्राकृतिक आपदा से ये सातों बस्तियाँ उजड़ गईं, केवल भानुभोट नाम के व्यक्ति का एक परिवार ही बचा रह गया। उसने जमलू को मढ़ाम (मधुमक्खी-स्थान) में रखा और नित-नियम से इसकी पूजा करने लगा। लेकिन कुछ समय बाद जमलू वहाँ से मलाणा चला गया, फिर भी नगौणी में इसकी विधिवत् पूजा होती रही। हामटाधार की बस्तियाँ उजड़ जाने के बाद इस देवता का प्रीणी गाँव के शीर्ष पर स्थित *सुक्खू सौह* में देवस्थल बन गया। जमलू का मुख्य स्थान होने के कारण यहाँ लोकोक्ति प्रचलित है-*जेठा हामटा, कौन्हा मलाणा* (हामटा वरिष्ठ और मलाणा कनिष्ठ)। जमलू को *बड़ा देऊ* भी कहा जाता है। कुल्लू में इसके बारह देऊघर हैं। उनमें से यह पहला 'देऊघर' है। जमलू के बारे में यह भी एक

धारणा है कि मनुष्य रूप में यह बहुत पराक्रमी योद्धा था, जिसने बहुत से युद्ध लड़े और अंततः लोक कल्याण के मार्ग पर प्रवृत्त हुआ। अतः जहाँ-जहाँ भी वह गया वे सभी स्थान देवस्थल बन गए।

जमलू

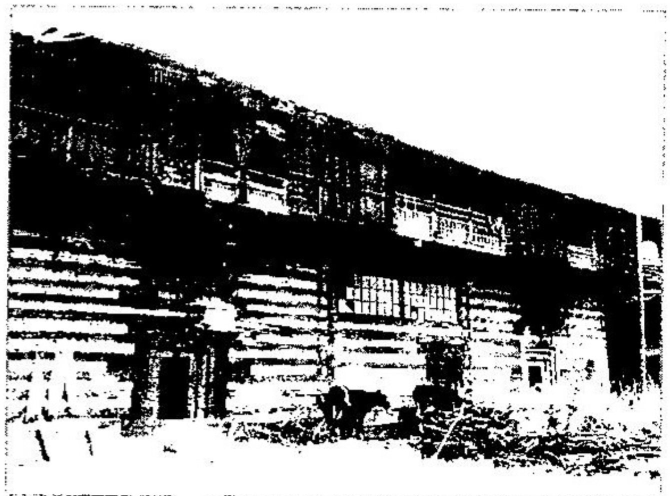
गाँव : बुरुआ, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बुरुआ।



स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी ढलानदार छत स्लेटों से आच्छादित है।
अधिकार क्षेत्र : बुरुआ व मझाच गाँव।
प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी व जठाली की समिति।
न्याय : गूर के माध्यम से।
पूजा : प्रतिदिन पंचोपचार विधि से।
रथ : नहीं है। केवल निशान, जिनमें सूरज पंखे, दपोत (धूप पात्र), फलौहरे (ध्वजा), साँकल और चँवर शामिल हैं।
मेले-त्योहार : श्रावण मास में बुरुआ में *शाऊणी जाच* व *सराणी* मेला।
जनश्रुति : देवता जमलू जहाँ भी गया, वहीं पुण्यभूमि बनी। यह महापटंत से चल कर हामटा पहुँचा और यहाँ दुष्टों का संहार करके एक विधवा के घर प्रतिमा रूप में रहने लगा। विधवा ने उसे घर की दीवार में बने मढ़ाम (मधुमक्खी को पालने के लिए तैयार किया गया लकड़ी का छोटा बॉक्स) में रखा। वहाँ से यह मलाणा गया, जहाँ बाणासुर का शासन था। उसका वध करके जमलू ने मलाणा में अपना आधिपत्य स्थापित किया। भूने हुए बथुए को बीज कर फसल उगाई और इस तरह के अनेक चमत्कार दिखा कर वह मलाणा वासियों का आराध्य बना। यहाँ से यह मझाच गाँव पहुँचा जहाँ उसका देवघरा (छोटा मंदिर) स्थापित हुआ। इसके पश्चात् वह बुरुआ गाँव में आया। यहाँ खिंदू भगत नाम का सामंत रहता था। देवता ने इस परिवार से घांद नामक व्यक्ति को अपना गूर चुना। खिंदू भगत को यह अच्छा नहीं लगा। उसे यह अपनी सत्ता को चुनौती वाली बात लगी। तभी घांद गूर में देवशक्ति का प्रवेश हुआ। उसने 'धड़छ' में फूँक मारी। ऐसा करते ही खिंदू भगत का घर जलने लगा। लोगों ने देवता से बहुत अनुनय-विनय किया। तब गूर ने 'धड़छ' पर 'घोंडी' रखी। घोंडी रखते ही घर की आग बुझ गई। खिंदू भगत देवता की शक्ति के आगे नतमस्तक हुआ और भविष्य में इसे मानने का वचन दिया। इस प्रकार बुरुआ में देव मंदिर का निर्माण करके इसकी विधिवत् पूजा आरम्भ की गई।

जमलू

गाँव : सोयल, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : मलाणा।



मंदिर एवं भंडार : सोयल।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर, जिसकी धरातल व प्रथम मंज़िल में चार-चार कक्ष हैं। तीसरी मंज़िल में दो बड़े कमरे तथा चौतरफा बरामदा है। सबसे ऊपर की मंज़िल, जिसे टाला कहते हैं, उसमें दो कमरे हैं। मंदिर का आधा भाग कारदार के पास तथा आधा भंडारी के पास है। कारदार वाला भाग खाली रहता है, जबकि भंडारी, एक ओर की निचली दो मंज़िलों को निजी गृह के रूप में प्रयोग करता है। इनसे ऊपर की मंज़िल के एक कक्ष में देवता का भंडार है। टाले में देवता स्थापित है। यहाँ पुजारी मेले-त्योहारों के अवसर पर पूजा करता है। देवता की सौह गाँव के मध्य में स्थित है, जिसमें देवदार के 70-80 विशाल वृक्ष लगभग 400 वर्ष पुराने हैं। सौह में दो मंदिर हैं। इनमें पहले बना मंदिर एक मंज़िल का है, जिसके गर्भगृह में देवता पिंडी रूप में स्थापित है। मंदिर के बाहर पत्थरों की चारदीवारी है, ताकि मंदिर को कोई छू न सके। इसे गूर भी नहीं छू सकता। यहाँ केवल पज़ियारा पूजा करने जाता है, वह भी आँख पर पट्टी बाँध कर। ग़लती से अगर कोई मंदिर को छू ले तो उसे दंडस्वरूप बकरे की बलि देनी पड़ती है। दूसरा डेहरा भी इसी के साथ है। इसका उपयोग श्रद्धालुओं तथा बाहर से आए देवताओं को ठहराने के लिए किया जाता है। डेहरे के आगे देवता का थड़ा है, जिस पर एक स्लेट बिछी है। 'पूछ' के समय गूर उस पर बैठकर ही न्याय करता है।

अधिकार क्षेत्र : मनसारी, सोयल, चकलाड़ी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन धूप से।

रथ : नहीं है।

मोहरे : नहीं हैं, देवता का प्रतीक चिह्न चाँदी के घोड़े और सोने की एक तथा चाँदी की कई छड़ें हैं।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में *शाउणी जाच* तथा फाल्गुन में *फागली*। मेले में देवता के सभी निशान जाते हैं।

जनश्रुति : किसी समय सोयल गाँव की नड़ जाति की कोई स्त्री जमलू देवता के दर्शन हेतु मलाणा गई। देवता के प्रति अगाध आस्था के फलस्वरूप जमलू पक्षी का रूप धारण कर उसके साथ सोयल आ गया। अपनी दिव्य शक्ति से वहाँ के लोगों को कई चमत्कार दिखाए और वहाँ अपना स्थान बनाया। उधर मलाणा के लोगों को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने सोयल आकर उस स्त्री को ज़िन्दा जला दिया। देवता आज भी उसी स्थान पर 'देऊखेल' करता है जहाँ पर उस स्त्री को जलाया गया था।

जौऊसु नाग

गाँव : जलसा, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : गाँव गोशाल।

मंदिर : जलसा।

भंडार : गाँव जलसा और रियाड़ा में।

स्थापत्य : काष्ठ, प्रस्तर व सीमेंट से निर्मित डेढ़ मंज़िल का साढ़े सोलह फुट लम्बा तथा साढ़े तेरह फुट चौड़ा मंदिर जलसा गाँव के दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इस गाँव का प्राचीन नाम भाटणी बाऽ अर्थात् पंडित-बावड़ी था, लेकिन देवदोष से गाँव में सात बार आग लगने के कारण इसका नाम जौऊग्राँ हुआ। फिर बिगड़ कर जौऊसा और अब जलसा है। गाँव के पश्चिम में रई के पेड़ों का घना जंगल और छोटी-छोटी पर्वत शृंखलाएँ हैं। पहाड़ी पर स्थित *नाग सौर* (नाग-सरोवर) अति रमणीय स्थल है। शिखर पर नियाम्पू नामक स्थान में नाग देवता का मंदिर है। यहाँ से चारों ओर का दृश्यावलोकन होता है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव जलसा, रियाड़ा, मल्लाह, थली तथा कोठी बड़ागढ़ के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, कठियाला, कठारी तथा विभिन्न क्षेत्र के चार कारकुनों की समिति। ये सभी कारदार के नेतृत्व में काम करते हैं। इनमें से कारदार, पुजारी, कठियाला और कठारी तो वंशानुगत होते हैं, जबकि अन्य चार कारकुन देवप्रजा द्वारा चुने जाते हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र

का कार्य देखते हैं।

न्याय प्रणाली : 'गैटी, पोगै, मलोही' द्वारा तथा देवता की कसम खा कर।

पूजा : प्रतिदिन पूजा का विधान नहीं है। केवल मेले-त्योहार आदि अवसरों पर जब रथ पूर्ण रूप से सजा होता है तो गूर सुबह-शाम पूजा करता है। इस समय मंदिर से बाहर देववाद्यों पर पूजा की विशेष धुनें बजाई जाती हैं और पुजारी दायें हाथ से घोंडी बजाते हुए बायें हाथ से धौड़छ को दायीं से बायीं ओर को घुमाता हुआ पूजा करता है।

रथ : फेटा, शीर्ष पर 'बीण' सज्जित है, जिस पर कलगी अलंकृत की जाती है। लोक धारणा है कि आरम्भ में बीण के स्थान पर चाँदी का चन्द्राकार शीशफूल लगाया जाता था, जिसे मरोडीना कहते हैं। बुजुर्गों का कहना है कि इसे जब भी लगाते, रथ बेकाबू होकर पहाड़ की ओर जाने लगता। तब लोगों ने इसे रथ के शीर्ष पर न लगाकर रथ के आँचल में रखना शुरू किया, लेकिन इससे भी रथ पर नियंत्रण प्राप्त नहीं हुआ, फिर इस शीशफूल को पिघला कर उससे देवता के आभूषण बनाए गए जिससे रथ वश में आ सका।

मोहरे : कुल ग्यारह। इनमें से रजत निर्मित नौ मोहरे रथ में लगाए जाते हैं और शेष दो जो अष्टधातु के हैं, अब नहीं लगाए जाते। चाँदी के बने दो जुडु (लिंगाकार पिंड) भी रथ में सजाए जाते हैं।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नया सम्वत्* मनाया जाता है। इस अवसर पर नाग देवता अपने गाँव की परिक्रमा पर निकलता है और हर घर से धूप ग्रहण कर आशीर्वाद रूप में उन्हें शेष (चावल के दाने) देता है।

बैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू* मेला होता है। इस दिन देवता गाँव रियाड़ा जाता है जहाँ *देऊ खेल* होती है।

श्रावण मास की संक्रांति को *सौरा जात्र* होती है। यह मेला तीन दिनों तक चलता है। इस अवसर पर देवता *नाग सौर* में स्नान करने जाता है। स्नान के पश्चात् *ओड़ा छुंगणा* अर्थात् सीमा अवलोकन और *सौह मोअणी* (देव-स्थल निरीक्षण) की प्रक्रिया भी निभाई जाती है।

आश्विन मास की संक्रांति को *शौयरी साजा* होता है, जो नाग देवता के जन्म दिन के रूप में मनाया जाता है। इस दिन नाग सौर में स्नान करने के पश्चात् नियाम्पू में विशेष पूजा-अर्चना की जाती है।

फाल्गुन मास में *फागली जाच* होती है। इस दिन नाग देवता सिंहासनी देवी के मंदिर में जाकर फागली मनाता है। इस मेले को मनाने के पीछे अवधारणा है कि किसी समय एक राक्षसी ने नाग देवता के क्षेत्र में बहुत उत्पात मचाया। देवता उसे रोक न पाया। तब उसने बड़ागाँव की सिंहासनी माता से सहायता माँगी। माँ ने राक्षसी का नाक काट कर उसे वहाँ से भगा दिया।

जनश्रुति : वासुकि नाग और गोशाल गाँव की एक कन्या से उत्पन्न अठारह नागों में से एक नाग जौऊसु भी है। 'धड़छ' से भांदल (मिट्टी का बड़ा घड़ा) में आग गिरने से ये सभी नाग जब भांदल का बिल तोड़कर इधर-उधर भागे तो यह नाग मनाली गौहर, कन्याल गौहर, रगोली जोत, रौता टिब्बा, उझली सौह, सौरा पाँधे, नियाम्पू, भूजा रा ढौग आदि स्थानों से होता हुआ जलसा गाँव में पहुँचा। यहाँ रहने की इच्छा से इसने लोगों को स्वप्न में दर्शन देकर कहा-मुझे देवता रूप में स्वीकार करें। परन्तु लोगों ने जब उसे मान्यता नहीं दी तो रुष्ट होकर उसने गाँव में सात बार आग लगा दी और स्वयं गाँव के साथ लगती पहाड़ी *भूजा रा ढौग* में निवास करने लगा।

सात बार गाँव के जलने के पश्चात् भी जब यहाँ के लोगों ने इसे देवता रूप में स्वीकार नहीं किया तो देव दोष से गाँव के लोग एक-एक करके मरने लगे। इस तरह अंत में केवल दो ही विधवाएँ और उनकी संतानें बचीं। इनमें से *कड़ीआँ टैहल* वंश की विधवा के केवल एक और दूसरी के आठ पुत्र थे।

एक पुत्र की माँ जब भूजा रा ढौग में पशुओं के बिछौने के लिए पत्तियाँ इकट्ठी कर रही थी तो वहाँ उसे

देवता का एक मोहरा मिला। वह उसे शिऊल (बड़े आकार का किलटा) में छुपा कर अपने घर ले आई और अनाज के भंडार में रखकर उसकी गोष्ठू (उपले) से प्रतिदिन पूजा करने लगी; जबकि आठ पुत्रों की माँ उसे अब भी देवता मानने को तैयार नहीं थी। उसे घमंड था कि उसके आठ पुत्र हैं, अतः वह कभी भी निर्वंशी नहीं हो सकती; वह एक पुत्र की माँ को यह कहकर चिढ़ाती थी कि *मेरी सी औठ धारा, तेरा सा एक टेंडा, फूटा ता निहारा।* (मेरी हैं आठ धाराएँ (संतानें), तेरी केवल एक आँख (संतान) फूट गई तो अंधेरा ही अंधेरा) परन्तु देवता के कोप से आठों पुत्रों सहित उस विधवा का विनाश हो गया और कड़ीआँ टैहल वंश की विधवा के एक पुत्र से पुनः जलसा गाँव बसा। आज इस गाँव में उसी के वंशज निवास करते हैं।

त्रिपुरा सुंदरी

गाँव : नगर, **तहसील** : मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : नगर।

शाखा मंदिर : मशाड़ा।

स्थापत्य : पैगोड़ा शैली का त्रिछतीय मंदिर।

अधिकार क्षेत्र : नगर, मढ़ी, घरोपा, मशाड़ा, झाँसू।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, जठाली, नाथ, खोलीदार, जठेरा, कायथ, बजंत्री की समिति।



न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : मंदिर में प्रतिदिन प्रातः-सायं घोंडी-धड़छ, गुग्गुल धूप व अगरबत्ती से की जाती है।

रथ : फेंटा। इसके शिखर पर मध्य में सोने का तथा दोनों ओर चाँदी के छत्र लगाए जाते हैं। सभी आभूषण भी रजत निर्मित हैं।

मोहरे : बारह। इनमें तीन मोहरे शेर के हैं। सभी मोहरे चाँदी के हैं तथा रथ के अग्रभाग में सजाये जाते हैं।

मेले-त्योहार : 5 ज्येष्ठ से 10 ज्येष्ठ तक सौह में *शाढ़ी जाच*।

जनश्रुति : प्राचीन समय में वर्तमान मंदिर स्थान के आस-पास का क्षेत्र चरागाह था, जिसमें लोग अपने पशुओं को चराने के लिए लाया करते थे। एक बार किसी व्यक्ति की ब्याई हुई गाय ने चरने के बाद घर आकर शाम को दूध देना बंद कर दिया। जब कुछ दिन ऐसा ही चलता रहा तो एक दिन मालिक ने गाय का पीछा किया। तब उसने देखा कि शाम को घर लौटने से पूर्व गाय एक बड़ी चट्टान पर गई, जहाँ उसके थनों से स्वतः दूध की धार निकलने लगी। आश्चर्यचकित होकर वह इस दृश्य को देख ही रहा था कि चट्टान से एक कन्या प्रकट हुई। उसने बताया कि वह त्रिपुरा सुन्दरी है और यहाँ स्थापित होना चाहती है। गाय के स्वामी ने यह बात गाँववासियों को सुनाई और लोगों ने देवी-आराधना शुरू कर वहाँ मंदिर का निर्माण किया।

दोचा-मोचा

गाँव : गज़ां-करज़ां, **तहसील** : मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : गज़ां।

भंडार : करज़ां।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर, जिसकी ढलानदार छत पर स्लेट लगे हैं। मंदिर की तीसरी मंज़िल में 'मढारी' रहता है और 'टाले'



में देवी की स्थापना है। गज़ां में ही देवी का 'डेहरा' है, जिसमें दोचा-मोचा की दो मूर्तियाँ स्थापित हैं। करज़ां में ढलवाँ छत वाला डेढ़ मंज़िल का भंडार है, जहाँ देवी का रथ रखा जाता है। विशेष उत्सवों और यात्रा पर जाने के लिए रथ को यहीं सजाया जाता है।

अधिकार क्षेत्र : गज़ां-करज़ां।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन प्रातः-सायं बेठर व गुग्गुल धूप से।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ, जिसके शीर्ष पर छह छत्र सुशोभित हैं।

मोहरे : रजत-निर्मित दस।

मेले-त्योहार : चैत्र पूर्णिमा से चार दिवसीय *चचौहली मेला* लगता है, जिसमें चौथे दिन देवी क्षेत्र के प्रत्येक घर में धूप पीने जाती है।

जनश्रुति : किसी समय एक ग्वाला गज़ां गाँव की चरागाह में गज़ां-करज़ां के राजा की गायों को चराने के लिए ले जाता था। एक बार किसी गाय ने शाम के समय दूध देना बंद कर दिया। छानबीन करने पर पता चला कि चरागाह में उगी भेखल की झाड़ी के समीप पहुँचते ही उस गाय के थनों से स्वतः दूध निकलने लगता है। जब यह बात राजा को बताई गई तो उसने झाड़ी को उखाड़ने का आदेश दिया। झाड़ी उखाड़ने पर उसके नीचे से दो मूर्तियाँ निकलीं। 'पूछ' डालने पर पता चला कि ये मूर्तियाँ दोचा-मोचा भगवती की हैं। जब मूर्तियों की स्थापना की बात आई तो दोनों गाँवों के लोग देवी को उन्हीं के गाँवों में रखने पर ज़ोर देने लगे। तब राजा के आदेश पर गज़ां में मंदिर बनाया गया क्योंकि वह देवी का मूल स्थान था, और भंडार करज़ां में, जहाँ रथ, मोहरे व अन्य सामान रखा जाता है।

धुंबल नाग

गाँव : पीह, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : मनाली में स्थित गोशाल गाँव।

मंदिर एवं भंडार : पीह।

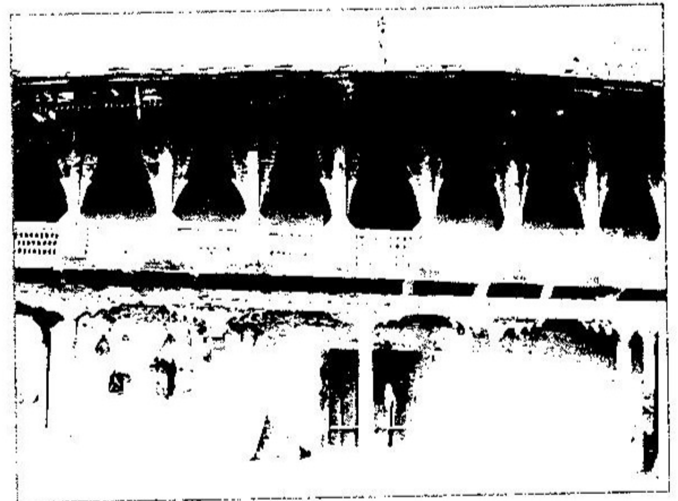
शाखा मंदिर : गाँव मंगाणा।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित ढाई मंज़िल का यह मंदिर काठकुणी शैली में बना है। ऊपर की मंज़िल के बरामदे में झरोखे बने हैं। इसकी छत के चारों ओर काष्ठ निर्मित झालरें और चारों कोनों में लकड़ी की बनी घंटियाँ लगी हैं। यह प्राचीन मंदिर सामान्य श्रेणी का है।

अधिकार क्षेत्र : हलाण-II पंचायत के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी, भंडारी, जठेरे की वंशागत समिति।

न्याय प्रणाली : बारह कौऊ-करिंदों (कारकुन) की समिति द्वारा। यह समिति वंशानुक्रम से चली आ रही है। ये बारह लोग किसी भी समस्या का समाधान करते



हैं। इनके द्वारा समाधान न होने पर 'पोगे, गैटी, मलोही तथा कसम' विधि से न्याय किया जाता है। इनमें से किस प्रणाली से न्याय दिलाया जाना है, यह निर्णय कौऊ-करिंदे ही करते हैं।

पूजा : पूजा का कोई विधान नहीं है। देवता के कारकुन यहाँ विशेष देवकार्य से ही आते हैं। देवता की प्रतिदिन तथा मेले-त्योहारों आदि अवसरों पर पूजा गाँव मंगाणा स्थित धुंबल नाग के मंदिर में ही होती है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा। शीर्ष पर स्वर्ण निर्मित नक्काशीदार मुख, जिसे *शीश फूल* या *मरोडीना* कहते हैं।

मोहरे : आठ रजत निर्मित तथा दो स्वर्ण के। स्वर्ण के मोहरे रथ में सज्जित तो होते हैं, लेकिन इन्हें वस्त्र से ढका होता है। इनके अतिरिक्त एक स्वर्ण मुख।

मेले-त्योहार : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नववर्ष उत्सव*, वैशाख की संक्रांति को *कोन्हा बिरशू*, भादों मास की संक्रांति को *शाउण जाच*, आश्विन मास की संक्रांति को *शौयरी मेला* तथा फाल्गुन मास की शुक्ल द्वादशी को *फागली*। इनमें से शौयरी तथा नववर्ष उत्सव तो देवता धुंबल नाग के अपने मेले हैं, जबकि अन्य मेले देवता जडी-नारायण के हैं। लोक धारणा है कि जब नाग धुंबल हलाण-॥ में आया तो यहाँ जडी नारायण का आधिपत्य था। तब उसने धुंबल नाग को यहाँ रहने के लिए इस शर्त पर स्थान दिया कि वह सम्मान स्वरूप जडी नारायण के मेले-उत्सवों को मनाता रहे।

जनश्रुति : देखें-धुंबल नाग, गाँव मंगाणा की जनश्रुति।

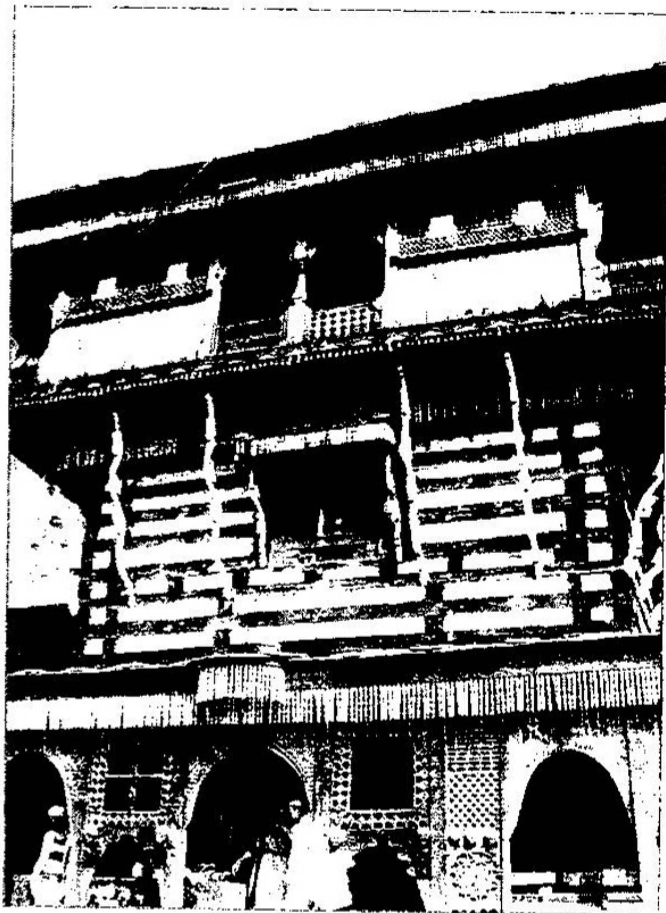
अन्य सूचना : एक बार जब कुल्लू में अकाल पड़ा तो राजा ने घाटी के सभी गूरों की सभा बुलाई और कहा कि वे बारी-बारी से बताएँ कि वर्षा कब होगी। जिसकी वाणी सच होगी उसे छोड़कर अन्य गूरों को मृत्यु दंड दिया जाएगा। मृत्यु-भय से एकाग्रचित्त न होने के कारण गूर अपने-अपने देवता का आह्वान न कर पाए और किसी में भी देव शक्ति का प्रवेश न हुआ। उसी समय एक सीधे-सादे पुहाल (गड़रिया) ने देव शक्ति से कंपायमान होते हुए सभा में प्रवेश किया और बोला-यदि उत्तर दिशा से बादल आएँ तो समझ लेना कि वह मेरी वर्षा है और यदि अन्य दिशा से वर्षा आए तो वह दूसरे गूरों की होगी। यह कहकर उसने अपना परिचय दिया कि वह धुंवल नाग है और हलाण से आया है। उसने अन्य गूरों को माफ कर उन्हें छोड़ने के लिए राजा से कहा और स्वयं उसी गति से अपनी भेड़ों के पास थाच (चरागाह) में चला गया। उसके जाते ही उत्तर दिशा से बादल आए और खूब वर्षा हुई।

धुंबल नाग

गाँव : मंगाणा, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : गाँव पीह, (हलाण-॥)। यहाँ देवता का छोटा-सा मंदिर और भंडार है। इस स्थान पर श्रद्धालु बहुत कम आते हैं, केवल देवता के कारकुन विशेष देवकार्य से ही यहाँ आते हैं।

मंदिर : मंगाणा।



भंडार : गाँव मंगाणा, पानकोट, पीह, घडींगचा, छोन, मकोट, नगोणी। गाँव मंगाणा का भंडार मंदिर में ही है। यहाँ देवता के समस्त सुषिर वाद्य तथा अन्य सामान रखे जाते हैं, चर्म निर्मित होने के कारण देवता के ढोल, नगारे आदि वाद्य इस भंडार में न रखकर उन्हें पीह के भंडार में रखा जाता है।

स्थापत्य : गाँव मंगाणा के 95 वर्षीय बुज़ुर्ग मोतीलाल के अनुसार लगभग सौ वर्ष पूर्व मंगाणा का मंदिर आग से नष्ट हो गया था लेकिन कुशल शिल्पकारों ने पुरातन स्वरूप देकर इसे पुनः निर्मित कर दिया। यह मंदिर चार मंज़िल का है। इनके अतिरिक्त एक मंज़िल भूमिगत है, जिसमें देवता की बहुमूल्य वस्तुएँ रखी जाती हैं। मंदिर का निर्माण काष्ठ व प्रस्तर से काठकुणी शैली में हुआ है। भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के लिए मंदिर में नाग की आकृतियों के मज़बूत काष्ठ-स्तम्भ लगाए गए हैं। ऊपरी मंज़िल में झरोखे बने हैं। मंदिर पूर्वाभिमुख है और दक्षिण की ओर ऐसा निर्माण किया गया है जिससे पूरा दिन सूर्य की किरणें मंदिर के अग्रभाग पर रहती हैं।

शाखा मंदिर : हलाण पंचायत के अंतर्गत गाँव घडींगचा, मकोट, छोन, बाड़ी एवं नगोणी में। इनके अतिरिक्त गाँव बड़ागढ़, बगाडी और भुलंग में भी।

अधिकार क्षेत्र : हलाण-II पंचायत के चौदह गाँव-मंगाणा, तराशी, बंदल, काईन, शिल्हा, घडींगचा, मरजां, पानकोट, मकोट, पीह, जैंडी, बाड़ी, रेंखूडू, पतली कूहल।

प्रबंध : कारदार तथा उसके द्वारा चयनित पाँच स्थानीय व्यक्तियों की समिति। यह समिति कम से कम तीन साल की अवधि के लिए बनती है। पहला व्यक्ति देवकार्य में खर्च होने वाले राशन आदि का हिसाब रखता है। दूसरा देवता को चढ़नेवाली बलि का प्रबंध करता है। तीसरा बजंत्रियों से सम्बंधित कार्य देखता है। चौथा समस्याओं का समाधान करता है और पाँचवाँ व्यक्ति साजो-सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने की व्यवस्था करता है। कारदार इन सभी की गतिविधियों पर नज़र रखता है। कारदार कुलक्रमागत होता है। नए कारदार का चयन विशेष परिस्थिति में ही लोकमत से होता है, जिसे स्थानीय बोली में शरवरई कहते हैं।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से, जिसे 'बोल' कहा जाता है।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। इसके अतिरिक्त मेले-त्योहार आदि विशेष अवसरों पर घोंडी और धड़छ से पूजा की जाती है। पूजा पारम्परिक तरीके से होती है, अतः गंगाजल आदि का प्रयोग नहीं होता। चरणामृत के लिए दूध, दही, घी, शहद, गोमूत्र का इस्तेमाल किया जाता है।

रथ : पालकीनुमा रथ की बनावट थोड़ी गोल है, अतः स्थानीय लोग इसे *पटार शैली* का मानते हैं। यह रथ सीधा खड़ा रहता है और नाग आकृति देने के लिए शिखर का रूप फन जैसा बनाया गया है। इसके शीर्ष पर स्वर्ण निर्मित नक्काशीदार मुख लगता है, जिस पर चाँदी का झालरों वाला घुंडा (घूंघट) सज्जित होता है। रथ को विभिन्न रंगों के वस्त्रों से सजाया जाता है। इसे उठाने के लिए ओंगू नामक वृक्ष की दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है।

मोहरे : रथ में कुल 12 मोहरे सज्जित होते हैं। इनके अतिरिक्त चार मुख्य मोहरे हैं, जिन्हें सामान्यतः प्रदर्शित नहीं किया जाता, अतः इन्हें मंदिर के तहख़ाने में ही गुप्त रखा जाता है। देवता की दो प्राचीन मूर्तियाँ हैं। आरम्भ में चाँदी की गदानुमा एक छड़ी भी थी, जिसका वज़न काफी अधिक था।

मेले-त्योहार : श्रावण मास में देवता की 'हार' का हर परिवार अपनी सामर्थ्यानुसार देवता को भेंट अर्पित करता है। इस अवसर पर *पानकोट की 'सौह'* में लोगों को खीर खिलाई जाती है। प्रतिवर्ष 14-15 फाल्गुन को *फागली* होती है, 15-20 वर्षों बाद हलाण-II में पानकोट और पीह गाँव के समीप *काहिका* मनाया जाता है। बुज़ुर्गों का कहना है कि देवता धुंबल सम्पूर्ण हिमालय यात्रा के बाद कुछ समय के लिए फोज़ल नाले के साथ बसे दो गाँव

बगाडी और भुलंग में रुका था, अतः मेले की शुरुआत इन्हीं दो गाँवों से होती है। यहाँ के देवरथ हलाण-II में आकर मेले का शुभारम्भ करते हैं। इस उत्सव में आसपास के गाँवों के देवी-देवता भी शामिल होते हैं और सभी देवता 'हुल़की' देते हैं। सोयल गाँव के नड़ों (एक जाति विशेष) को बुलाकर इनमें से एक को हींगबूटी खिलाकर मूर्च्छित किया जाता है। कुछ देव क्रियाओं के बाद देवशक्ति से उसे पुनः होश में भी लाया जाता है।

जनश्रुति : वासुकि नाग और गोशाल गाँव की कन्या के विवाह से उत्पन्न अठारह नागों में से एक धुंबल नाग है। लोक विश्वास के अनुसार भांदल (मिट्टी का बड़ा घड़ा) में आग गिरने से इसका पूरा शरीर धूमिल हो गया था, जिस कारण इसका नाम धुंबल पड़ा। इस घटना में यह भांदल का बिल तोड़ कर सबसे पहले बाहर निकला और बिल को गले में लटका कर इधर-उधर भागने लगा। पूरे हिमालय क्षेत्र में घूमने के बाद अंत में यह पीह गाँव पहुँचा और यहीं अपना स्थान बना लिया। स्थानीय लोगों ने इसे *पीह देऊ* के नाम से पूजना आरम्भ किया। इसकी शक्ति से प्रभावित होकर लोगों ने इस क्षेत्र के कई स्थानों में इसके मंदिरों का निर्माण किया, जिसमें मंगाणा का मंदिर भी शामिल है।

धौम्य ऋषि

गाँव : जगतसुख, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : गाँव जगतसुख के निकट छीका नामक स्थान।

मंदिर : जगतसुख।

भंडार : नहीं है। देवता के मोहरे तथा अन्य सामान देवी संध्या गायत्री के भंडार में ही रहता है।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर से निर्मित 4x4x6 फुट का लघु मंदिर संध्या गायत्री मंदिर के निकट नाले के पास चट्टान के ऊपर है, जिसमें ऋषि की मूर्ति स्थापित है। इसके साथ ही चट्टान पर एक ऊखल है, जिसे अठारह पेड़े का स्थान कहते हैं। इन्हें प्रसन्न करने के लिए अठारह रोटियाँ ऊखल के चारों ओर रखी जाती हैं।

अधिकार क्षेत्र : जगतसुख, बाहणु तथा छनाला गाँव के लगभग दो सौ पचास परिवार।

प्रबंध : कारदार, गूर व पुजारी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : प्रत्येक संक्रांति को बेठर व गुग्गुल धूप से।

रथ : नहीं है। लगभग साठ वर्ष पूर्व धौम्य ऋषि का खड़ा रथ था जिसमें ग्यारह मोहरे लगते थे परन्तु अब रथ नहीं है। जब गायत्री देवी का रथ निकलता है, उसमें एक मोहरा धौम्य ऋषि का भी लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : देवता का अपना कोई मेला नहीं है परन्तु जगतसुख मेले व अन्य मेलों में यह माँ गायत्री के साथ रहता है और देवता का गूर उसके प्रतीक चिह्न घंटी-धड़छ लेकर साथ चलता है। चचौहली मेले का आयोजन चैत्र शुक्ल पूर्णिमा से सात दिन तक होता है। इनमें से जिस दिन संध्या गायत्री का जन्मदिन होता है, उस दिन धौम्य ऋषि का गूर अपनी गालों के आर-पार सूआ डालता है। जेठा बिरशू, शाऊण, शौयरी, माघी, दियाली तथा बीस भादों को ऋषि का गूर आटे की भुँगड़ी बनाकर जगतसुख गाँव के बीच तथा बाहर फेंकता है और अठारह ग्रास अठारह पेड़े के लिए मंदिर में ऊखल के चारों ओर रखता है।

जनश्रुति : लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व पांडवों के अज्ञातवास के समय उनके गुरु धौम्य ऋषि भी उनके साथ जगतसुख आए और यहीं वास करने लगे। पांडवों ने अपने छोटे भाई सहदेव को यहाँ गुरु की सेवा के लिए रखा था। आज भी धौम्य ऋषि की 'डेहरी' के सामने के जंगल में सहदेव का मंदिर है जिसे वर्तमान में शैला देऊ के नाम से जाना जाता है। ऐसी मान्यता है कि लगभग 150 वर्ष पूर्व एक ब्राह्मण को धुआंगणु नाले के पुल पर धौम्य ऋषि साधू के वेष में मिला। उस साधू ने ब्राह्मण से कहा कि तुम मेरे पुरोहित हो, तुम्हें यज्ञ करवाने के लिए मेरे साथ जाना पड़ेगा। यह कहकर साधू ने ब्राह्मण की

आँखों पर पट्टी बाँध दी। जब साधू ने उसकी पट्टी खोली तो उसने अपने को एक यज्ञशाला में पाया। वहाँ साधू ने उससे यज्ञ करवाया और भेंटस्वरूप जो वस्तु दी, वह उसे माँस के टुकड़ों सदृश लगी। साधू ने जब उसे पुल पर वापिस पहुँचाया तो साधू द्वारा दी गई उस भेंट को माँस समझकर उसने नाले में फेंक दिया। गलती से एक टुकड़ा उसकी धोती में अटका रहा। ब्राह्मण ने धोती को गंदा देखकर उसे गोशाला में रखा। अगले दिन जब उसकी पत्नी ने धोने के लिए धोती को उठाया तो वह माँस का टुकड़ा स्वर्ण में परिवर्तित हो चुका था। तब ब्राह्मण बहुत पछताया। कुल्लू के राजा और देवी-देवता आज भी इस नाले को पार नहीं करते और यदि किसी कारणवश इसे पार करना पड़े तो पहले बलि दी जाती है।

नारसिंह

गाँव : कुल्लू क्षेत्र में गाँवों, घरों और कई स्थानों में।
मंदिर : प्रायः सुंदर स्थानों और बागों में। कहीं-कहीं एक कक्ष व एक मंज़िल का।
अधिकार क्षेत्र : जहाँ स्थापित होता है, वहाँ घर, टोली और गाँव के लोग मानते हैं।
पूजा : गुग्गुल धूप से साधारण पूजा होती है। समय-समय पर बकरा चढ़ाकर देवता को खुश करते हैं।
जनश्रुति : इसे ब्राह्मण देवता माना जाता है। यह सफेद पोशाक में रात को विचरण करता है। कई बार अपनी शक्ति से लोगों को मूर्च्छित करता है। स्त्री और पुरुष समान रूप से इसकी पूजा करते हैं। यह प्रायः सुन्दर स्त्रियों पर आसक्त होता है। इसके स्थान को पवित्र रखा जाता है और रजस्वला स्त्री को इसके स्थान से गुज़रना वर्जित है।

नारायण

गाँव : लिगन, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : गाँव सियाल।
मंदिर एवं भंडार : लिगन।
स्थापत्य : प्राचीन मंदिर काष्ठ-प्रस्तर निर्मित था। इसकी छत पर 'बदोर' लगा था। काफी पुराना होने के कारण इस मंदिर का वर्ष 2002 में पुनर्निर्माण किया गया। इसमें काष्ठ पर देवताओं के चित्र तथा अन्य कलाकृतियाँ उकेरी गई हैं।
अधिकार क्षेत्र : गाँव लिगन, चलाह, मोहिला।
प्रबंध : कारदार, पुजारी तथा कठियाला की समिति।
न्याय प्रणाली : 'गुयै-ग्राह कर, मलोही, गैटी, पोगै' द्वारा और देवता की कसम खा कर।
पूजा : केवल मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर जब देव रथ सजा होता है, तब पुजारी स्नान आदि के पश्चात् धोती पहन कर 'घोंडी-धड़छ' के साथ पूजा करता है। इस समय बजंत्री देव वाद्यों पर पूजा की विशेष धुन बजाते हैं।
रथ : फेटा। इसका शीर्ष बीण से सज्जित है। यह रजत निर्मित त्रिकोण आकार का घुँघरू जड़ित पत्तरनुमा है जिसके ऊपर कलगी सजी है।



मोहरे : नौ रजत निर्मित तथा तीन अष्टधातु के।

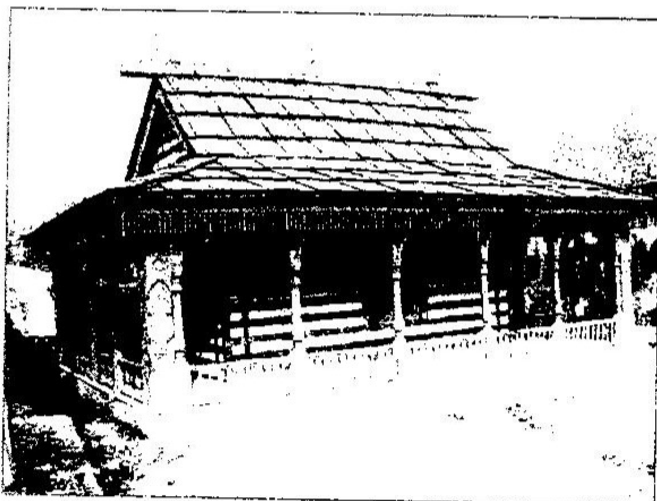
मेले-त्योहार : फाल्गुन शुक्ल एकादशी को *फागली* मेला, भाद्रपद संक्रांति को देवता का *जन्मोत्सव* मनाया जाता है। इस अवसर पर देवरथ ग्राम के प्रत्येक घर में 'धूप पीने' जाता है। लोग देवता से 'पूछ' डालते हैं और 'चरुआ' बनाया जाता है। आश्विन संक्रांति को तीन दिवसीय मेला लगता है जिसे *शौयरी मेला* के नाम से जाना जाता है। इस मेले में देऊखेल और नाटी आदि के कार्यक्रम होते हैं।

जनश्रुति : स्वर्ग से उतरकर नारायण देव सर्वप्रथम मनाली में आकर सियाल गाँव में रहने लगे। कुछ समय पश्चात् यहाँ महादेव आए। सुरम्य स्थल देखकर उनकी भी यहाँ रहने की इच्छा हुई। अतः उन्होंने नारायण देव से यह स्थान अपने लिए माँगा। उनकी विनती पर नारायण ने सियाल गाँव छोड़ शांगचार गाँव में अपना स्थान बनाया। वहाँ भी कुछ समय बाद देव जमलू ने आकर नारायण को वह स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाने को कहा। नारायण ने इसका विरोध किया। दोनों में खूब वाद-विवाद हुआ और अंत में तय हुआ कि जो पत्थर को उंगली से कुरेद कर ओखली बनाएगा उसी का इस स्थान पर अधिकार होगा। इस चुनौती में नारायण देव हार गए और उन्हें वह स्थान छोड़कर लिगन गाँव में जाना पड़ा। वहाँ उनकी उत्पत्ति के बारे में तब पता चला जब गाँव के कठारी खानदान के एक परिवार की गाय शाम को कम दूध देने लगी। इसका कारण जानने के लिए उन्होंने एक दिन गाय का पीछा किया और उसे एक पिंडी पर दूध की धार छोड़ते देखा। घर आ कर कठारी ने गाय को दुहा और कहा-यदि पिंडी देवता की है तो दूध का अभी दही बन जाए। वैसा ही हुआ। अगली प्रातः जब उस स्थान पर गए तो देखा कि मकड़ी ने पिंडी के चारों ओर एक जाला बुना हुआ था। लोगों ने उतने क्षेत्र में मंदिर का निर्माण किया और देवता की पूरे गाँव में मान्यता हुई। गाँव के नाम पर इसे *लिगनू देऊ* ही कहा जाता है। देवता के पुरोहित के अनुसार यह श्याम नारायण है।

नीलकंठ महादेव

गाँव : डोबा, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : डोबा।



भंडार : गाँव ब्राण में काठकुणी शैली में बना साढ़े तीन मंज़िल का।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर ब्राण गाँव से लगभग आधा कि.मी. की दूरी पर गाँव डोबा में स्थित है। मंदिर के साथ लगी धौज़ (काष्ठ की ऊँची शहतीर) दूर से ही इस स्थान पर मंदिर होने की सूचना देती है। इसकी चारों ओर को ढलानदार छत स्लेटों से ढकी हुई है। मंदिर की काष्ठकला तथा छत के साथ लगी झालरें शोभनीय हैं। मंदिर में प्राचीन शिवलिंग स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव ब्राण, डोबा, पूजन तथा रामपुर।

प्रबंध : कारदार, गूर, कठारी, पुजारी, काईथ की समिति। इनमें से गूर को देवता चुनता है तथा कारदार का चयन जनता द्वारा देवता के मार्गदर्शन में होता है। पुजारी वंशानुगत होता है। अन्य कर्मचारी-जठेरे और बारी की संख्या चार-चार होती है। दोनों अस्थायी पद हैं। निश्चित अवधि के बाद इनका पुनः चयन किया जाता है।

न्याय प्रणाली : 'सौह-कैसमी, देऊ पाणा, गुऐ ग्राह कर, पूछ, गैटी व पोगै' द्वारा।

पूजा : मंदिर में प्रति दिन प्रातः-सायं गुग्गुल धूप से पूजा

होती है। पूजा के समय शंख और झाँझ का प्रयोग होता है। मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर जब देवरथ सजा होता है तो उसकी सुबह-शाम अलग से तब तक पूजा होती है जब तक रथ की साज-सज्जा उतार कर उसे भंडार में न रख दिया जाए। रथ की पूजा 'धड़छ' में बेठर (जड़ी धूप) जला कर घोंडी, वाद्ययंत्रों-ढोल, नगारा, ढौंस, भाणा आदि तथा चंदन, पुष्प, जल, अक्षत, मोर मुट्ठा और चंवर के साथ होती है।

रथ : अखरोट की लकड़ी का फेटा।

मोहरे : नौ। इनके अतिरिक्त पूजन गाँव के देवता नारायण का एक मोहरा भी रथ में लगाया जाता है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की संक्रांति को *जेठा बिरशू* तथा चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को *नवसंवत्सर* मनाया जाता है। बैसाख मास की संक्रांति को *कोन्हा बिरशू* तथा ज्येष्ठ मास की संक्रांति को नीलकंठ महादेव के प्रकट होने के उत्सव के रूप में *कापू* मेला मनाया जाता है। तीन दिनों तक चलने वाले इस मेले का शुभारम्भ डोबा गाँव में स्थित मूल मंदिर *कापू रा डेहरा* से होने के उपरांत ब्राण गाँव में दो दिन मेला लगता है। इस मेले में क्षेत्र के अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। देव मिलन और देऊखेल मेले के मुख्य आकर्षण होते हैं। भादों मास में *शाऊणी जाच*, फाल्गुन मास में *फागली* और *शिवरात्रि* का आयोजन होता है। *शिवरात्रि* में देव पूजन व देव प्रक्रिया के अतिरिक्त *जगराता* भी होता है और फागली में मुखौटा नृत्य का विशेष आकर्षण रहता है।

जनश्रुति : पूजन गाँव के तुलसू नामक व्यक्ति का एक समय में राजदरबार में खूब बोलबाला था, वह पूजनू नेगी के नाम से प्रसिद्ध था। किसी समय इस नेगी खानदान में एक गूँगा व्यक्ति पशु चराने का काम करता था। एक बार नेगी की कपिला गाय ने शाम को दूध देना बंद कर दिया। गूँगे से इस बारे में पूछने पर उसने अपनी अनभिज्ञता दर्शायी। तब नेगी ने स्वयं गाय का पीछा किया। उसने घर लौटने से पूर्व गाय को देऊ नाई नामक स्थान पर भेखल की एक झाड़ी के पास दूध की धार छोड़ते देखा। नेगी रहस्य जानने के उद्देश्य से पूजन तथा ब्राण गाँव के कुछ व्यक्तियों को यहाँ लाया। उन्होंने भेखल की झाड़ी को काट कर उस स्थान को खोदा। खोदने पर भूमि से शिवलिंग निकला। जब इस बात की चर्चा हो रही थी कि इसे कहाँ स्थापित किया जाए, गूँगे ने नीचे डोबा नामक स्थान में एक खेत की ओर इशारा करते हुए बताया कि देवता वहाँ रहना चाहता है, क्योंकि उसने शिवलिंग के स्थान से एक मोनाल को उड़कर उस खेत में बैठते देखा था। इसे केवल गूँगा ही देख पाया था। अतः दूसरे लोगों को उस पर विश्वास नहीं हुआ। वे सभी शिवलिंग को उठा कर ब्राण गाँव की ओर चल पड़े।

डोबा नामक स्थान में कोई बस्ती नहीं थी, केवल खेत ही थे। वहाँ पहुँच कर वे एक समतल और ऊँचे स्थान में शिवलिंग को नीचे रख कर आराम करने लगे। कुछ समय बाद जब वे चलने को तैयार हुए तो उनसे शिवलिंग नहीं उठाया गया। अभी वे विचार ही कर रहे थे कि गूँगे में देवशक्ति का प्रवेश हुआ और वह बोलने लगा। गूँगे को बोलते देख सभी ने इसे देवता का चमत्कार माना। देवावेश में गूँगे ने कहा कि वह नीलकंठ महादेव है और यहीं स्थापित होना चाहता है। सुबह जितने क्षेत्र में मकड़ी का जाला बना होगा, उतने क्षेत्र में उसके मंदिर का निर्माण किया जाए। तब लोगों ने देवाज्ञा से वैसा ही किया। वह गूँगा देवता का पहला गूर बना।

डोबा में बस्ती न होने के कारण देवता के रथ व अन्य सामान की रक्षा में कठिनाई आने से लोगों ने गूर से 'पूछ' डाल कर देवता की अनुमति से ब्राण गाँव में भंडार का निर्माण किया। यही कारण है कि देवता का मूल मंदिर डोबा में होने के बावजूद यह *ब्राणी महादेव* के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ समय बाद लोग धीरे-धीरे डोबा में आकर बसने शुरू हुए और आज यह एक गाँव है। यहाँ नीलकंठ महादेव आराध्य देवता है। देवता की सौह को *भीम सौह* भी कहते हैं। मान्यता है कि इस स्थान पर छद्मवेश धारण किए भीम का नीलकंठ महादेव से युद्ध हुआ था, जिसमें भीम हार गया था। इसी कारण इस

स्थान का नाम *भीम सौह* पड़ा है। यहीं नीलकंठ महादेव का लालू और बीरू नाम के दो निरंकुश ठाकुरों से भी युद्ध हुआ था। बताया जाता है कि कदाचित् इस क्षेत्र में इन दोनों ठाकुरों का आधिपत्य था। इनकी आज्ञा के बिना यहाँ कुछ भी करना असम्भव था।

जब लोगों ने देवता के अनुसार कार्य करना आरम्भ किया तो इन ठाकुरों के अत्याचार बढ़ने लगे। चौतड़ में इनका महल और ब्राण के पास काफी ऊँचाई पर परनाला स्थान में इनका थाना था। अतः इनके महल तक पहुँचने के लिए बिष्ट दयाऊड़, बैड़ा खनियार, बनौण और सरदारी नामक चार 'प्रोअल' (रक्षा चौकियाँ) पार करनी पड़ती थीं। नीलकंठ महादेव ने इनकी चारों प्रोअल ध्वस्त कर दीं और फिर इनके साथ जुआ-पासा खेल कर इन्हें पराजित किया। जब इनका मनोबल टूट गया तो *भीम सौह* में इनके साथ युद्ध करके देवता ने इनका अंत कर दिया। इस प्रकार के चमत्कार दिखाकर महादेव ने डोबा और ब्राण में अपनी मान्यता स्थापित कर पूजन गाँव में नारायण देवता से मित्रता करके वहाँ भी अपना स्थान बनाया। पूजन गाँव में आज भी शिव और नारायण का साझा मंदिर है। एक बार दैवी प्रकोप से पूजन के पीछे का पहाड़ गिरने से पूरा गाँव दब गया था। कहते हैं मलबे के नीचे दबा एक बजंत्री परिवार सप्ताह भर ढोल बजाता रहा, लेकिन लोग उसे बचा न सके। गाँव के बचे हुए इने-गिने लोग तब डोबा में जाकर बस गए। पूजन गाँव की एक गर्भवती स्त्री दुर्घटना के दौरान अपने मायके गई हुई थी। बताया जाता है कि उसी की संतान से दशकों बाद यह गाँव पुनः बसा।

नीलासुरी

गाँव : हरिपुर, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : हरिपुर।

भंडार : माधोराय के पुजारी श्री दौलत राम आचार्य के घर में।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित पहाड़ी शैली में बना डेढ़



मंज़िल का मंदिर जिसकी छत स्लेटों से ढकी है। मंदिर के प्रांगण में काष्ठ ध्वज और सिंह की मूर्ति स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : हरिपुर।

प्रबंध : कोई समिति नहीं, ठाकुर माधोराय का कारदार प्रबंध व्यवस्था देखता है।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन, धूप जलाकर।

रथ : दो व्यक्तियों द्वारा उठाया जानेवाला फेटा रथ, जो माधोराय के मंदिर में ही रहता है।

मोहरे : रजत निर्मित चौदह।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की शुक्ल प्रतिपदा को *जवाड़ी जाच*। इस दिन पुजारी के घर से माता के मोहरे व आभूषण नगाल (बाँस) के 'करडू' में रखकर माधोराय के मंदिर में लाए जाते हैं। देवी के रथ का शृंगार करके माता को उनके डेहरे (मंदिर) में लाया जाता है। देवचारा (देव कार्यवाही) पूर्ण करने के बाद माँ गाँव के हर परिवार में जाकर 'धूप पीती' और सायंकाल में माधोराय के मंदिर में रहती है। दूसरे दिन गाँव सरसेई के *जवाड़ी मेले* में जाती है, जो तीन दिन तक चलता है। इस मेले में सात-आठ अन्य देवता भी सम्मिलित होते हैं। चौथे दिन माँ को भंडार में रख दिया जाता है। वैशाख मास की संक्रांति को मंदिर में *चरुआ* (ब्रह्मभोज) बनाया जाता है। इस दिन भंडार से केवल माता की घंटी व धड़छ को ही बाहर लाया जाता है। दूसरे दिन रथ को सजाकर मंदिर

ले जाते हैं, जहाँ देवचारा पूर्ण होने के उपरांत देवी गाँव के सभी घरों में जाकर धूप पीती है। शाम के समय माधोराय के मंदिर में रथ का शृंगार उतारकर मोहरे, आभूषण आदि पुजारी के घर रख दिए जाते हैं। ज्येष्ठ मास में नवमी के दिन मंदिर में शाम को ब्रह्मभोज बनाया जाता है। दूसरे दिन रथ पर सज्जित होकर देवी धूप पीने जाती है। तीसरे दिन गाँव की परिक्रमा करती है, जिसे *देवी रा फेरा* कहते हैं।

पार्वती माता

गाँव : खखनाल, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : चौंग।
मंदिर : खखनाल।
भंडार : अपना भंडार नहीं। मोहरे, आभूषण व छत्र आदि कार्तिक स्वामी के भंडार में रखे जाते हैं।



स्थापत्य : काष्ठ प्रस्तर से निर्मित पहाड़ी शैली का डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी चौतरफा ढलवाँ छत पर स्लेटें और शिखर पर कलशयुक्त 'बदोर' शोभित है। मंदिर के भीतर स्कंदमाता की संगमरमर की मूर्ति स्थापित है। काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।
अधिकार क्षेत्र : खखनाल।
प्रबंध : कार्तिक स्वामी के कारदार द्वारा।
न्याय प्रणाली : कार्तिक स्वामी के गूर के माध्यम से।
पूजा : मेले-त्योहार के अवसर पर जब रथ पूर्णतः सज्जित होता है तो प्रातः-सायं 'घोंडी-धड़छ' से पूजा होती है।
रथ : अखरोट की लकड़ी से बना, फेटा रथ।
मोहरे : ग्यारह। इनमें से दस मोहरे माता के तथा एक कार्तिक स्वामी का है, जो रथ पर माता की गोद में लगता है। रथ के शीर्ष पर तीन छत्र सजते हैं तथा अन्य तीन गोद में रहते हैं। सभी मोहरे व छत्र रजत निर्मित हैं।
मेले-त्योहार : चैत्र मास में चचौहली जाच, वैशाख में देवी का जन्म दिवस तथा आश्विन मास में नवरात्रों का आयोजन होता है।
जनश्रुति : पार्वती माता को खखनाल में लाने का श्रेय कार्तिक स्वामी को जाता है। ईसवी सन् 2007 के वैशाख मास की सप्तमी तिथि को मणिकर्ण घाटी के चौंग नामक गाँव में पार्वती माता के भंडार की प्रतिष्ठा के आयोजन में अन्य देवी-देवताओं के साथ कार्तिक स्वामी को भी आमंत्रित किया गया था। कार्तिक खखनाल से पहली बार अपनी माँ के पास गए थे। जब वहाँ प्रतिष्ठा समारोह पूर्ण हुआ तो कार्तिक स्वामी ने विदा होते हुए, माता की परिक्रमा कर, उनकी शक्ति को अपने में समाहित कर लिया। लौटने पर देवता के गूर ने माता के खखनाल आने की जानकारी गाँववालों को दी तो उन्होंने एक छोटा-सा मंदिर बनाकर उसमें माँ की स्थापना की और उसकी पूजा-अर्चना करने लगे। एक दिन किसी व्यक्ति को स्वप्न में देवी ने बड़ा मंदिर बनाने का आदेश दिया। पालन में गाँववालों ने छह मास के भीतर ही माता का भव्य मंदिर तैयार करके उसमें देवी की मूर्ति स्थापित की। फिर वर्ष 2008 में मोहरों और रथ का निर्माण करवाया गया।

फाहली नाग

गाँव : भाड़का, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : गोशाल।
मंदिर : भाड़का।



भंडार : गाँव प्रीणी।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का, पत्थर की स्लेटों से ढका द्विछतीय मंदिर। ऊपर की छत पर 'वदोर' लगा है। दोनों छतें लकड़ी की झालरों से शोभायमान हैं। मंदिर में काष्ठ पर सुंदर नक्काशी हुई है।

शाखा मंदिर : भाड़का।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शुरू, प्रीणी, भाड़का, अलेऊ, चचोगा।

प्रबंध : गूर, पुजारी, भंडारी, कारदार, जठाली, कठारी, छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : केवल विशेष अवसरों पर होती है।

रथ : फेटा।

मेले-त्योहार : चैत्र नवमी।

जनश्रुति : एक बार वासुकि नाग अपने मूल स्थान हलाण से घूमता हुआ गोशाल गाँव पहुँचा। वहाँ उसकी नज़र खेत में काम कर रही एक सुन्दर कन्या पर पड़ी। उसके सौंदर्य पर मोहित होकर वासुकि ने उससे विवाह का प्रस्ताव रखा, परन्तु वह इसके लिए राज़ी नहीं हुई। उस दिन तो वासुकि चला गया, परन्तु वह अवसर की तलाश में रहा। आखिर मौका पाकर उसने एक दिन युवती का अपहरण कर लिया। कुछ दिन नाग के साथ रह कर युवती किसी तरह से छूट कर अपने घर तो लौट आई लेकिन वह गर्भवती हो चुकी थी। नियत समय पर उसके गर्भ से 18 नागपुत्रों ने जन्म लिया, जिन्हें युवती ने लोकलाजवश घर के गुप्त स्थान में मिट्टी के एक पात्र *भांदल* में छिपा कर रख दिया। वह प्रतिदिन 'धड़छ' में बेठर धूप डाल कर उनकी पूजा करती और दूध पिलाती।

एक दिन वह किसी काम से घर से बाहर गई थी तो उसकी भाभी उत्सुकतावश धड़छ में धूप डाल कर भांदल के पास गई। जैसे ही उसने भांदल का ढक्कन खोला, सभी नाग-पुत्रों ने दूध के लिए भांदल से सिर बाहर निकाले। यह देख कर भय से युवती के हाथ से धड़छ छूट गया। धड़छ के अंगारों की जलन से सभी नाग भांदल से निकलकर इधर-उधर भागे। इन्हीं नागों में से *फाहली* और *शिरघण* नाम के दो नाग प्रीणी गाँव के नीचे *भाड़का* नामक एक छोटी-सी बस्ती में जा पहुँचे। इन दोनों भाइयों में यहाँ बसने के लिए विवाद हो गया। विवाद इतना बढ़ा कि इनमें प्रतियोगिता करवानी पड़ी। कहा गया कि दोनों में से जो भाई पत्थर को शलीण गौहर के उस पार के निर्धारित स्थान तक फेंकेगा, वह विजयी माना जाएगा और भाड़का में बसेगा। इस प्रतियोगिता में *फाहली* नाग जीत गया, जबकि *शिरघण* केवल कलोंट गाँव तक ही पत्थर को फेंक पाया। यह स्थान आज भी *शिरघण गोला* के नाम से जाना जाता है। परन्तु *शिरघण* नाग हारने के बाद भी नहीं माना, फिर से एक अन्य प्रतियोगिता हुई। *शिरघण* को लोहे की व *फाहली* नाग को लकड़ी की तलवार दी गई और कहा गया कि सामने पड़ी शिला को काटा जाए। इस प्रतियोगिता में भी *शिरघण* की लोहे की तलवार टूट गई, जबकि *फाहली* नाग विजयी हुआ। इस प्रकार *फाहली* नाग ने भाड़का में अपना स्थान बना लिया और लोगों ने इसे पूजना आरम्भ किया।

भांदल माता

गाँव : गोशाल, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : गोशाल।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर निर्मित साढ़े तीन मंज़िल का पहाड़ी शैली का मंदिर। इसकी धरातल मंज़िल में दो



प्रवेश द्वार हैं। ऊपर की मंज़िलों में जाने के लिये भीतर से ही रास्ता है। तीसरी मंज़िल में वरामदा है, जिसके दाईं ओर के आधे भाग में लकड़ी का जंगला और बाईं ओर के भाग में तख्ते लगे हैं। मंदिर में माता की पिंडी स्थापित है। इसे भांदल कहते हैं। इसमें कई छेद हैं। मान्यता है कि धड़छ से इसमें अंगार गिरने पर नाग इन्हीं छेदों से बाहर निकले थे। इन छिद्रों को अब गोबर और मिट्टी के लेप से लीप कर बंद कर दिया गया है।

अधिकार क्षेत्र : गोशाल तथा आस-पास के गाँव।

प्रबंध : भांदल माता के वंशजों द्वारा। वर्तमान में इनके पंद्रह-सोलह परिवार हैं। आवश्यकता पड़ने पर गाँव के अन्य परिवार भी इनकी मदद करते हैं।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से। माता का अपना कोई गूर नहीं है। उत्सवों के अवरार पर आए अन्य देवताओं के गूर के माध्यम से ही देवी अपना निर्णय सुनाती है।

पूजा : पंचोपचार विधि से दैनिक पूजा होती है।

रथ : नहीं है। इसका एक तर्क है कि सम्पन्न होने के कारण देवी कहीं नहीं जाती और न ही दूसरे गाँवों के उत्सवों में भाग लेती है। अन्य देवी-देवता ही विशेष अवसरों पर इसके प्रांगण में आकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

मोहरे : नहीं हैं। मंदिर में पिंडी (भांदल), सोने का घड़ा, सफेद व भूरे रंग के शंख, पीतल की दो घंटियाँ तथा मोरपंख हैं।

मेले-त्योहार : बैसाख मास की 29 तिथि को एक दिवसीय *छठी* मेला लगता है। मेले में एक रथ मनु ऋषि और हिड़मा देवी का तथा दूसरा संयुक्त रथ कंचन नाग, व्यास ऋषि, गौतम ऋषि का शामिल होता है। आश्विन मास की संक्रांति के तीसरे या चौथे दिन शौयरी साजा मनाया जाता है। इस अवसर पर वशिष्ठ ऋषि और पराशर ऋषि सम्मिलित होते हैं। फाल्गुन मास में *फागली* मनाई जाती है।

जनश्रुति : इसे अठारह नागों की जननी माना जाता है। यह गोशाल गाँव की एक सुन्दर कन्या थी। एक बार वासुकि नाग अपने हलाण क्षेत्र से सुंदर युवक के रूप में गोशाल गाँव आए तो वे इस कन्या पर आसक्त हो गए। वे कुछ दिन इसी कन्या के घर में ठहरे। कुछ समय बाद जब वे वापिस लौटे तो कन्या गर्भवती हो चुकी थी। समय आने पर उसके अठारह नाग उत्पन्न हुए।

उक्त जनश्रुति से देवी व गाँववासी सहमत नहीं हैं। वे इसे सतयुग की घटना मानते हैं जिसके अनुसार भांदल माता नागों कि मानस मातृ थी और इसी कारण वह देवी के रूप में पूजी जाने लगी।

मनु ऋषि

गाँव : पुरानी मनाली, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान एवं मंदिर : मनाली।

भंडार : मनाली में दो भंडार हैं। इनमें देवी हिड़मा, ढूंगरी की चल सम्पत्ति भी रखी जाती है।

स्थापत्य : एक मंज़िल के पुराने मंदिर के स्थान पर वर्ष



1991 में नए मंदिर का निर्माण किया गया है। मंदिर के गर्भगृह से बिना कोई छेड़छाड़ किए इसके चारों ओर सफेद तराशे पत्थरों से नागर शैली के मंदिर का आकार दिया गया है। इसके शिखर पर देवदार की लकड़ी की झालरयुक्त चौकोर छत पड़ी है। इस पर बदोर से सज्जित एक अन्य छोटी ढलानदार छत है। गर्भगृह में मनुऋषि की प्राचीन मूर्ति स्थापित है, जिसके शीर्ष पर मुकुट तथा बायें हाथ में वाद्ययंत्र और दायें हाथ में मशाल के आकार का शस्त्र है। इस मूर्ति के साथ सपाट प्रस्तर प्रतिमा भी है। मंदिर के अन्दर काफी पुराना एक रथ पड़ा है। सम्भवतः यह मनु ऋषि का अपना रथ है। क्योंकि कहते हैं कि आरम्भ में देवता का अपना अलग रथ हुआ करता था, लेकिन किसी घटना के बाद इस रथ को सजाना बंद कर दिया गया। तब से इसके मोहरे व आभूषण देवी हिड़मा ढूंगरी के रथ में ही सजाए जाने लगे। गर्भगृह के द्वार पर विष्णुभगवान की मूर्ति प्रतिष्ठित है। गर्भगृह के बाहर बड़ी-बड़ी सपाट प्रस्तर-मूर्तियाँ है। एक अन्य प्राचीन प्रतिमा को मंदिर के पीछे खुले में रखा गया है। इस पर दो आकृतियाँ बनी हुई हैं। सम्भवतः ये जोगिनियाँ या वीर हों। प्राचीन समय में इस मंदिर के कपाट सबके लिये खुले नहीं होते थे, लेकिन अब यह मंदिर सर्वसाधारण के लिये खोल दिया गया है। लेकिन गर्भगृह में केवल पुजारी जा सकता है। नागर शैली के इस मंदिर का बाहरी षट्कोणीय भाग काष्ठ व पत्थर से निर्मित है। इसकी दो ढलानदार छतें चद्दरों से आच्छादित हैं। दोनों छतों के बहिर्निसृत भाग में काष्ठ निर्मित गिल्लियों की झालर लटकी है। छतों के ठीक मध्य में मंदिर का आधा शिखर दूर से दिखाई देता है।

अधिकार क्षेत्र : मनाली गाँव एवं आसपास के अन्य गाँव।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में सात अथवा आठ लोगों की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से।

पूजा : प्रतिदिन पंचोपचार विधि से।

रथ : मनु ऋषि का अपना रथ नहीं है। इसके मोहरे हिड़मा देवी ढूंगरी के रथ में ही सजाए जाते हैं। मनु ऋषि को सात्विक प्रवृत्ति का माना गया है। अतः संयुक्त देवरथ होने से देवी हिड़मा को बलि देते समय मनु के मोहरों को कपड़े से ढक दिया जाता है।

मोहरे : मनु और हिड़मा के मिलाकर कुल ग्यारह।

मेले- त्योहार : मनु ऋषि और हिड़मा (हिडिम्बा) देवी के मेले साझे हैं। दे. मेले-त्योहार, हिड़मा देवी, ढूंगरी, तहसील मनाली।

जनश्रुति : पुराने समय से ही मनाली गाँव को मनुमहाराज की तपःस्थली माना जाता रहा है। वहाँ की एक महिला खुड़ में कुदाल से गोबर निकाल रही थी तो अचानक उसका कुदाल किसी पत्थर से टकराया। देखा तो एक प्रतिमा थी जिससे रक्त प्रवाहित हो रहा था। गाँववासियों ने इसे मनु ऋषि का चमत्कार मानकर इसकी प्रतिष्ठा कर इसे पूजना आरम्भ किया।

दूसरी घटनानुसार मनुऋषि किसी घर में साधुवेश में आए। इन्होंने परिवारवालों से दूध माँगा। उस घर में केवल एक बछड़ी थी। साधु ने घर की महिला से उसे ही दूह कर लाने को कहा। ऐसा करने पर जब बछड़ी के थनों से दूध निकल आया तो परिवारवालों ने इसे ऋषि का चमत्कार माना और वह लोगों में पूजित हुआ।

अन्य कथानुसार प्राचीन समय में हिमालय के इसी भू भाग में टुंडी नामक दैत्य का शासन था। मनु ऋषि ने शांडिल्य ऋषि की सहायता से उस राक्षस का वध किया, तब से वह लोगों में पूजनीय हुआ।

माधोराय

गाँव : हरिपुर, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : हरिपुर।



स्थापत्य : पूर्णतः शैल निर्मित मंदिर, जिसके गर्भगृह के ऊपर स्लेटों से आच्छादित मेरु बना है। गर्भगृह के साथ एक कमरा है, जिसकी ढलवाँ छत पर स्लेट बिछे हैं। शिखर पर 'बदोर' लगा है। मंदिर की दीवारों में चारों ओर देवी-देवताओं के चित्र उकेरे गए हैं। सामने मुख्य द्वार की ओर ब्रह्मा, विष्णु व महेश की त्रिमूर्ति निर्मित है। गर्भगृह के द्वार के ऊपर हनुमान की मूर्ति है। भीतर राधाकृष्ण की अष्टधातु निर्मित अंगुष्ठ मात्र मूर्तियाँ स्थापित हैं। साथ ही शालिग्राम, गणेश, गोपाल व हनुमान की मूर्तियाँ भी हैं। मंदिर के चारों ओर सराय बनी है। उत्तर की ओर लगभग 150 मीटर की दूरी पर प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का अन्य मंदिर है, जिसमें राजा हरिसिंह की धातु-निर्मित मूर्ति स्थापित है। साथ ही भगवान् दत्तात्रेय की संगमरमर की आदमकद मूर्ति भी है। माधोराय मंदिर के 50 मीटर पूर्व की ओर राजा हरिसिंह की माँ का मंदिर है जिसे **माता जी का मंदिर** के नाम से जाना जाता है। इसमें लक्ष्मी नारायण की संगमरमर से निर्मित मूर्ति भी स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : हरिपुर।

प्रबंध : प्रधान सचिव की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : अन्य देवता के गूर के माध्यम से, क्योंकि माधोराय का अपना कोई गूर नहीं है।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार विधि से। भोग के लिए प्रातः रसोई बनाई जाती है और शाम के समय बालभोग लगता है, जिसमें सूखे मेवे होते हैं।

रथ : पालकी तथा लकड़ी के पहियोंवाला रथ।

मोहरे : नहीं हैं, केवल राधाकृष्ण की मूर्ति है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *बसंत पंचमी,* जिसमें सायं तीन बजे मुख्य मंदिर से माधोराय को पालकी में बिठाकर रथ तक ले जाने के पश्चात् रथ को मैदान में ले जाया जाता है। परम्परानुसार एक व्यक्ति हनुमान की रस्म पूर्ण करता है। मैदान में भरत-मिलन की रस्म निभाई जाती है। तदुपरान्त माधोराय को मुख्य मंदिर में लाया जाता है। *होली उत्सव* में भगवान् को पालकी में बैठाकर मेला मैदान में लाने के उपरांत फाग (होलिका) जलाई जाती है और पूजा-अर्चना के बाद माधोराय को मुख्य मंदिर में लाया जाता है। चैत्र मास में *रामनवमी* के दिन भगवान को झूला झुलाया जाता है और मंदिर में दो दिन मेला लगता है। ज्येष्ठ मास में एक दिन होने वाले जल विहार में माधोराय को पालकी में बैठाकर मुख्य मंदिर से माता के मंदिर तक ले जाया जाता है, जो आज लक्ष्मीनारायण मंदिर के नाम से जाना जाता है। मंदिर के प्रांगण में जल विहार के लिए एक कुंड है, जिसके बीच आसन पर माधोराय की मूर्ति स्थापित करके जल विहार और पूजा की रस्म निभाई जाती है। भादों मास में *जन्माष्टमी* उत्सव मनाया जाता है। मध्य रात्रि, कृष्ण जन्म के समय झूला झुलाया जाता है और

दो दिन का मेला लगता है। कार्तिक मास में पाँच दिनों तक चलनेवाला *दशहरा* उत्सव मनाया जाता है। माधोराय अपने मंदिर से पालकी में यात्रा आरम्भ करके रथ तक जाते हैं तथा रथ में विराजमान होकर दशहरा मैदान तक यात्रा करते हैं। वहाँ अस्थायी शिविर में पाँच दिन तक पूजा होती है। अंतिम दिन लंकादहन कर माधोराय अपने मंदिर में लौट आते हैं। कार्तिक मास में अन्नकूट पर्व के दौरान माधोराय की मूर्ति को पके चावलों की ढेरी पर बैठाकर पूजा की जाती है।

जनश्रुति : किसी समय कुल्लू के राजा को कुष्ठरोग हुआ और इससे मुक्ति पाने हेतु किसी पंडित ने उसे, नगर गाँव में ठाउआ नामक स्थान पर स्थापित राधाकृष्ण की मूर्तियों का चरणामृत पीने के लिए कहा। पंडित के निर्देशानुसार राजा उन मूर्तियों का चरणामृत प्रतिदिन पीने लगा और कुछ ही दिनों में वह रोगमुक्त हो गया। तब राधाकृष्ण की कृपा जानकर राजा ने हरिपुर में मंदिर बनवाकर उसमें राधाकृष्ण की विधिवत् स्थापना की।

वशिष्ठ ऋषि

गाँव : वशिष्ठ, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : वशिष्ठ के समीप ऋषिधार।

मंदिर एवं भंडार : वशिष्ठ गाँव।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बने प्राचीन मंदिर के स्थान



पर तराशे प्रस्तर व लकड़ी से उसी शैली में तीस वर्ष पूर्व डेढ़ मंज़िल के नए मंदिर का निर्माण किया गया है। इसकी दीवार में अंदर की ओर गारे की लिपाई की गई है। मंदिर के गर्भगृह में वशिष्ठ ऋषि की प्रस्तर प्रतिमा स्थापित है। स्लेटों से आच्छादित ढलवाँ छत के शीर्ष पर 'बदोर' लगा है। प्रांगण में कोटा स्टोन विछाया गया है। मंदिर के साथ ही गर्म जल के स्रोत होने के कारण इसे तीर्थ स्थल भी माना जाता है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव वशिष्ठ, मथियाणा और कोशला।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, जठाली, छड़ीदार।

न्याय : गूर द्वारा।

पूजा : प्रातः-सायं गुग्गुल धूप, 'वेठर' से।

रथ : फेटा।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : बैसाख संक्रांति को *बिरशू* मनाया जाता है। कार्तिक मास में कुल्लू दशहरे की भाँति वशिष्ठ में भी प्रतीकात्मक रूप में सात दिनों तक *दशहरा* मनाने की परम्परा है। वशिष्ठ ऋषि के मंदिर के साथ ही शिखर शैली में प्रस्तर निर्मित भगवान राम का मंदिर है। देवता के रथ को सजा कर छह दिनों तक इसी मंदिर में रखा जाता है और फिर सातवें दिन लंकादहन के प्रतीक रूप में कूष्माण्ड (पेठा) की बलि देकर दशहरा उत्सव समाप्त होता है।

जनश्रुति : आस-पास के गाँवों के ग्वाले प्रतिदिन अपने पशुओं को चराने के लिए वशिष्ठ गाँव के साथ की ऋषिधार में ले जाते थे। इनमें से एक ग्वाले की गाय ने शाम को घर में दूध देना बंद कर दिया। कई दिनों तक यह सिलसिला जारी रहा तो एक दिन परिवार का मुखिया जब गाय को चराने के लिए ले गया तो उसने गाय पर कड़ी नज़र रखी। उसने देखा कि शाम को घर लौटते समय गाय एक झाड़ी के नीचे जा कर दूध की धार छोड़ने लगी है। उसने घर पहुँच कर यह बात अपने परिवारवालों को बताई, उन्हें शंका हुई कि वहाँ अवश्य कोई देव-शक्ति है। तब उन्होंने झाड़ी को काट कर खुदाई की तो वहाँ एक

आदमकद प्रस्तर प्रतिमा निकली। यही वशिष्ठ की मूल प्रतिमा है। इस प्रतिमा को गाँव लाया गया और मंदिर का निर्माण कर उसमें विधिवत् प्रतिष्ठा की गई।

अन्य सूचना : कुल्लू घाटी के लगभग सभी देवता वर्ष में एक बार वशिष्ठ यात्रा पर आते हैं। इस यात्रा को देऊ न्हाऊण (देव-स्नान) कहते हैं। देवता के कारकुन अपने देवता को बाजे-गाजे के साथ वशिष्ठ ले जाते हैं। वशिष्ठ ऋषि को अर्घ्य देने के बाद देवता के मोहरे व आभूषण उतार कर मूल स्रोत में उनका अभिषेक किया जाता है और उन्हें पुनः रथ में सजाया जाता है। यहाँ विशेष बात यह है कि वशिष्ठ ऋषि स्वयं इस जल में स्नान नहीं करता है, वह स्नान के लिए यहाँ से लगभग 13 कि.मी. दूर भृगु तीर्थ जाता है।

वासुकि नाग

गाँव : बल्थाह, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : हलाण के नगोणी नामक स्थल पर, जहाँ केवल गूर, पुजियारा तथा देवता के विशिष्ट व्यक्ति ही प्रवेश कर सकते हैं।

मंदिर एवं भंडार : बल्थाह।

स्थापत्य : काष्ठ-प्रस्तर का काठकुणी विधि से बना साढ़े तीन मंज़िल का कोठीनुमा मंदिर जिसके चारों ओर झरोखों वाला आवरणयुक्त बरामदा है। ढलानदार छत स्लेटों से



आच्छादित है और इसके चारों ओर लकड़ी की झालर लगी है। ऊपर की मंज़िलों में जाने के लिए धरातल मंज़िल में बने दो प्रवेशद्वारों से अंदर ही अंदर सीढ़ियाँ लगी हैं। इसकी दूसरी मंज़िल में देवता के मोहरे, वस्त्राभूषण तथा अन्य सामान रखा जाता है। तीसरी मंज़िल में भंडारी रहता है जो देवता की दैनिक पूजा भी करता है। चौथी मंज़िल टाला में देव-आयोजनों के दौरान रसोई बनाई जाती है।

शाखा मंदिर : खमाहरटी तथा चरानग गाँव।

अधिकार क्षेत्र : गाँव बटाहर, दशाल, भोष, सरसई, रांगड़ी, भाड़का, खमाहरटी, चरानग, दमाधि, रम्मण और बढ़ईग्रां।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में अस्थायी समिति।

न्याय प्रणाली : जठेरे के माध्यम से, सोलह सदस्यीय समिति द्वारा। यदि फिर भी वादी संतुष्ट न हो तो अंतिम निर्णय गाँव की जनता करती है।

पूजा : प्रतिदिन धूप-दीप से।

रथ : तीन स्वर्ण छत्रों से शोभित करड़ू। जब भी देवता यात्रा पर निकलता है तो करड़ू में मोहरों को सजाया जाता है। इसमें दो मोहरे वासुकि नाग के तथा दो हरहरशु देवता के होते हैं। इस तरह एक ही करड़ू में दो देवताओं की स्थापना है। जब ये वशिष्ठ तीर्थ की यात्रा पर जाते हैं तो हरहरशु देवता के मोहरे अग्रभाग में होते हैं और जब ये रुद्रबाग जाते हैं तो वासुकि नाग के मोहरे अग्रभाग में सजाए जाते हैं। करड़ू को उठानेवाले व्यक्ति को निर्धारित कड़े नियमों का पालन करना पड़ता है।

मोहरे : रजत निर्मित चार मोहरे जिन पर स्वर्ण से नक्काशी की गई है।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में बुआई-फागली उत्सव मनाया जाता है। इस उत्सव का आरम्भ देवता के मूल स्थान बल्थाह से तथा मुख्य आयोजन खमाहरटी गाँव के कोटलू सौह नामक स्थान पर होता है। इसमें प्रथम रात्रि को मुखौटा नृत्य किया जाता है, जिसमें राजपूत परिवार के चार व्यक्ति प्राचीन मुखौटे पहन कर नृत्य करते हैं,

जिसका उद्देश्य दुष्ट शक्तियों को दूर भगाना होता है। उनके नृत्य से वनदेवियाँ जागृत हो जाती हैं अतः इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिए ग्रामीणों को नियमों का पालन करना पड़ता है। चैत्र मास के पहले वीरवार को छोटी फागली मनाई जाती है। आश्विन मास के 14, 15, 16 प्रविष्टे को शौईरी उत्सव मनाया जाता है।

अठारह-बीस वर्षों के अंतराल में देवता की इच्छानुसार काहिका का आयोजन होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य पृथ्वी पर बढ़ते धर्म को नष्ट करना होता है। काहिका के लिए नड़ों को सोयल गाँव से बुलाया जाता है।

कोठी नग्गर के अंतर्गत आनेवाले छाकी गाँव में कुश्टी-काहिका मनाया जाता है। इसमें तंत्र-विद्या की सिद्धि की जाती है।

दस बारह वर्ष में एक बार देवता पार्वती घाटी के रुद्रनाग नामक स्थान में जाता है। हलाण के किसी गाँव में नया मंदिर बनने की स्थिति में वासुकि नाग को शुद्धि हेतु वशिष्ट गाँव में ले जाकर शाही स्नान करवाया जाता है। देवता कुल्लू दशहरा में सम्मिलित होता है लेकिन ढालपुर मैदान तक नहीं आता क्योंकि नाग परम्परा में किसी भी नाग को नदी पार करना वर्जित है। अतः देवता को ढालपुर मैदान के सामने नदी पार अंगू डोभी गाँव में ठहराया जाता है और देवरथ यहाँ आठ दिन तक रुकता है।

जनश्रुति : वासुकि नाग का जन्म कश्यप ऋषि की असुर पत्नी दिति की कोख से हुआ था। पौराणिक कथानुसार मणिकर्ण नामक स्थान पर स्नान करते हुए जब पार्वती के कर्णाभूषण की मणि खो गई तो अत्यंत प्रयास करने पर भी शेषनाग वास्तविक मणि को खोजने में असफल रहे। तब शेषनाग के कहने पर वासुकि नाग ने पृथ्वी पर आकर वह मणि ढूँढ निकाली थी। शिव-पार्वती से आशीर्वाद लेकर वासुकि नाग हलाण की पहाड़ियों में रम गया और बल्थाह गाँव में एक मोहरे के माध्यम से देवता के रूप में प्रकट होकर लोगों द्वारा पूजित हुआ।

विष्णु

गाँव : सजला, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : सजला।

स्थापत्य : एक कक्ष का काष्ठ-प्रस्तर निर्मित एक मंज़िल का मंदिर। कक्ष के बाहर खुला प्रदक्षिणा पथ है। इसके



चारों ओर नक्काशीदार स्तम्भ हैं, जिन पर मंदिर की सपाट छत पड़ी है। इसी छत के मध्य में लकड़ी की कड़ियों पर पड़ी दो ओर की छत काफी ढलानदार है जिस पर 'बदोर' लगा है। सामने से ऊपर की छत त्रिभुजाकार लगती है। छत पर लकड़ी की बनी झालरें सज्जित हैं। मंदिर में लकड़ी पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव सजला, धमसु और समस्त बरशाई कोठी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में समिति।

न्याय प्रणाली : देवता द्वारा गूर के माध्यम से तथा विशेष परिस्थिति में 'मलोही' डालकर।

पूजा : प्रातः-सायं धूप-दीप से।

रथ : खड़ा, इसे दो व्यक्तियों द्वारा कंधे पर उठाया जाता है।

मोहरे : ग्यारह, जिनमें से दस मोहरे विष्णु के तथा एक गरुड़ का है।

मेले-त्योहार : जन्माष्टमी के अवसर पर मेला लगता है, जिसमें 'देऊखेल' होती है।

जनश्रुति : रियासती काल में गाँव सजला पर राजा जयसिद्ध का राज था। वह गाँव उस समय दीनानगरी के

नाम से जाना जाता था। राजा विष्णु भक्त था। उसने वहाँ के वन में *बालू उमसण* नामक कुंड के पास कई वर्षों तक तपस्या की। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने दर्शन देकर उससे कहा कि यदि वह दीनानगरी में विष्णु की स्थापना करेगा तो उसके राज्य में सुख-समृद्धि रहेगी। प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन से राजा कृतकृत्य हुआ। उसने गाँव में मंदिर बनवा कर उसमें विष्णुजी की मूर्ति स्थापित की। लोक विश्वास के अनुसार एक समय किसी देवता के कोप से इस क्षेत्र में सात बार आग लगी। तब से इस गाँव का नाम सजला यानी सात बार जला पड़ा।

शरबणी देवी

गाँव : शूरू, **तहसील** : मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : शूरू।

स्थापत्य : प्राचीन मंदिर काठकुणी शैली में बना था, जिसे अब नया रूप दिया गया है। डेढ़ मंज़िल के इस मंदिर में काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है। छत स्लेटों से ढकी है, शिखर पर बदोर लगा है और चारों ओर काष्ठ गिल्लियों की अवलि शोभित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शूरू और प्रीणी।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, जठाली, मढारी, छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर ही पूजा होती है। पूजा में बेठर का प्रयोग होता है, जो सुदूर पहाड़ों



पर मिलता है। इसे लोहे के औज़ार से काटना पाप माना जाता है, अतः हाथ से तोड़कर इकट्ठा करके इसे सुखा कर धूप के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। 'धौड़छ' में अंगारे डाल कर उसके ऊपर घी मिलाकर बेठर रख दिया जाता है, जिससे दूर-दूर तक खुशबू फैल जाती है। यही बेठर देवता की 'शेष' के रूप में हारियान (प्रजाजनों) व श्रद्धालुओं में बाँटा जाता है।

रथ : फेटा।

मोहरे : आठ तथा छत्र सात।

मेले-त्योहार : *सीता नवमी, बैसाख मास में चार दिवसीय* मेला।

जनश्रुति : महाभारत युद्ध में कौरवों पर विजय पाने के लिए जब अर्जुन ने पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से इन्द्रकील पर्वत पर भगवान शिव की उपासना की तो शिव ने अर्जुन की परीक्षा लेनी चाही। तब वे पार्वती के साथ शबर और शबरी के भेस में इन्द्रकील पर्वत की ओर निकल पड़े। शबरी पर्वत के पास एक स्थान में रुकी, जिसका नाम बाद में शूरू पड़ा। शिवजी ने वहाँ से कुछ आगे चल कर मायावी हिरण को प्रकट किया, तब अर्जुन और शिवजी ने एक साथ हिरण को मारा, परन्तु शिकार को प्राप्त करने के लिए दोनों में भिड़ंत हो गई। इस युद्ध में अर्जुन की शक्ति से जब शिवजी आश्वस्त हुए तो उन्होंने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया। शिव जी और अर्जुन के इस संघर्ष स्थल को *अर्जुन गुफा* के नाम से जाना जाता है और जहाँ शबरी ने विश्राम किया था, वह स्थान शूरू गाँव वासियों के लिए पूजनीय स्थल बन गया। देवी को शूरू माता और शरबणी देवी के नाम से पूजा जाता है।

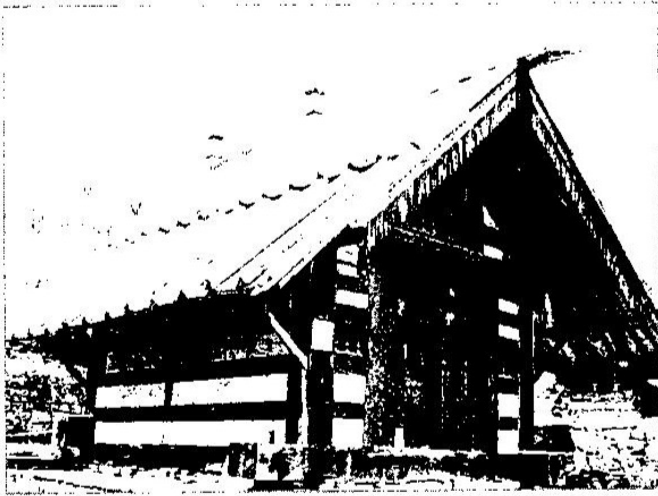
शांडल रिखी

गाँव : शलीण, **तहसील** : मनाली।

मूल स्थान : शलीण में कलोंट नामक स्थान।

मंदिर एवं भंडार : शलीण।

स्थापत्य : गाँव के मध्य काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर झरोखे व छज्जे युक्त है। इसका प्रवेश-द्वार



पूर्वाभिमुख है। यह द्वार पूर्ण रूप से लकड़ी का है, जिस पर दो खड़े व दो आड़े काष्ठ-स्तम्भ हैं। इन स्तम्भों पर बेलबूटे, फूल-पत्ते और परम्परागत चित्र उत्कीर्णित हैं। द्वार के शीर्ष पर गणेश और दोनों ओर चक्र उकेरे गए हैं। काष्ठ से ढकी मंदिर की छत पर 'बदार' लगा है तथा समान दूरी पर लकड़ी के तीन कलश स्थापित हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव शलीण, पारशा, कलाथा-रा-छियाल, कलाथ।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, मढारी, कठारी व बाज़गी की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : मेले-त्योहार आदि विशेष अवसरों पर 'धड़छ' में बेठर, गुग्गुल धूप जलाकर तथा देव धुनें बजाकर।

रथ : फेटा।

मोहरे : कुल नौ। एक बड़ा, आठ छोटे।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली*।

जनश्रुति : यह देवता मंडी से जलसा गाँव होते हुए पर्वतों को लाँघकर हामटा के उस पार केसर रोपा और फिर कलोंट पहुँचा। एक बार शलीण गाँव की एक स्त्री गोशाला में बिछाने के लिए कैल की पत्तियाँ इकट्ठी कर रही थी। इन पत्तियों के साथ यह मोहरा भी उसके किलटे में आ गया, जिससे वह इतना भारी हो गया कि उसे उठाया नहीं जा सका। जब उसने किलटा उलटा कर देखा तो उसमें मोहरा मिला। वह उसे अपने साथ ले आई और गाँव के किसी व्यक्ति को इसे दिखाते हुए पूरा वृत्तांत सुनाया। ज्यों ही उस व्यक्ति ने मोहरे को हाथ लगाया, उसे 'देऊखेल' आ गई। देवता ने अपना परिचय दिया कि वह शांडिल्य ऋषि है। तब उन्होंने गोबर के गोष्टू (उपले) से मोहरे की अराधना कर, उसे किलटे में उठा कर शलीण में स्थापित करके विधिवत् पूजा की।

उन दिनों शलीण में जमलू का आधिपत्य था। शांडिल्य ने उससे कहीं और चले जाने का निवेदन किया। जमलू ने उसकी यह बात स्वीकार नहीं की। जमलू इस स्थान को नहीं छोड़ेंगे, यह जानकर शांडिल्य ने कूटनीति से काम लिया और कहा कि पास के न्हाऊणू नामक स्थान से लकड़ी की पलीगी (एक प्रकार की गुलेल) में पत्थर बाँध कर, जो जितनी दूर तक पत्थर फेंकेगा वहाँ तक उसका वर्चस्व मानना होगा। इस पर पहले शांडिल्य ने पलीगी मारी और उसे दूर तक पहुँचाया। परन्तु जमलू ने जब अपनी बारी में पलीगी फेंकने के लिए पूरी शक्ति से हाथ पीछे किया तो शांडिल्य ने ज़ोर का धक्का दे कर जमलू को उछाल कर सुदूर चंद्रखणी जोत के उस पार मलाणा में फेंक दिया और शलीण पर अपना अधिकार जमा लिया। कहते हैं कि उस समय कुल्लू के एक बड़े हिस्से पर शांडिल्य का प्रभुत्व था, परन्तु बाद में राजा ने 'पूछ' डालकर देवता का अधिकार क्षेत्र कलाथ से शलीण होते हुए सरौढ़ नाले तक तय किया। आज यही क्षेत्र देवता की 'हार' (मान्यता-क्षेत्र) माना जाता है। देवता को शांडल रिखी के नाम से जाना जाता है।

शिरघण नाग : तक्षक नाग

गाँव : भनारा, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : भनारा।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में बना डेढ़ मंज़िल का मंदिर। इसकी चारों ओर को ढलानदार छत काष्ठ स्तम्भों पर आधारित है। कमरे के ऊपर बनी आधी मंज़िल के ऊपर दो ओर को ढलानदार छत है। शिखर पर बदार स्थापित



है। छत स्लेटों से ढकी है। सम्पूर्ण काष्ठ पर सुन्दर नक्काशी हुई है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव भनारा, जगतसुख, गोजरा व खखनाल।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी तथा चारों गाँवों के एक-एक सदस्य की समिति।

न्याय प्रणाली : 'पोगले' डालकर तथा 'मलोही' द्वारा।

पूजा : प्रतिदिन केवल सायंकाल में पूजा होती है।

रथ : फेटा।

मोहरे : बारह। मुख्य मोहरा सोने का है।

मेले-त्योहार : चैत्र मास की पूर्णिमा को *चचौहली मेला* होता है।

जनश्रुति : वासुकि नाग और गोशाल गाँव की कन्या के 18 नाग उत्पन्न हुए तो लोकलाज से उसने उन्हें एक *भांदल* (मिट्टी का बड़ा पात्र) में छिपा कर रखा। वह प्रतिदिन 'धड़छ' में स्थानीय धूप जला कर पहले उनकी पूजा करती और फिर दूध पिलाती थी। एक दिन जब वह किसी कार्य से घर से बाहर गई थी तो यही काम उसकी भाभी ने किया। लेकिन जब उसने भांदल खोली तो नागों को देखकर भय से उसके हाथ से धड़छ छूट गया और अंगारे नागों के ऊपर गिर पड़े। भयभीत होकर सभी नागों ने भांदल से बाहर निकलने की कोशिश की। ज्येष्ठ नाग ने भांदल का बिल तोड़ दिया और बिल उसके गले में फँसा रहा। घन की तरह कठोर सिर होने के कारण यह नाग *शिरघण* कहलाया। इसे शिरहन तथा तक्षक नाम से भी जाना जाता है। भागते-भागते यह नाग सबसे पहले छनालटी गाँव में पहुँचा, वहाँ से चलकर जगतसुख के गोहल पिंडी स्थान में उसने विश्राम किया। इसके बाद देवता ने भनारा के शुमतला नामक स्थान को अपना स्थायी वास बनाया और वहाँ लोगों द्वारा पूजा जाने लगा। नाग देवता ने इस क्षेत्र में जहाँ-जहाँ भ्रमण किया, वही स्थान पुण्य क्षेत्र माने जाने लगे। ऐसे ही हामटा जोत स्थित छिका नामक स्थान पर देवता ने तप किया तो वह स्थान तपस्थल बन गया। आज भी देवता दो या तीन वर्ष बाद आवश्यक रूप से अपने इस तपस्थल की यात्रा पर जाता है।

शौंकू देऊ

गाँव : नसोगी, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान : बनौण नसोगी।

मंदिर एवं भंडार : नसोगी।

स्थापत्य : देशज शैली में बना डेढ़ मंज़िल का अधिक ढलानदार छत वाला मंदिर, जिसके प्रवेश द्वार पर पौराणिक



चित्र तथा बेल-बूटे उकेरे गए हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव नसोगी व बलसारी।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, भंडारी, छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : केवल संक्रांति, मेले व त्योहारों के अवसर पर पारम्परिक विधि से।

रथ : फेटा।

मोहरे : ग्यारह।

मेले-त्योहार : वैशाख मास में *बिरशू*।

जनश्रुति : लिहाणी परिवार की एक महिला नसोगी के समीप बनौण में गोशाला में बिछावन के लिए सूढ़ (देवदार) की पत्तियाँ इकट्ठा कर रही थी। अचानक उसके टाहू (पत्तियाँ इकट्ठी करने के लिए आगे से मुड़े हुए लोहे के दाँतों वाला उपकरण) से एक वस्तु टकराई। जब उसने देखा तो वह एक मोहरा था। वह उसे गाँव में ले आई। लोगों ने मंदिर का निर्माण कर इसे शौंकू देऊ के नाम से पूजना आरम्भ किया। जिस पेड़ के नीचे यह मोहरा मिला था उसे सौहबूटी कहते हैं। चूँकि यह देवता लिहाणी परिवार की महिला को मिला था, इसलिए इस देवता का अन्य पुजारी न होकर, यही परिवार इसकी पूजा करता है।

संध्या गायत्री

गाँव : जगतसुख, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : जगतसुख।

स्थापत्य : काठकुणी विधि से बना यह मंदिर शिखर और मिश्रित पहाड़ी शैली का सुंदर नमूना है। मंदिर का निचला भाग पत्थर से और ऊपरी भाग काष्ठ व प्रस्तर से निर्मित है।

अधिकार क्षेत्र : गाँव जगतसुख, भनारा, शूरू एवं प्रीणी।

प्रबंध : कारदार की अध्यक्षता में चौंतीस लोगों की समिति। इनके अतिरिक्त सभी गाँववाले कारदार की सहायता करते हैं।



न्याय प्रणाली : गूर के माध्यम से। धड़छ में धूप जलाकर गूर देवता का आह्वान करता है। तब उसमें देवशक्ति का प्रवेश होता है और देवता अपना न्याय प्रदान करता है। इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करता।

पूजा : दैनिक पूजा होती है। मंदिर के गर्भगृह में केवल पुजारी ही जा सकता है। अन्य श्रद्धालु बाहर से ही माता के दर्शन करते हैं।

रथ : फेटा। इसे उठाने के लिए अखरोट की लकड़ी से बनी दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। स्थानीय बोली में इन्हें बोहड़ी कहा जाता है।

मोहरे : पंद्रह। इनके अतिरिक्त एक गुप्त मोहरा है।

मेले-त्योहार : फसल बोआई और कटाई दोनों अवसरों पर उत्सव मनाए जाते हैं। जब धान बीजने का समय आता था तो देवी के दरबार में पूछ लगती थी और बोआई का दिन निश्चित किया जाता था। इसी तरह फसल कटाई के दौरान भी यहाँ पूछ लगती थी। इन दोनों अवसरों पर स्थानीय जोगिनियों को तृप्त करने के लिए मंदिर से दूर कहीं निर्धारित स्थान पर पशु बलि दी जाती

थी। लेकिन अब यह परम्परा लुप्त हो रही है।

जनश्रुति : स्थानीय लोग इस मंदिर को महाभारत कालीन मानते हैं। उनका मानना है कि अज्ञातवास के दौरान पांडव जब हिमालय की ओर निकले थे तो वे अपने इष्ट देवी-देवताओं के मंदिर एक ही वृक्ष और चट्टान से रातोंरात बनाते थे और सुबह होते-होते आगे कहीं और चले जाते थे। संध्या गायत्री मंदिर का निर्माण भी पांडवों द्वारा किया माना जाता है।

सरीहटी नारायण

गाँव : अलेऊ, **तहसील :** मनाली।

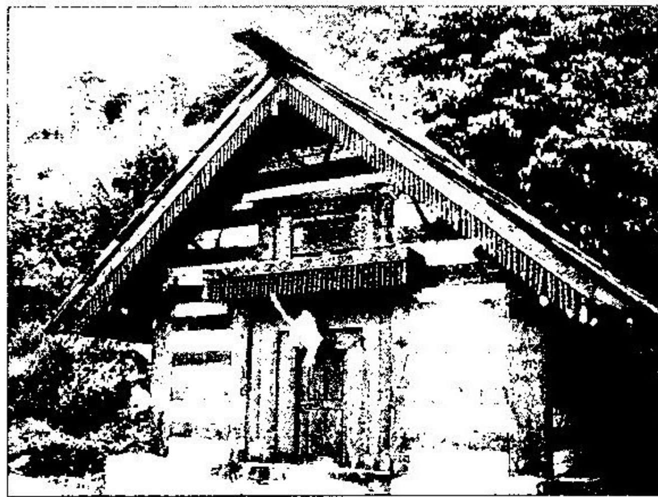
मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : अलेऊ।

स्थापत्य : काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का मंदिर, जिसकी दो ओर को ढलवाँ छत स्लेटों की है। मुख्य द्वार के छज्जे और छत के अग्र भाग में काष्ठ-झालरें लगी हैं।

अधिकार क्षेत्र : गाँव अलेऊ और चचोगा।

प्रबंध : गूर, पुजारी, भंडारी, जठाली, कठाली, छड़ीदार की समिति।

न्याय प्रणाली : देवता की अपनी न्याय प्रणाली है। इसे बहुत न्याय प्रिय माना जाता है, अतः कोई भी देवता की झूठी कसम तो दूर सामान्य कसम भी नहीं खाता, अन्यथा उसे अनिष्ट की आशंका रहती है। यदि किसी के घर चोरी-डाका जैसी घटना घटी हो तो वह हर घर से गूले (चावल की मुट्ठी) इकट्ठा करता है और इसे देवता के सामने रखकर न्याय की फरियाद करता है। ऐसा करने से चोर के यहाँ देव दोष के कारण अवश्य ही कोई अनिष्ट घटित होता है। मान्यता है कि अपराध संगीन होने पर देवता के मोहरे को धोकर वह पानी आरोपी को पिलाया जाता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है।



पूजा : केवल संक्रांतियों, मेले-पर्व-त्योहारों आदि पर ही देवता की पूजा होती है।

रथ : ढलवाँ शैली।

मोहरे : दस।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *फागली* मेला।

जनश्रुति : देखें-कार्तिक स्वामी (सामी देऊ), सिमसा की जनश्रुति।

एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार अलेऊ के *बाटी* परिवार की एक महिला किसी समय पास के लैन्ही कलौण नामक जंगल में देवदार की पत्तियाँ इकट्ठा कर रही थी कि अचानक उसके टाहू (पत्तियाँ इकट्ठा करने का यंत्र) से कोई मोहरा टकराया। वह उसे घर लाई और सुरक्षित स्थान पर रख लिया। रात को देवता ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर बताया कि वह सरीहटी देवता है और गाँव के कल्याण के लिए प्रकट हुआ है। इस तरह वह गाँव वासियों द्वारा पूजा जाने लगा। धीरे-धीरे देवता की शक्ति से प्रभावित होकर लोगों में इसकी मान्यता बढ़ी और इन्होंने मंदिर का निर्माण कर देवता को उसमें स्थापित किया।

सिंहासनी माता

गाँव : बड़ाग्राँ, **तहसील :** मनाली।

मूल स्थान, मंदिर एवं भंडार : बड़ाग्राँ।

स्थापत्य : गाँव के मध्य में स्थित काठकुणी शैली में निर्मित डेढ़ मंज़िल का यह मंदिर चौदह फुट लम्बा और दस फुट चौड़ा है। छत स्लेटों से ढकी है और किनारों पर लकड़ी की झालरें शोभायमान हैं। मंदिर में प्रयुक्त काष्ठ



पर सुन्दर कलाकृतियाँ उत्कीर्णित हैं। मंदिर के साथ देव सौह व भंडार है तथा मंदिर के भीतर माता सिंहासनी की संगमरमर की मूर्ति स्थापित है।

अधिकार क्षेत्र : बड़ाग्राँ पंचायत के सभी गाँव।

प्रबंध : कारदार, पुजारी व अन्य कारकुन।

न्याय प्रणाली : 'पूछ, अर्ज़, पोगै, लोहै रा गीचा, छेले-बौकरे' द्वारा तथा देवता की कसम खा कर।

पूजा : प्रातः-सायं पंचोपचार पूर्वक होती है। प्रतिदिन प्रसाद चढ़ाया जाता है, पूजा में आरती गायी जाती है तथा ढोलक, चिमटा, झाँझ आदि बजाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त देवरथ की पूजा केवल मेले-त्योहारों आदि अवसरों पर 'घोंडी-धड़छ' तथा देववाद्यों की विशेष धुन पर की जाती है।

रथ : फेटा। इसके शीर्ष पर सात छत्र शोभायमान हैं।

मोहरे : बारह।

मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *शिवरात्रि*, बैसाख मास की संक्रांति को *बिरशू*, पौष मास की अमावस्या को *दियाली*। दियाली के दिन प्रत्येक घर के आँगन में रात को अलाव जलाया जाता है, जिसकी रोशनी से न केवल बड़ाग्राँ बल्कि पूरी घाटी प्रकाशयुक्त हो जाती है। प्रातःकाल *जागरे* के रूप में लकड़ी के बड़े-बड़े ठेलों को जलाया जाता है। अगले दिन देवी-देवताओं के रथ सहित अनेक दल ढोल-नगाड़ों की विशेष धुनों के साथ *जीहरू* (अश्लील गाने) गाते हुए आते हैं और एक व्यक्ति विशेष के सिर पर मेढ़े के सींग बाँध कर उसे मूसल पर उठाकर लाया जाता है। यहाँ धान की पराल से बने रस्से से दो दलों द्वारा रस्सा-कस्सी का खेल भी खेला जाता है। यह प्राचीन समय से ही निर्धारित है कि किस गाँव का व्यक्ति किस दल में शामिल होगा और क्षेत्र के लिए किस दल की विजय शुभ और किस की अशुभ होगी।

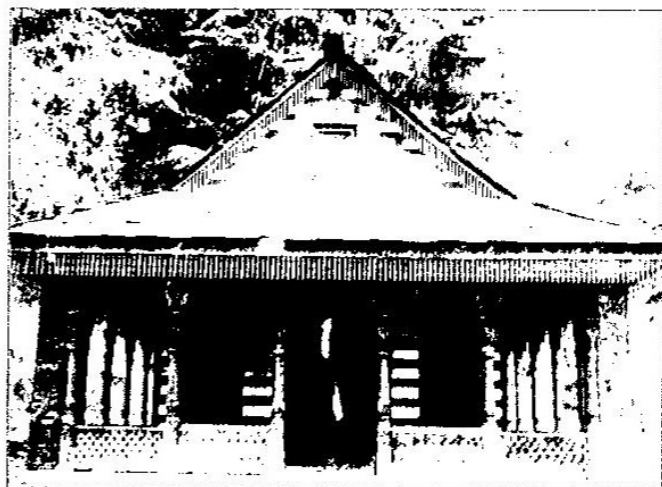
जनश्रुति : देवी सिंहासनी को देवी चिंगासणी अथवा चौंगासणी, खलासणी, खडासणी में से सबसे छोटी बहन माना जाता है। ये महाचिन से चलती हुई कुल्लू पहुँची थीं। इनमें से एक देवी ने नगर में, दूसरी ने चौंग में, तीसरी ने भाड़का में तथा चौथी देवी सिंहासनी ने बड़ागाँव में अपना स्थान बनाया। यहाँ देवी सिंहासनी किसी की क्यारी में साग के पौधे में निवास करने लगी। इस पौधे से प्रतिदिन जितने पत्ते तोड़े जाते, रातोंरात उसमें दोगुने पत्ते उग आते। यह देखकर क्यारी के मालिक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इसे दैवीय चमत्कार समझकर पौधे को पूजना आरम्भ किया। एक दिन प्रातः जब वह पूजा करने गया तो उसे वहाँ एक मोहरा दिखाई दिया। उसने उस मोहरे को घर लाकर उसकी नियमित पूजा शुरू की।

एक दिन देवी ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर कहा कि वह प्रातः अमुक स्थान पर जाए और वहाँ जितने क्षेत्र में मकड़ी ने जाल बुना हो उतने स्थान पर उसके मंदिर का निर्माण करे। अगली प्रातः वह व्यक्ति माता द्वारा बताए गए स्थान पर गया और जाल को देख कर उसने ग्रामवासियों की सहायता से वहाँ मंदिर का निर्माण किया। इस गाँव में देवता जमलू का स्थान था, अतः देवी ने उससे वहाँ रहने की अनुमति माँगी, जिसके लिए देवता जमलू सहमत हो गया था। सभी गाँववासियों ने देवता जमलू की भाँति देवी सिंहासनी को ग्राम देवी के रूप में पूजना आरम्भ किया। कहते हैं कि इस क्षेत्र में एक गाँव स्वार्थी लोगों का भी था। वहाँ के लोग अपने सिवाय किसी के बारे में भी नहीं सोचते थे। इस वृत्ति को रोकने के लिए देवी सिंहासनी एक बार अपनी तीन बहनों और तीन अन्य देवियों के साथ उस गाँव में मेला देखने गई। यहाँ देवी सिंहासनी ने

कन्या का रूप धारण कर गाँव की महिलाओं से खाना माँगा, लेकिन किसी ने भी उसे खाना नहीं दिया और स्वयं भोजन करती रहीं। तब इन देवियों ने एक तिल का दाना आपस में बाँट कर खाया। यह देखकर सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्हें मिल-बाँट कर खाने की शिक्षा मिल गई और यहाँ यह कहावत प्रचलित हो गई कि *सौत बेहणिये खाईरा एक तिल रा दाणा* यानी सात बहनों ने मिलकर तिल का एक दाना खाया।

सियाली महादेव

गाँव : सियाल, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान : सियाल (इसे नाथै री बाग भी कहते हैं)।
मंदिर एवं भंडार : सियाल।
स्थापत्य : देवता का प्राचीन मंदिर डेढ़ मंज़िल का था।

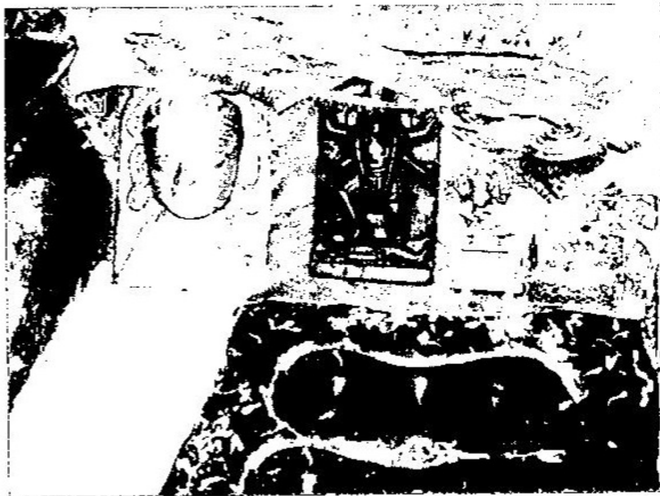


तख्तों से ढकी छत दो ओर को काफी ढलानदार थी। इसके शिखर पर लगे 'बदोर' पर लकड़ी के कलश सजे थे। इस मंदिर के स्थान पर लगभग पाँच वर्ष पूर्व काष्ठ व प्रस्तर से मेरु संयोजन शैली में नए मंदिर का निर्माण किया गया है। इसके चारों ओर बरामदा है। बरामदे की सीमा में नक्काशीदार स्तम्भ खड़े हैं। इन्हीं पर मंदिर की छत डाली गई है। निचली छत चौतरफा ढलानदार है, उसके ऊपर बीच में थोड़ी चिनाई के बाद चारों ओर को ढलवाँ एक अन्य छत है, जिसके ऊपर दो ओर पूर्ण ढलानदार छत है। इसके आधे भाग में पीछे की ओर मेरु बना है तथा अग्रभाग में बदोर लगा है। मंदिर की छतें स्लेटों से ढकी हैं।

शाखा मंदिर : सियाल।
अधिकार क्षेत्र : गाँव सियाल व बलसारी।
प्रबंध : कारदार, गूर, भंडारी, जठाली व कुंजीदार की समिति।
न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।
पूजा : नित्य प्रति पूजा के अतिरिक्त संक्रांति व मेले-त्योहारों के अवसर पर 'घोंडी-धड़छ' से पारम्परिक पूजा भी होती है।
रथ : फेटा।
मोहरे : दस।
मेले-त्योहार : फाल्गुन मास में *शिवरात्रि* तथा बैसाख मास में *चचौहली* मेला।
जनश्रुति : कदाचित् एक गूँगा व्यक्ति सियाली महादेव मंदिर के समीप खेत में हल चला रहा था। अचानक हल के फाल से टकरा कर एक प्रस्तर प्रतिमा भूमि से बाहर निकली। गूँगे ने वह प्रतिमा एक स्थान पर रखी और फिर हल चलाने लगा। थोड़ी देर बाद प्रतिमा ने गूँगे से कहा कि उसे अमुक स्थान पर स्थापित किया जाए। दैवी शक्ति से गूँगे ने बोलना शुरू कर दिया। उसने गाँव जाकर यह घटना गाँववासियों को सुनाई। देवता के चमत्कार से प्रभावित होकर लोगों ने उसकी पूजा आरम्भ करके, बाद में गूँगे द्वारा बताए गए स्थान पर मंदिर का निर्माण कर महादेव की इस प्रतिमा को वहाँ स्थापित किया।

हिड़मा : हिडिम्बा देवी

गाँव : ढूँगरी, **तहसील :** मनाली।
मूल स्थान एवं मंदिर : ढूँगरी।
भंडार : मनाली गाँव।
स्थापत्य : पैगोड़ा शैली में बना मंदिर, जिसमें चार छतें हैं। मंदिर के प्रवेश द्वार पर टाँकरी लिपि में लिखे लेख के



अनुसार इस मंदिर का निर्माण राजा बहादुर सिंह द्वारा करवाया गया। जनश्रुति है कि जिस कारीगर द्वारा इस मंदिर का निर्माण किया गया था, उसका एक हाथ राजा के आदेश पर काट दिया गया था ताकि वह ऐसा सुन्दर मंदिर अन्यत्र न बना सके।

शाखा मंदिर : मनाली नगर।

अधिकार क्षेत्र : गाँव मनाली, ढूँगरी, भजोगी।

प्रबंध : कारदार, गूर, पुजारी, जठाली, हेसी, ढोली, ढौंसी, नगारची, काहलची, नरशिंगची, करनालची की समिति।

न्याय प्रणाली : गूर द्वारा।

पूजा : 'धड़छ' में 'बेठर' डालकर प्रतिदिन पूजा होती है। गुग्गुल धूप भी जलाया जाता है।

रथ : दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ जिसके मुख भाग में दोनों ओर स्वर्ण के गुंबद बने हैं, जिनपर स्वर्ण निर्मित छत्र शोभित हैं। रथ के बाईं ओर रजत से बनी गदानुमा विशाल देऊ छड़ी बंधी रहती है। देवी का यह रथ मनु ऋषि मनाली के साथ साझा है।

मोहरे : ग्यारह। मनु के मोहरे व आभूषण भी देवी हिडिम्बा के रथ में ही सजाए जाते हैं, क्योंकि मनाली गाँव में मनु का मंदिर तो है, परन्तु देवरथ नहीं है। कभी रथ हुआ करता था, परन्तु किसी घटना के पश्चात् मनु के रथ को सजाना बंद कर दिया गया।

मेले-त्योहार : ज्येष्ठ मास की संक्रांति को *ढूँगरी जाच* का आयोजन होता है। प्रथा के अनुसार देवी के निमंत्रण पर मेले में गोशाल गाँव का कंचन नाग, बुरुआ का जमलू देवता, वशिष्ठ गाँव का वशिष्ठ मुनि, शूरू की शरबणी, अलेऊ का सरीहटी नारायण, सिमसा का कार्तिक स्वामी, पारशा का गौहरी देऊ (वीरनाथ) तथा शलीण गाँव का शांडल रिखी सजधज कर मेले में शामिल होते हैं। पौष मास की अमावस्या को दियाली का आयोजन होता है। फाल्गुन मास में *फागली* मेला होता है। देव-दानव संघर्ष की याद दिलानेवाला यह मेला सात दिनों तक चलता है। टुंडिया राक्षस, तिंबर छातकी, हिडिम्बा, मनु और शांडिल्य ऋषि से सम्बंधित कथा-कहानियों व जनश्रुतियों का सुंदर समन्वय लिए यह मेला बहुत ही रोचक होता है। इसमें राक्षसी आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए मानव बाल फूँके जाते हैं तो आसुरी शक्तियों को भगाने के लिए अलग से अनुष्ठान होते हैं।

जनश्रुति : अज्ञातवास के दौरान जब पांडव लाक्षागृह से सकुशल निकले तो उन्होंने अपना कुछ समय हिमालय में भी बिताया। ऐसे ही एक दिन इस वन्य प्रांतर में रात्रि विश्राम के दौरान शेष सभी बंधु सो रहे थे और भीम पहरा दे रहा था। अचानक उसे एक रूपसी के भेस में हिडिम्बा उधर से आती दिखी, जो अपने भाई हिडिंब के लिए भोजन की तलाश में घूम रही थी। उसने महाबली भीम को देखा तो मन ही मन उसकी ओर आकृष्ट हो गई। एक संक्षिप्त वार्तालाप के बाद दोनों एक-दूसरे के हो गए। हिडिम्बा भूल गई कि वह अपने भाई के लिए भोजन की तलाश में निकली है। उधर हिडिम्ब भी देर होने पर बहन को ढूँढने निकला। तभी उसकी दृष्टि प्रेमपाश में बंधे हिडिम्बा और भीम पर पड़ी। उसने भीम को युद्ध के लिए ललकारा। भयंकर युद्ध के पश्चात् हिडिम्ब मारा गया। तब भीम ने अपनी माँ कुंती के समक्ष हिडिम्बा से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। कुंती ने इस शर्त पर हिडिम्बा और भीम को विवाह की स्वीकृति दी कि हिडिम्बा भविष्य में मानव कल्याण के पथ पर अग्रसर रहेगी। हिडिम्बा ने राक्षसी प्रवृत्ति छोड़ी और लोक कल्याण करने लगी। इसके पश्चात् वह लोगों द्वारा जनहितकारी देवी के रूप

में पूजी जाने लगी।

ढूँगरी गाँव में हिडिम्बा के आने के सम्बंध में लोक धारणा है कि एक बार भृगुतुंग (रोहतांग) पर हिडिम्बा और उसकी बहन पींघ (झूला) झूल रही थी कि भीम को शरारत सूझी और उसने पींघ का रस्सा काट दिया। रस्सा कटने पर हिडिम्बा सुदूर मनाली स्थित एक चट्टान पर जा गिरी। हिडिम्बा की ढांग (कमर) जिस पत्थर पर पड़ी वह *हिड़मे री टोल्ह* (हिडिम्बा की चट्टान) कहलाई। ढांग से यह स्थान कालांतर में *ढूंगरी* कहलाया और यहीं देवी के मंदिर का निर्माण किया गया।









पुस्तक में आए स्थानिक सांस्कृतिक शब्दों का परिचय

कठियाला : देवता का एक कार्यकर्ता। भंडारी के पास काम की अधिकता होने के कारण उसकी सहायता के लिए कठियाला नियुक्त होता है। देवता की कोठी की देखभाल करना इसका काम है। भंडारी की अनुपस्थिति में यह भंडार की रक्षा के लिए पहरा देता है। देवता के लिए देय अन्न और धन को एकत्र करना भी *कठियाला* का काम है।

करडू : सिर पर उठाया जानेवाला नगाल या बाँस का बना टोकरे के आकार का देव-वाहन। इसका मूल ढाँचा प्रायः दो-ढाई फुट ऊँचा और इतने ही व्यास का होता है। इसे बागे (देववस्त्र), मोहरों तथा छत्रों से सजा कर देव सौह में नचाया जाता है। इसके अतिरिक्त सिर पर उठाया जानेवाला एक अन्य प्रकार का रथ भेखल की लकड़ी का बना होता है। इसकी ऊँचाई भी लगभग दो-ढाई फुट होती है। इस वर्गाकार रथ का व्यास लगभग छत्तीस इंच होता है। इसे *डाढ* कहते हैं।

कारदार : देवता का मुख्य कार्यकर्ता। देवता के प्रत्येक कार्य की ज़िम्मेदारी कारदार की है। देवता के सभी कार्य, यथा मंदिर की व्यवस्था, मुरम्मत, भूमि से देवता के भाग की वसूली, मेलों का आयोजन और उनमें व्यवस्था बनाए रखना कारदार का काम है। सरकार के दरबार में देवता की पैरवी करना भी इसी का उत्तरदायित्व है। देवता की सम्पत्ति और अधिकारों की रक्षा करना इसका कार्य होता है। इस कार्य के बदले इसे देवता के भंडार से कुछ अन्न और धन मिलता है।

काहिका : एक लोकानुष्ठान तथा उसमें बनाया गया मंडप। जहाँ काहिका का आयोजन होना निश्चित हुआ हो, वहाँ चार कोनों पर गढ़े खोद कर नड़ उसमें जंगल से लाए गए देवदार के चार छोटे वृक्षों को इस प्रकार खड़ा करता है, जिससे लगभग चार मीटर का वर्गाकार मंडप बन जाता है। उन वृक्षों पर श्वेत वस्त्र ताना जाता है, जिससे वह मंडप का रूप ले लेता है। इसे काहिका कहा जाता है। इसके नीचे बैठकर नड़ काहिका के अनुष्ठान की सारी कार्यवाही करता है।

कोंडी : बाँस की बनी हत्थी युक्त टोकरी। इसमें धूप, 'शेष' के चावल, गूर की टोपी, छोदे की थाली तथा शंख रखा होता है। यह देवरथ के साथ चलती है। किसी अवसर पर देवरथ के स्थान पर केवल *कोंडी* ही बाहर निकलती है।

कोठी : यह साढ़े तीन मंज़िल का मंदिर एवं भंडार होता है। इसकी सबसे निचली यानी धरातल मंज़िल को *खुड़* कहा जाता है। दूसरी मंज़िल को *ऊघण* कहते हैं। तीसरी मंज़िल को *बाहुड़* कहा जाता है, इसमें भंडारी रहता है। चौथी आधी मंज़िल *टाला* कहलाती है। देव आयोजनों के दौरान इसमें रसोई पकती है। इन चारों मंज़िलों को मिलाकर बने भवन को *कोठी* कहते हैं।

कौऊ-करिंदे : देवता के कार्यकर्ता। इनमें देवता का कार्य परम्परानुसार बंटा होता है। देवता के हर आयोजन में इनकी उपस्थिति अनिवार्य होती है।

गुले : किसी प्रकार की चोरी या अन्य कोई नुकसान होने पर संदेहास्पद क्षेत्र के प्रत्येक परिवार से गुले (अन्न के दाने) ग्रहण किए जाते हैं। इस प्रकार इकट्ठे किए हुए दानों को देवासन या देवस्थल पर फेंक कर देवता से अपराधी को निश्चित समय में उपयुक्त दंड देने का आग्रह किया जाता है। माना जाता है कि यदि अपराधी के घर से अन्न के दाने आए हों तो उसे निश्चय ही दंड मिलता है।

गैटी : गूर जब आसन पर बैठता है तो प्रश्न डालनेवाला व्यक्ति तीन कंकड़ों पर अलग-अलग उत्तर सोचकर, इन्हें गूर के सामने रखता है। गूर देव-शक्ति के आवेश में आकर तीनों में से एक कंकड़ को उठाने के लिए कहता

है। वही देवता का उत्तर समझा जाता है। प्रश्न पूछने की इस विधि को *गैटी* कहते हैं। कई जगह इसे *गटड़ी* डालना भी कहते हैं।

घाट : जब देवता के मोहरे, प्रतीक चिह्न आदि बहुत पुराने हो जाते हैं, चोट लगने या अन्य कारणों से इनका स्वरूप बिगड़ जाता है तो देवता की अनुमति से इन्हें पिघला कर पुनः साँचे में ढालकर नया रूप दिया जाता है। इस क्रिया को *घाट डालना* कहते हैं। घाट डालने का मुहूर्त व कारीगर का चयन देवता से पूछकर किया जाता है।

घोंडी : पीतल की बनी घंटी, जो विशेषकर देवता के गूर के पास होती है। इसे *धौड़छ* के साथ ही प्रयोग किया जाता है। कुल्लू क्षेत्र में गूर बायें हाथ में धौड़छ से देवता को धूप देता है और दायें हाथ से लगातार घंटी बजाता रहता है। कई जगह बायें हाथ में घंटी और दायें हाथ में धौड़छ लेकर पूजा की जाती है। मेले-त्योहारों आदि विशेष अवसरों पर हर घर में देवता को धूप देने की परम्परा है। लेकिन घरों में घंटी नहीं बजाते, केवल धौड़छ से धूप देते हैं।

चाकरी : देवी-देवता के कार्य में श्रद्धा-भक्ति से दिए गए योगदान को *चाकरी* कहते हैं। इसमें लोग देवी-देवता की कृपादृष्टि की कामना से मेले में शामिल होकर निष्काम भाव से कार्य करते हैं।

छटाली/जठाली : देवता का एक विशेष कारिन्दा, जो संदेशवाहक का कार्य करता है। वही देवता के हर काम की सभी सूचनाएँ ग्रामवासियों को देता है। यह दलित जाति से होता है। मंदिर में आग जलाना तथा त्योहारों पर मशालें बनाने का कार्य भी यही करता है। जिस देवी-देवता की हार पाँच-सात गाँवों में होती है, वहाँ छटाली एक से अधिक भी होते हैं।

छिद्रा : काहिका में किया जाने वाला अनुष्ठान, जिसे नौड़ सम्पन्न करता है। इसके आयोजन में देवता तथा मनुष्य के सभी पाप नौड़ अपने ऊपर ले लेता है। छिद्रा करने के लिए वह अपने पास रखे जौ के टोकरे से मुट्ठी-भर दाने हाथ में लेकर कोई मंत्र पढ़ता है और छिद्रा का उच्चारण करते हुए उन जौ को उपस्थित देवताओं के ऊपर फेंकता है। तत्पश्चात् गूर, कारदार, पुजारे, कठियाले आदि नौड़ के गिर्द दायरा बनाकर बैठते हैं। वे अपने दोनों हाथ खोल कर नड़ के सामने फैलाते हैं। नड़ पुनः मुट्ठी भर जौ लेकर मंत्रोच्चारण करते हुए सभी कारिंदों के हाथों में बारी-बारी से जौ डालता है। अंत में छिद्रा कहते हुए बाकी बचे जौ चारों ओर बैठे लोगों पर फेंकता है और वे उसे थामते हैं। इसी प्रकार बारी-बारी से लोग नड़ के गिर्द बैठते हैं और छिद्रा होने के उपरांत नड़ के आगे बिछाए वस्त्र पर पैसे डालते हैं।

छेले-बौकरे : न्याय की इस पद्धति के अनुसार दो विरोधी दल अपने-अपने छेले या बकरे लेकर देव-स्थल में जाते हैं। वहाँ विशेष पूजा के बाद देवता का आह्वान कर उन पर पुष्प, अक्षत व जल फेंकते हैं। देव-शक्ति के प्रभाव से दोषी व्यक्ति का बकरा मूर्च्छित होकर गिर जाता है, कदाचित् यह मर भी जाता है। तब देव दोष का आकलन करके कार्यकर्ता दंड निर्धारित करते हैं, जिसकी भरपाई दोषी व्यक्ति करता है, अन्यथा देवता उसे इससे भी बड़ी सज़ा देता है।

छोदा : शोधन। किसी व्यक्ति पर कोई दुःख या संकट पड़ जाए तो घर में गूर को बुलाकर *छोदा* करके इसका कारण व निवारण जाना जाता है। गूर के आगे गोबर का चौका लगाकर *धड़छ* में धूप जलाया जाता है और स्वयं व्यक्ति उसके समक्ष हाथ जोड़ कर बैठता है। तब गूर अपने बायें हाथ पर काँसे की थाली में अक्षत और बुंभरू (बेठर का सूखा फूल) लेकर दायें हाथ से काठी द्वारा थाली को बजाते हुए देवता का आह्वान कर प्रश्न का उत्तर देता है।

डेहरा/डेहरी : मूल मंदिर से अलग बना देवता का अतिरिक्त मंदिर। यह प्रायः एक मंज़िल का दो ओर को ढलानदार छत वाला होता है, जिसके शिखर पर *बदोर*

लगा होता है। इसका अग्रभाग खुला रहता है और पीछे एक कमरा बना होता है। इसमें देवता की पिंडी स्थापित होती है और कई जगह इस *डेहरे* में हवन कुंड भी होता है। इसे *देहरा* भी कहते हैं। इसमें देवता का कोई सामान नहीं रखा जाता, केवल मेले के दिन जनता के दर्शनार्थ यहाँ रथ लाया जाता है। अन्य दिनों में खाली रहने के बावजूद इसकी पवित्रता का विशेष ध्यान रखा जाता है। देवता के कारिंदों के अतिरिक्त इसमें कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता और इसके आस-पास उगे पेड़ों और झाड़ियों को भी काटा नहीं जाता। डेहरे के साथ देव सौह बनी होती है। यहाँ मेले के दिन *हुलकी* और *देऊखेल* आदि की प्रक्रिया निभाई जाती है। जितने दिन का मेला होता है, उतने दिनों तक देवता डेहरे में ही रहता है और जिस दिन मेला सम्पन्न होता है, उस दिन रथ अपने *मंढार* (मूल मंदिर) में जाता है। *मंढार* को भंडार भी कहा जाता है। *मंढार* और *डेहरे* में यह अंतर है कि *मंढार* हमेशा गाँव में ही बना होता है। यह प्रायः साढ़े तीन मंज़िल का होता है। इसमें प्रतिदिन देवपूजा होती है और देवता का साजो-सामान रखा जाता है। देख-रेख के लिए इसी में भंडारी के रहने की व्यवस्था भी होती है, जबकि डेहरा गाँव से दूर निर्जन स्थान में बना होता है और इसके पहरे के लिए कोई व्यक्ति भी नियुक्त नहीं होता है।

देऊखेल : गूर नृत्य। यह मेले में 'हुलकी' के बाद होता है। इसमें देवरथ को नहीं नचाया जाता, केवल गूर नृत्य करता है। रथ सौह में खड़ा रहता है। गूर में देव-शक्ति का संचरण होता है। तब वह देव-वाद्यों की धुन पर घोंडी-धौड़छ, साँकल, कटार, गुर्ज और भेखल की टहनी के साथ नृत्य करता है। यह मेले का मुख्य आकर्षण होता है।

देऊलू : जब देवता अपनी प्रजा का सुख-दुःख जानने के लिए अपनी *हार* के गाँवों के दौरे पर निकलता है तो देवता के साथ उसके कार्यकर्ता व अन्य गाँवों के वरिष्ठ लोग भी गाँव-गाँव जाते हैं। इन लोगों को *देऊलू* कहा जाता है। देवता के साथ आए इन लोगों का गाँव के लोगों द्वारा खूब आदर-सत्कार किया जाता है।

धूप पीणा : *धूप ग्रहण करना।* देवता का रथ विशेष अवसरों पर अपनी हार यानी प्रजा के प्रत्येक घर में जाता है। तब परिवार का मुखिया देवता को *धौड़छ* से धूप देता है और देवता उस परिवार को अपने आशीर्वाद से उपकृत करता है। इसे देवता का *धूप पीणा* कहते हैं।

धौंसी : मुख्य बजंत्री। उसके द्वारा बजाए गए धौंसे की ताल पर ढोल, नगारा, बाम, भाणा इत्यादि सारे वाद्य बजते हैं। देव-यात्रा में बजंत्रियों का नेतृत्व यही करता है। इसका चुनाव देवता द्वारा किया जाता है। धौंसे की लय से देव-रथ चलता है। जब देवता मंदिर से बाहर निकलता है तो धौंसी को भंडार से अन्न मिलता है। जब देवता के निमित्त भेडू या बकरे की बलि दी जाती है तो उसे अन्य लोगों से दोगुना भाग दिया जाता है। इसे ढौंसी भी कहते हैं।

धौड़छ : देवता की पूजा में धूप जलाने के लिए कलछे के आकार का पात्र। इसे टिकाने के लिए इसमें दो टाँगें आगे और एक पीछे बनी होती है। मेले-त्योहारों के दिन इसमें *बेठर* जला कर देवता को धूप चढ़ाया जाता है। *धौड़छ* को *धुपयारा,* दपोत तथा *धड़छ* भी कहते हैं।

नड़/नौड़ : एक जाति विशेष का व्यक्ति जिसकी काहिका आदि उत्सव में मुख्य भूमिका होती है। यह वंशानुगत होता है। काहिका में यह देव-शक्ति से मरता व जीवित होता है। इस प्रदर्शन के लिए उसे देवता की तरफ से अन्न व धन दिया जाता है। यदि कभी नौड़ मरने के बाद पुनः जीवित न हो तो उसकी पत्नी को देवता के रथ के मोहरे एवं आभूषण ले जाने का पूरा अधिकार होता है। इसके पश्चात् देव-रथ को नौड़ के साथ ही जला दिया जाता है, परन्तु ऐसा विरल ही होता है।

नुआस : किसी देवता द्वारा यात्रा के दौरान अपने मूल स्थान तथा मेले में आए अपने सम्बंधी देवता के समक्ष नमन करने की क्रिया। ऐसे अवसर पर सम्मान देने वाले देवता का गूर घोंडी-धौड़छ के साथ दूसरे सम्माननीय देवता को प्रणाम करता है।

पर्ची डालना : प्रश्नानुसार तीन पर्चियाँ लिखकर अलग-अलग जगह छुपा दी जाती हैं और देवरथ स्वयं सत्य वाली पर्ची ढूँढ कर न्याय करता है।

पिंडा/पिंडी : मंदिर में स्थापित अनगढ़ पत्थर जिसे देवता का रूप माना जाता है। इसे पिंडा या पिंडी कहते हैं।

पूछ : किसी समस्या के विषय में देवता से प्रश्न पूछना। उस समय गूर किसी ऊँचे आसन या गोबर से लिपे चौके पर बैठता है। प्रश्न पूछनेवाले लोग गूर के सामने निम्न स्थान पर बैठ कर हाथ जोड़े जयकार करते हुए, देवता का आह्वान करते हैं। इसे *देऊ सोहरणा* कहते हैं। गूर भी देवता का आह्वान करता है और क्षमा याचना करते हुए इसे गऊ और कन्याओं की सौगंध दे कर कहता है कि जब तक वह इस आसन पर बैठा है तब तक जो भी वह करे या कहे उसका दायित्व देवता का होगा। जब देव-शक्ति से गूर का शरीर काँपने लगता है तो पूछ डालनेवाले लोग अपने हाथों में लिए अक्षत को ऊपर की ओर फेंक कर जयकार की ध्वनि से देवता का स्वागत करते हैं। तब प्रत्येक प्रश्नकर्ता गूर के सामने बारी-बारी से श्रद्धा सुमन के रूप में पैसे चढ़ा कर अपना निवेदन करता है। गूर प्रायः इसका उत्तर संकेत रूप में देता है। उसका कथन देवता का वचन होता है। इस प्रक्रिया को 'पूछ' डालना कहते हैं।

पोगले : न्याय की एक प्रणाली। इसमें देवरथ को कंधे पर उठा कर उसके सामने तीन पत्थर रखे जाते हैं। *पूछ* डालने वाला आदमी इन तीनों पत्थरों में अपने तीन उत्तर ध्यान कर, देवता के सामने हाथ जोड़कर बैठता है। तब देव-वाद्यों की धुन पर नाचते हुए देवता अपनी अर्गलाओं से इनमें से एक पत्थर की ओर इंगित करता है। वही उत्तर देवता की ओर से माना जाता है। पोगले की विधि को *पौगल, पोगे* भी कहते हैं।

बदोर : मंदिर की ढलवाँ छत के शिखर पर लगा देवदार का बड़ा शहतीर। इसे विशेष पूजन और बलि आदि के अनुष्ठान के साथ छत पर स्थापित किया जाता है। सड़ जाने पर जब इसे दोबारा बदलना हो तो बकरे की बलि देकर ही उतारा जाता है। बदोर को कड़ीस भी कहते हैं।

बर्शोहा : देवता द्वारा सुनाया जानेवाला वर्षफल। सभी देवी-देवता वर्ष में एक बार पौष मास में स्वर्गलोक चले जाते हैं। वहाँ इन्द्र की अध्यक्षता में उनका वार्षिक सम्मेलन होता है। इस सम्मेलन में अन्न-धन, सुख-समृद्धि, फल-फसल, रोग-व्याधि, दुःख-दर्द, आँधी-तूफान, अतिवृष्टि-अनावृष्टि आदि का वितरण किया जाता है। इसे लेकर सभी देवता फाल्गुन मास में भूलोक में आ जाते हैं और इसके बारे में गूर के माध्यम से अपनी प्रजा को बताते हैं। इस बर्शोहा पर देवता की प्रजा पूर्ण विश्वास करके, उसी के अनुसार कार्य करती है।

बांठ : देवता का एक कार्यकर्ता। यह देव आयोजनों में भोजन बनाने का कार्य करता है।

बीण : रजत या स्वर्ण निर्मित त्रिकोणाकार बोर जड़ित पत्तर को बीण कहते हैं जो प्रायः नाग देवता के रथ के शीर्ष पर लगता है।

बेठर : एक जंगली बूटी, जिसमें सफेद रंग के पुष्प लगते हैं। अग्नि में जलाकर इसका प्रयोग धूप के रूप में किया जाता है। औज़ार से काटा बेठर पूजा में प्रयुक्त नहीं होता, अतः इसे केवल हाथ से तोड़ कर लाया जाता है। इसके पश्चात् इसे सुखाया जाता है और सूखने पर इसके फूलों को घी से थोड़ा मल कर *धड़छ* में जलाया जाता है, जिससे पूरा वातावरण सुगंधित हो जाता है।

भंडारी : देवता के भंडार का रक्षक। देवता के मोहरे, वस्त्राभूषण, साज-सामान, अन्न-धन देवता के भंडार में इसी के नियंत्रण में रहते हैं। देवता को मंदिर से बाहर लाने और वापिस मंदिर में रखने का कार्य भी यही करता है। सिर पर उठाए जाने वाले देवताओं को प्रायः *भंडारी* ही उठाते हैं।

भारथा : गाथा। इसमें देवता का पूर्ण इतिहास-वृत्तांत सुनाया जाता है, जैसे-देवता कहाँ से आया, कब आया,

रास्ते में किन्न-किन्न परिस्थितियों का सामना करना पड़ा आदि-आदि। बर्शोहा जहाँ वर्ष में केवल एक बार सुनाई जाती है वहाँ भारथा सभी मेलों में सुनाई जाती है। इसमें गूर का शरीर देव-शक्ति से काँपने लगता है और वह लय में *भारथा* गाकर सुनाता है, जबकि *बर्शोहा* देते समय गूर के शरीर में कंपन नहीं होती, वह केवल देवता का आह्वान कर इसे सुनाता है।

भौती : भोज। मन्नत पूर्ण होने पर देवता को घर पर आमंत्रित किया जाता है और अपने सगे-सम्बंधियों को निमंत्रण देकर भोज दिया जाता है। इस अवसर पर प्रायः भात खिलाया जाता है। कभी-कभी देवता की ओर से भी अपनी प्रजा को भौती दी जाती है।

मंढार : देखें-डेहरा/डेहरी।

मटमान : मन्नत पूर्ण होने पर देवता को चढ़ाई जाने वाली वस्तु तथा बकरे-मेढ़े की बलि को मटमान कहते हैं।

मल़ेघा : एक देवता के पास कई गूर होते हैं। मेले में सभी गूरों को उपस्थित रहना पड़ता है। इन गूरों में से देवता किसी एक को मुख्य गूर चुनता है। उसे *मल़ेघा* गूर कहते हैं। इसके पास अन्य गूरों से अधिक मंत्र होते हैं।

मलोही : ताज़े गोबर की बराबर वज़न की तीन पिन्नियाँ बनाकर, उन्हें दूर-दूर रखा जाता है। प्रश्नकर्ता उन तीनों पर अलग-अलग संभावित उत्तर जोड़ता है। तब देवरथ को सिर या कंधे पर उठाया जाता है। देववाद्य की ध्वनि के साथ नाचते हुए देवता तीनों में से किसी एक पिन्नी पर झुकता है। वही देवता का उत्तर होता है।

मलोही की दूसरी विधि में गोबर की तीन पिन्नियों में अक्षत, पुष्प और बेठर डाले जाते हैं। *पूछ* डालनेवाला व्यक्ति तीनों पिन्नियों में अपने प्रश्नों के अलग-अलग उत्तर सोच कर, इन्हें पानी के लोटे में डाल देता है। जो *मलोही* पानी में ऊपर आती है, उसी का उत्तर माना जाता है। *मलोही* को *मल़ोही, मनोही* और *मरोहड़ी* भी कहते हैं।

मौढ़ : मंदिर के साथ बना प्रायः तीन दीवारों का एक मंज़िला छोटा मंदिर। एक ओर से यह प्रायः खुला रहता है। इसमें मेले आदि के दिनों में देवता के कार्यकर्ता, बजंतरी आदि ठहरते हैं और अपने लिए देवता के भंडार से मिला अन्न पकाते हैं। देवता के पास जब बकरे आदि की बलि दी जाती है तो ये कारकुन यहीं अपना हिस्सा पकाते हैं।

लड्डू डालना : मंदिर प्रांगण में स्थापित देव-रथ के समक्ष गोबर के तीन लड्डू बनाए जाते हैं, जिनमें से एक में जौ, दूसरे में फूल डाले जाते हैं और तीसरा खाली रखा जाता है। फिर उन्हें *पाथे* (अन्न नापने का पात्र) में घुमाकर उस *पाथे* को देव-रथ के सामने उलटा कर दिया जाता है। प्रश्नानुसार जो लड्डू कतार से अलग निकलता है, उसी में निहित देवता का फैसला माना जाता है।

लोहै रा गीचा : देव न्याय की एक प्रणाली। इसमें प्रतिवादी दिन निर्धारित करके मंदिर में जाते हैं। वहाँ देवता के प्रबंधक देव-पूजा कर लोहे के गर्म फाल को उनके सामने रखते हैं। वे दोनों बारी-बारी से उसे उठाते हैं। देव कृपा से इस गर्म लोहे से निर्दोष व्यक्ति का हाथ नहीं जलता और दोषी का हाथ जल जाता है। तब दोष के अनुसार देवता के कारदार दंड निर्धारित करते हैं और अपराधी उसकी भरपाई करता है। अब न्याय की इस प्रणाली को नहीं अपनाया जाता, जबकि अतीत में यह आम विधि थी।

शाल़्ह : देवता के भंडार में बना छोटा कमरा, जिसमें देवता के मोहरे, वस्त्र, गहने आदि कीमती सामान रहता है।

शेष : देवता के अक्षत। इसे देवता का गूर आशीर्वाद स्वरूप अपने प्रजाजनों को देता है। समसंख्या में आने पर यह गूर को लौटाया जाता है व विषम संख्या में प्राप्त होने पर शुभ माना जाता है और इसे शीश पर धारण किया जाता है।

सोह-कैसमी : सौगंध व कसम खा कर देवता से न्याय की फरियाद करना। सच्चा व्यक्ति देवता की कसम खा

कर अपनी सच्चाई और निर्दोष होने का प्रमाण देता है। *सोह-कैसमी* की भिन्न विधियाँ हैं। प्रथम यह कि सच्चा व्यक्ति देवता के मंदिर की ओर हाथ उठा कर कहता है कि *हाऊँ देऊ छुंगा सा* अर्थात् मैं देवता को छूकर कहता हूँ कि मैं सच्चा हूँ। इस सौगंध को *देऊ छुंगणा* कहते हैं। दोषी होने की स्थिति में यदि यह सौगंध खाई जाए तो देवता उसे अवश्य दंड देता है। दूसरी सौगंध साधारणतया यह कह कर खाई जाती है कि *महादेऊ री सोह* अर्थात् महादेव की सौगंध मैं सच्चा हूँ। छोटी बात के लिए उक्त दो प्रकार से सौगंध खाई जाती है। यदि गम्भीर मामला हो तो देवस्थल पर जाकर, देवता की ओर हाथ उठा कर या किसी देव-वस्तु पर हाथ रख कर, कसम खाई जाती है। इस प्रणाली में वादी-प्रतिवादी दोनों पक्ष शामिल होते हैं। इसके अतिरिक्त एकतरफा न्याय प्रणाली का भी चलन है। मानो अनाज की चोरी हुई हो। तब चोरी से बचे अन्न के कुछ दानों को देवता के आसन पर फेंक कर निवेदन किया जाता है कि जिसने चोरी की है उसे अमुक दंड इतने दिनों के भीतर मिलना चाहिए। इसे *देऊ पाणा* कहते हैं।

सौह : मंदिर के सामने का खुला स्थान या मैदान, जहाँ देवता का मेला लगता है और देव-रथ नचाया जाता है। यहाँ मेले में आए लोग एकत्र होकर नृत्य भी करते हैं।

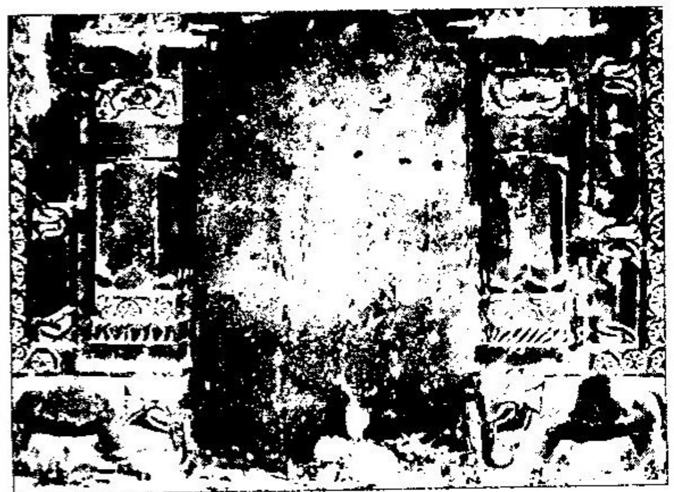
हार : देवता का अधिकार क्षेत्र, जिसमें उसकी मान्यता होती है। देवता द्वारा अपनी हार या प्रजा की सुख-शांति के लिए समय-समय पर इस क्षेत्र की यात्रा या परिक्रमा की जाती है।

हारका : देवता की अध्यक्षता में हार यानी प्रजा की बैठक। देवता के प्रत्येक मेले और त्योहार को लेकर पहले ही *हारका* किया जाता है, जिसमें उसकी व्यवस्था का कार्यक्रम निश्चित किया जाता है। यदि *हार* में अधिक सूखा, वर्षा, रोग-व्याधि फैल जाए तो विशेष हारका किया जाता है। यद्यपि इसमें हार के सभी लोग आमंत्रित होते हैं, फिर भी प्रत्येक गाँव में कारकुन होते हैं, जिन्हें आवाज़ देकर या *शेष* देकर बुलाया जाता है। यदि विपत्ति का समाधान न हो तो हारका में ही देवता अपने कारकुनों में से किसी एक को या सभी को बदल भी देता है।

हारगी : देवताओं का पारस्परिक सम्बंध, जिसमें एक से अधिक देवता मिलकर मेले-त्योहार का आयोजन करते हैं। कुछ देवताओं की स्थिति में, देवता विशेष द्वारा अपनी हार के अंदर की जानेवाली परिक्रमा *हारगी* है। वह हार के सब गाँवों में जाता है और लोग भेंट में देवता को अन्न-धन चढ़ाते हैं। *हारगी* में एकत्र हुआ अन्न-धन देवता के आयोजनों में खर्च किया जाता है।

हारियान : देवता की हार यानी प्रजा के लोग; जो देवता को मानते हैं और हर देव कार्य में अपनी सेवाएँ देते हैं।

हुलकी : देव नृत्य। मेले-त्योहारों के अवसर पर देवरथ को रंग-बिरंगे कपड़ों, मोहरों और छत्र से सजा कर मंदिर से बाहर निकाल कर देव-सौह में लाया जाता है। बजंत्री सौह में एक ओर खड़े होकर वाद्यों पर देव धुनें बजाते हैं। इनके दोनों ओर मेले में आए लोगों की भीड़ जमा होती है। हुलकी में देवरथ और गूर दोनों का नृत्य होता है। सौह में आगे गूर *घोंडी-धौड़छ* के साथ नृत्य करता है और उसके पीछे देवरथ को बाजे-गाजे के साथ तीन-पाँच-सात फेरे नचाया जाता है। इस उपक्रम को *हुलकी* कहते हैं।



कुल्लू-मनाली के देवी-देवताओं की भू-सम्पत्ति

कुल्लू खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	अग्निपाल, पाथला	-	3 बीघा, एक बिस्वा।
2.	अजयपाल : दाणी, झौकड़ी	-	4 बिस्वा।
3.	आदि ब्रह्मा, खोखण	-	पहले 1880 बीघा भूमि थी जो भूमि अधिनियम के बाद मुज़ारों के नाम चढ़ गई है, अब देवता के नाम केवल 1 बीघा भूमि है।
4.	कतरूसी नारायण, जठाणी	-	31 बीघा।
5.	कलासन, चनाहलदी	-	मात्र मंदिर एवं भंडार स्थान।
6.	कशु नारायण, बनोगी	-	गाँव का आधा भाग।
7.	कार्तिक स्वामी, नथान	-	14 बीघा।
8.	कालिया नाग, शिरढ़	-	8 बीघा।
9.	काली ओड़ी, अरछंडी	-	मंदिर एवं भंडार स्थान।
10.	काली ओड़ी, डोभी	-	भूमि अधिनियम से पूर्व लगभग 12 बीघा भूमि थी, अब मात्र 4 बिस्वे भूमि में मंदिर परिसर है। शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
11.	काली ओड़ी, बबेली	-	अधिनियम से पूर्व 1 बीघा नहरी भूमि थी। अब केवल मंदिर, सौह और भंडार की भूमि है जो लगभग 10 बिस्वा है, शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
12.	काली नाग, कराल	-	भूमि अधिनियम से पूर्व लगभग 40 बीघा भूमि थी। अब देव मंदिर परिसर सहित मात्र 10 बीघा भूमि है, शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
13.	काली माता, शाड़ाबाई	-	मात्र मंदिर परिसर।
14.	कैला वीर, डोल	-	5 बीघा।

15.	कैला वीर, थर्कू	-	7 बिस्वा।
16.	क्याणी नाग, क्याणी	-	10 बिस्वा।
17.	खडासणी देवी भाड़का	-	केवल मंदिर स्थल।
18.	गणपति, घुड़दौड़	-	3 बीघा।
19.	गर्गाचार्य, लाहशणी	-	2 बीघा।
20.	गौतम ऋषि, शाट	-	2 बीघा।
21.	गौहरी देऊ, थाच	-	पहले 14 बीघा, 5 बिस्वा भूमि थी, जो अब मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
22.	गौहरी देऊ : वीरनाथ, बड़ाग्राँ	-	8 बिस्वा।
23.	गौहरी देऊ : वीरनाथ, बारी	-	2½ बीघा।
24.	गौहरी देऊ : मंदरोल	-	देवता के पास 17 बीघा भूमि थी। वर्तमान में देवता के पास केवल 1 बीघा, 3 बिस्वा भूमि है, शेष भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
25	गौहरी देऊ : वीरनाथ, व्यासर	-	12 बिस्वा।
26.	चमन ऋषि, शिल्ह	-	1 बीघा।
27.	चामुंडा, कसलादी	-	1 बीघा।
28.	चामुंडा, धारा	-	1948 में देवता के पास 172 बीघा, 14 बिस्वा भूमि थी। सारी भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है। अब केवल 75 बीघा, 7 बिस्वा नौतोड़ है।
29.	चौंगासन, चौंग	-	2 बीघा।
30.	छमाहणी नारायण, छमाहण	-	6 बीघा।
31.	जगथम, बरशैणी	-	2 बीघा।
32.	जमलू, टिपरी	-	सारी भूमि मुज़ारियत में चली गई थी, परन्तु बजंत्री श्री रतू राम ने पुनः पंजीकृत करके देवता को वापिस दी। अब देवता के पास केवल 3 बीघा भूमि है।
33.	जमलू, तोस	-	1½ बीघा।
34.	जमलू, मलाणा	-	लगभग 100 बीघा भूमि है। यह भूमि कुछ शर्त पर गाँव वासियों को कमाने के लिए दी जाती है। उन्हें इसके बदले में कुछ अनाज कर के रूप में देवता के भंडार में जमा करना पड़ता है।
35.	जमलू, शिलाग्राँ	-	गाँववासियों द्वारा दान में दी गई 2½ बीघा भूमि है।
36.	जांबद, शांगणा	-	10 बिस्वा।
37.	जुआणू महादेव, नेऊली	-	4 बीघा, 3 बिस्वा।

38.	जौड़ा नारायण, कशाधा	-	3 बीघा।
39.	जौड़ा नारायण, पीणी	-	1 बीघा।
40.	ज्वाला माता, फोजल	-	4 बीघा भूमि तथा कुछ बगीचा।
41.	ज्वालामुखी, शमशी	-	भूमि अधिनियम से पूर्व देवी के पास काफी भूमि थी, जो मुज़ारियत में चली गई है। अब मंदिर परिसर की केवल 2 बीघा भूमि है।
42.	थान देवता, नाँगचा	-	16 बिस्वा (मंदिर परिसर तथा सौह)।
43.	थान देवता : क्षेत्रपाल, भुट्ठी	-	3 बिस्वा भूमि पर मंदिर, 1 बिस्वा में सौह है। इसके अतिरिक्त देवता के पास 2 बीघा, 9 बिस्वा भूमि है। 8 बीघा, 13 बिस्वा भूमि मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
44.	थिरमल, धारा	-	1 बीघा।
45.	दशमी वारदा, काईस	-	4 बीघा।
46.	नाग देवता, माहिष	-	केवल मंदिर परिसर की भूमि।
47.	नारायण, नरहाच	-	7 बीघा।
48.	नारायण, पुलगा	-	1 बीघा।
49.	नारायण, मेहा	-	4 बिस्वा।
50.	नैना भगवती : नागिन, मणिकर्ण	-	मंदिर परिसर की 10 बिस्वा भूमि।
51.	पंचाली नारायण, ग्रामंग	-	देवता लगभग 50 बीघे का स्वयं काश्तकार है और 6 बीघा, 70 बिस्वा भूमि मुज़ारों को चली गई है।
52.	पंजवीर, गाहर	-	5 बिस्वा।
53.	पंजवीर, तरांबली	-	6 बिस्वा।
54.	पिरडी महादेव, पिरडी	-	भूमि अधिनियम से पूर्व लगभग 100 बीघा भूमि थी। अब देवता के पास लगभग 7 बीघा भूमि है, शेष मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
55.	फलाणी नारायण, फलाण	-	25 बीघा। इसे पुजारी बीजते हैं। वे इसका आधा हिस्सा भंडार में जमा करते हैं, जिसे देव उत्सवों में प्रयोग में लाया जाता है।
56.	फुंगणी, तिऊन	-	3 बीघा, 9 बिस्वा।
57.	बिजली महादेव, चंसारी	-	भूमि अधिनियम से पूर्व देवता के पास काफी भूमि थी जो मुज़ारियत में चली गई। अब केवल 120 बीघा भूमि है।
58.	बिजली महादेव, मथाण	-	100 बीघा भूमि वर्तमान में है। सैकड़ों बीघा भूमि मुज़ारियत में चली गई है।
59.	भटंती देवी, पड़ेई	-	2 बीघा।

60.	भागासिद्ध, तलपीणी	-	देवता की काफी भूमि मुज़ारियत में चली गई है। अब केवल 8 बीघा 5 बिस्वा भूमि देवता के पास है।
61.	भागासिद्ध, नरोगी	-	10 बीघा।
62.	भागासिद्ध, बरशोगी	-	4 बिस्वा।
63.	भारथा देवी, गलछेत	-	2 बिस्वे भूमि में मंदिर है।
64.	भाल़ठी नारायण, भाल़ठा	-	वर्तमान में देवता के पास 28 बीघा भूमि है। पहले देवता के पास अधिक भूमि थी जो मुज़ारों के नाम चढ़ गई है।
65.	भुवनेश्वरी देवी, पुईद	-	भूमि अधिनियम से पूर्व 500 बीघा भूमि थी। अब केवल 4 बीघा भूमि है, शेष मुज़ारों में बंट चुकी है।
66.	भेखली देवी, भेखली	-	लगभग 200 बीघा भूमि, जो मुज़ारों के पास है।
67.	मंगलेश्वर महादेव, छैऊंर	-	लगभग 5 बीघा।
68.	महादेव, चौकी	-	लगभग 2 बीघा।
69.	रणपाल, मौहल	-	लगभग 4-5 बिस्वा।
70.	रावल, ऊच	-	फाटी बादी लगभग 10 बिस्वा।
71.	रावल : याज्ञवल्क्य, ग्राहण	-	7 बीघा।
72.	रूपासन, धारला	-	लगभग 10-12 बीघा का बागीचा।
73.	रोमणू नाग, राऊगी	-	देवता के पास 56 बीघा भूमि थी जिसमें से 52 बीघा भूमि मुज़ारों के नाम लग गई है। वर्तमान में केवल 4 बीघा भूमि है।
74.	लोहड़ी अच्छरी, जिंदी	-	5 बिस्वा।
75.	विष्णु भगवान, दुआड़ा	-	पहले 65 बीघा भूमि थी, अब केवल 14 बीघा रह गई है।
76.	वीरनाथ, टाहुक	-	लगभग 2 बीघा।
77.	वीरनाथ, बारी पधरू	-	4 बिस्वा।
78.	शवार्श ऋषि, नकथान	-	1 बीघा फाटी बादी।
79.	शीतला माता, पीपल़ आगे	-	7 बिस्वा।
80.	शेषनाग, बैंची	-	लगभग 1 बीघा 4 बिस्वा।
81.	श्री राधाकृष्ण, वृंदावणी	-	तृतीय श्रेणी जंगलात।
82.	श्रीरामचंद्र, मणिकर्ण	-	मंदिर के साथ लगभग 5 बीघा भूमि।
83.	सुन्न नारायण, डडेई	-	मंदिर तथा भंडार की लगभग 1 बीघा भूमि।
84.	सूरजपाल, बड़ा भूईण	-	10 बीघा।
85.	सोमू नारायण, कसोल	-	कसोल में एक बीघा तथा ठोज़ा में 3 बीघा बणी है।

86.	हनुमान, छाशणी	-	2 बिस्वा।
87.	हरिनारायण, काथी	-	लगभग 8 बिस्वा।
88.	हाटेश्वरी देवी, हाट	-	लगभग 2 बीघा।
89.	हुरंग नारायण, दराल	-	लगभग 3 बीघा।
90.	हुरगू नारायण, गदियाड़ा	-	13 बीघा।

मनाली खंड

क्रम	देवता का नाम		भू-सम्पत्ति
1.	अंबल देवता, बशकौला	-	4 बीघा।
2.	कंचन नाग, गौतम ऋषि व्यास ऋषि, गोशाल	-	मंदिर, सौह तथा भंडार की भूमि।
3.	कार्तिक स्वामी, खखनाल	-	19 बीघा।
4.	कार्तिक स्वामी : सामी देऊ, सिमसा	-	मंदिर, सौह और भंडार (सिमसा), कन्याल का भंडार तथा छियाल मंदिर की भूमि।
5.	गौरी शंकर, जगतसुख	-	5 बीघा (संध्या गायत्री जगतसुख के साथ संयुक्त)।
6.	गौहरी देऊ, पारशा	-	बादी स्थान पर मंदिर, सौह तथा भंडार की भूमि।
7.	चामुंडा, नशाला	-	केवल मंदिर तथा सौह की भूमि।
8.	जंबलू, छानी	-	38 बीघा।
9.	जंबलू, बंदल	-	4 बीघा।
10.	जंबलू, बड़ाग्राँ	-	10 बिस्वा।
11.	जंबलू : बैड़ा देऊ, शांगचर	-	4 बीघा मंदिर परिसर तथा 2 बीघा बागीचा।
12.	जगथम, पनगाँ	-	लगभग 7 बीघा।
13.	जमलू, कुलंग	-	मंदिर, सौह तथा भंडार की भूमि।
14.	जमलू, प्रीणी	-	मंदिर, सौह तथा भंडार की भूमि।
15.	जमलू, बुरुआ	-	मंदिर एवं भंडार की भूमि।
16.	जमलू, सोयल	-	केवल मंदिर क्षेत्र।
17.	जौऊसु नाग, जलसा	-	3 बीघा बागीचा।
18.	त्रिपुरा सुंदरी, नगर	-	केवल मंदिर स्थल।
19.	धुंबल नाग, पीह	-	लगभग 20 बीघा।

20.	धुंबल नाग, मंगाणा	-	मंदिर स्थल।
21.	नारायण, लिगन	-	2 बीघा मंदिर परिसर तथा 2 बीघा बागीचा।
22.	नीलकंठ महादेव, डोबा	-	लगभग 3½ बीघा।
23.	नीलासुरी, हरिपुर	-	केवल मंदिर परिसर।
24.	फाहली नाग, भाड़का	-	भाड़का में मंदिर व सौह तथा प्रीणी में भंडार की भूमि।
25.	मनु ऋषि, पुरानी मनाली	-	लगभग 5 बीघा।
26.	माधोराय, हरिपुर	-	केवल मंदिर क्षेत्र।
27.	वशिष्ठ ऋषि, वशिष्ठ	-	केवल मंदिर सौह और भंडार की भूमि।
28.	विष्णु, सजला	-	केवल मंदिर और उसके आसपास का क्षेत्र।
29.	शरबणी देवी, शूरू	-	लगभग 38 बीघा।
30.	शांडल रिखी, शलीण	-	मंदिर, सौह तथा भंडार की भूमि।
31.	शिरघण नाग : तक्षक नाग, भनारा	-	देव मंदिर सौह, भंडार तथा मौढ़ की भूमि।
32.	शौंकू देऊ, नसोगी	-	मंदिर तथा भंडार।
33.	संध्या गायत्री, जगतसुख	-	5 बीघा (गौरी शंकर जगतसुख के साथ संयुक्त)।
34.	सरीहटी नारायण, अलेऊ	-	मंदिर, सौह और भंडार की भूमि।
35.	सिंहासनी माता, बड़ाग्राँ	-	लगभग 4 बीघा।
36.	सियाली महादेव, सियाल	-	मंदिर, सौह, भंडार तथा मनाली स्थित धर्मशाला।
37.	हिड़मा : हिडिम्बा देवी, ढूँगरी	-	ढूँगरी तथा मनाली में देवी के मंदिर, मनाली गाँव में भंडार तथा हिड़मा सौह।

कुल्लू दशहरा में भाग लेने वाले देवता

कुल्लू खंड

1. अग्निपाल, गाँव पाथला।
2. अजयपाल : दाणी, गाँव झौकड़ी।
3. आदि ब्रह्मा, गाँव खोखण।
4. कार्तिक स्वामी, गाँव नथान।
5. कालिया नाग, गाँव शिरढ़।
6. काली ओड़ी, गाँव अरछंडी।
7. काली ओड़ी, गाँव डोभी।
8. काली नाग, गाँव कराल।
9. गणपति, गाँव घुड़दौड़।
10. गर्गाचार्य, गाँव लाहशणी।
11. गौतम ऋषि, गाँव शाट।
12. गौहरी देऊ : वीरनाथ, गाँव जनाहल।

13. गौहरी देऊ : वीरनाथ, गाँव बारी।
14. गौहरी देऊ, गाँव मंदरोल।
15. चामुंडा, गाँव धारा।
16. चौंगा भगवती, गाँव बारीतुनी।
17. चौंगासन, गाँव चौंग।
18. छमाहणी नारायण, गाँव छमाहण।
19. जमलू, गाँव मलाणा।
20. जुआणू महादेव, गाँव नेऊली।
21. ज्वाला माता, गाँव फोजल।
22. थान देवता, गाँव तरांबली।
23. थान देवता : क्षेत्रपाल, गाँव भुट्ठी।
24. थान देवता, गाँव शिम।
25. थिरमल, गाँव धारा।
26. दशमी वारदा, गाँव काईस।
27. दशमी वारदा, गाँव गाहर।
28. नाग देवता, गाँव माहिष।
29. नारायण, गाँव मेहा।
30. नारायण, गाँव लोट।
31. बणींडू देऊ, गाँव काईस।
32. बालक महेश्वर, गाँव बजौरा।
33. बिजली महादेव, गाँव चंसारी।
34. बिजली महादेव, गाँव मथाण।
35. भटंती देवी, गाँव पड़ेई।
36. भागासिद्ध, गाँव डुघीलग।
37. भागासिद्ध : धमेसरी देवी, गाँव तलपीणी।
38. भागासिद्ध, गाँव नरोगी।
39. भारथा देवी, गाँव गलछेत।
40. मंगलेश्वर महादेव, गाँव छैऊंर।
41. रोमणू नाग, गाँव राऊगी।

42. विष्णु भगवान, गाँव दुआड़ा।

43. वीरनाथ, गाँव डेहरा सेरी।

44. वीरनाथ, गाँव बारी पधरू।

45. शपराड़ा नारायण : भृगु ऋषि, गाँव बड़ोगी।

46. श्री राधाकृष्ण, गाँव वृंदावणी।

47. सूरजपाल, गाँव बड़ा भूईण।

48. हरिनारायण, गाँव काथी।

49. हुरंग नारायण, गाँव दराल।

50.	ज्वालामुखी, गाँव शमशी	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर आती है और सात दिन तक वहीं रहती है।
51.	पिरडी महादेव, गाँव पिरडी	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर सात दिन तक मेले में रहता है।
52.	भुवनेश्वरी देवी, गाँव पुईद	-	देवी दशहरा में सम्मिलित नहीं होती, परन्तु रघुनाथ जी का रथ निकलने पर उनकी चाकरी के लिये सूर्यास्त के बाद पुईद गाँव के निचले भाग तक आती है।
53.	रणपाल, गाँव मौहल	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर सात दिन तक मेले में रहता है।
54.	लोहड़ी अच्छरी, गाँव जिंदी	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर सात दिन तक मेले में रहती है।
55.	वीरनाथ, गाँव भोष	-	दशहरे में सम्मिलित होने की परम्परा थी, परन्तु अब शामिल नहीं होता।
56.	शेषनाग : पाशुकोट, गाँव बैंची	-	पहले दशहरे में सम्मिलित होता था, परंतु अब धनाभाव के कारण बीस वर्ष से भाग नहीं ले रहा।
57.	हुरगू नारायण, गाँव गदियाड़ा	-	रघुनाथ जी के आमंत्रण पर दशहरे में आता है।
58.	हुरगू नारायण, गाँव भूमतीर	-	रघुनाथ जी के आमंत्रण पर दशहरे में आता है।

मनाली खंड

1. कंचन नाग-गौतम ऋषि-व्यास ऋषि, गाँव गोशाल।

2. कार्तिक स्वामी, गाँव खखनाल।

3. चामुंडा, गाँव नशाला।

4. जगथम, गाँव पनगाँ।

5. त्रिपुरा सुन्दरी, गाँव नगर।

6. दोचा मोचा, गाँव गज़ां-करज़ां।

7. धुंबल नाग, गाँव मंगाणा।

8. नारायण, गाँव लिगन।

9. नीलकंठ महादेव, गाँव डोबा।

10. पार्वती माता, गाँव खखनाल।

11. फाहली नाग, गाँव भाड़का।

12. विष्णु, गाँव सजला।

13. शरबणी देवी, गाँव शूरू।

14. शिरघण नाग : तक्षक नाग, गाँव भनारा।

15. सिंहासनी माता, गाँव बड़ाग्राँ।

16. हिड़मा : हिडिम्बा देवी, गाँव ढूँगरी।

17.	अंबल देवता, गाँव बशकौला	-	आरम्भ में करड़ू रथ होने के कारण दशहरे में सम्मिलित नहीं होता था लेकिन ई. सन् 1905 में फेटा रथ बनने के बाद दशहरे में जाना आरम्भ हुआ।
17.	कार्तिक स्वामी : सामी देऊ, गाँव सिमसा	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर कभी-कभार आता है।
18.	जौऊसु नाग, गाँव जलसा	-	पहले दशहरे में सम्मिलित होने की परम्परा थी, परन्तु 1952-53 के भूमि सुधार अधिनियम के पश्चात् नहीं जाता।
19.	वशिष्ठ ऋषि, गाँव वशिष्ठ	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर दशहरा में शामिल होता है।
20.	वासुकि नाग, गाँव बल्थाह	-	प्राचीन समय में सम्मिलित होता था परन्तु अब नहीं जाता।
21.	शांडल रिखी, गाँव शलीण	-	रघुनाथ जी के निमंत्रण पर यदा-कदा सम्मिलित होता है।
22.	संध्या गायत्री, गाँव जगतसुख	-	पंद्रह वर्ष पूर्व तक दशहरा में सम्मिलित होती थी, परन्तु अब नहीं जाती।
23.	सरीहटी नारायण, गाँव अलेऊ	-	यदा-कदा केवल निमंत्रण पर।





हिमाचल अकादमी